विषय सूची

पूर्वार्द्ध

उत्तरार्द्ध

भाग दूसरा

पूर्वार्द्ध

स्वामी राम तीर्थ जी

के

अंग्रेज़ी के लेख व उपदेश

निवेदन।

परमहंस स्वामी रामतीर्थजी महाराज की यह संक्षिप्त जीवनी लेखक की कम्पित लेखनी से एक नई नवेली हिन्दी की माधुरी-पत्रिका में प्रकाशित कराने के विचार से लिखी गई थी, किन्तु कुछ स्वार्थ-वासनायें बीच में आजाने से इसके छपने में एक झगड़े की सम्भावना देखकर तीन महीने बाद, उसके श्रद्धेय सम्पादक से, यत्न के साथ, इसकी कापियाँ ले ली गईं और वंद्यचरण श्रीमन्नारायण स्वामी जी महाराज ने इसे इस रूप में छपाकर हिन्दी पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर दिया।

इस पवित्र जीवनी के लिखने में मेरा कोई कर्तृत्व नहीं, सब श्रीमन्नारायण स्वामीजी महाराज की बनाई हुई बातें और उन्हीं का दिया हुआ मसाला है। मैंने उसे श्रद्धा-सहित अध्ययन करके संक्षेप में, अपनी भाषा में, लिख भर दिया है। इस लिये यदि इस पुस्तिका के पाठ से पाठकों को कुछ आनंद मिले, तो वे राम-बादशाह के पवित्र जीवन और श्रीमन्नारायण स्वामी के प्रसाद का फल समझें, और यदि इसमें कुछ त्रुटि हो, तो मेरा निज का दोष समझें और मुझे मूढ़मति जान क्षमा करें।

६६६ सआदतगञ्ज रोड,
लखनऊ

चन्द्रिकाप्रसाद जिज्ञासु
लेखक

* ॐ *

संक्षिप्त जीवनी

परमहंस स्वामी रामतीर्थ।

Lives of great men all remind us
We can make our lives sublime.
(Longfellow)

❀ जन्म और बाल-लीला ❀

विश्व-विदित, ब्रह्मलीन, आत्म-दर्शी परमहंस स्वामी राम-तीर्थ जी महाराज एम० ए० का जन्म पंजाब प्रान्त के अन्तर्गत ज़िला गुजरांवाला में, मुरारीवाला गाँव के एक गोस्वामी वंश (गोसाईं वंश) में मिती कार्तिक शुक्ल १, बुधवार सं० १६३० वि० तदनुसार ता० २२ अक्टोबर, सन् १८७३ ई० को हुआ था। कहते हैं यह गोसाईं-वंश वही वंश है जिसके पुरातन पूर्वज, सूर्य-वंशी क्षत्रियों के कुल-पुरोहित, ब्रह्मर्षि वशिष्ठ जी महाराज थे; और, इस कलिकाल में भी, जिस वंश में, हिन्दी साहित्य-गगन के पूर्णचन्द्र, रामचरित-मानस के रचयिता, महात्मा गोसाईं तुलसीदास जी ने प्रकट होकर अपनी कालांत-कारिणी कीर्ति-कौमुदी का संप्रसार किया है। हमारे चरित-नायक का गृहस्थाश्रम का नाम गोसाईं तीर्थराम था।

तीर्थराम जी के पिता गोसाईं हीरानन्द जी थे। आप एक सीधे-सादे, साधारण-स्थिति परन्तु क्रोधी प्रकृति के पुरुष थे। और ब्रह्म-वृत्ति.........द्वारा अपना निर्वाह करते थे।

उस समय कौन कह सकता था कि गोसाईं हीरानंद जी एक ऐसा पुत्र रत्न उत्पन्न करेंगे जो अपनी विद्या, बुद्धि, अलौकिक प्रतिभा, असाधारण अध्यवसाय एवं त्याग और उत्साहपूर्ण अल्पकालिक जीवन से सारे संसार को मोहित कर लेगा, अपने ज्ञान के प्रकाश से विचारवान् धर्मात्मा पुरुषों की दृष्टि में बिजलीवत् चमक कर उनके हृदयों में एक दिव्य (अलौकिक) जीवन की ज्योति जगा जायगा।

अपने ज्योतिर्विद् पाठकों की विशेष जानकारी के लिए, यहाँ पर चरितनायक का जन्मपत्र दे देना अप्रसंगिक न होगा—

श्रीमद्विक्रमादित्यराज्यतो गताब्दः १६३०, शालिवाहन शाके १७६५, दक्षिणायने शरदृतौ, मासानामुत्तमे मासे कार्त्तिकमासे, शुभे शुक्लपक्षे, तिथौ प्रतिपदायाँ, बुधवासरे २५ घड़ी ५५ पल, स्वाती नक्षत्रे ३१ घड़ी २५ पल, प्रीतियोगे २६ घड़ी ४६ पल, ववकरणे एवं पंचांगे श्रीसूर्योदयादिष्टम् २४ घड़ी ४८ पल तत्समये मीनलग्नोदये श्रीगोस्वामि रामलालात्मज श्रीगोस्वामि हीरानन्द गृहे पुत्रो जातः। स्वाती नक्षत्रस्य चतुर्थचरणे जातत्वाद् राशिनाम ताराचंद्रः।

अथ जन्मलग्नम्।

तीर्थराम के जन्म पर ज्योतिषियों ने अनेक भविष्यवाणियाँ की थीं, किन्तु संक्षेपानुरोध से उनका यहाँ सविस्तर उल्लेख नहीं किया गया। केवल एक ज्योतिषी की वाणी का ही उल्लेख कर दिया है। इस ज्योतिषी ने इस जन्मलग्न पर निम्न लिखित १० फल वर्णन किये हैं:-" (१) अतिविद्वान् हो, (२) २१ या २२ वर्ष की आयु में परमार्थ का ख़याल बहुत अधिक हो, (३) इष्ट अद्भुत हो जैसे ओंकार, (४) विदेश अवश्य जावे, (५) राजदरबार में चमत्कार होकर रहे नहीं (६) शरीर रोगी रहे बल्कि किसी अङ्ग में दोष हो (७) अन्तिम आयु में विषय-वासना नितान्त नष्ट, (८) दो पुत्र अवश्य हों, (९) आयु २८ से ३५ वर्ष के भीतर-भीतर अर्थात् अल्पायु हो, (१०) यदि ब्राह्मण हो तो मृत्यु जल में और यदि क्षत्रिय वंश से हो तो मृत्यु मकान पर से गिर कर हो।"

अस्तु। हमारे तीर्थराम जी अभी केवल ९ मास के ही थे कि उनकी माता का देहान्त होगया, जिससे उनके पालन-पोषण का भार उनकी ज्येष्ठा भगनी श्रीमती तीर्थदेवी तथा उनके पिता की भगिनी पर पड़ा। अत्यन्त शैशव-काल (बचपन) में ही मां का दूध छूट जाने और ऊपर का गाय आदि का दूध मिलने से बालक तीर्थराम अत्यन्त कृशांग और कमज़ोर रहते थे; किन्तु बड़े होने पर, युवा-अवस्था में पाँव रखते ही, जैसे वे आत्मिक उन्नति में सबसे ऊँची छलांग मार गए, वैसे ही उन्होंने अपनी शारीरिक शक्ति का भी आदर्श* विकाश किया। आपने संन्यास-समय में तो नित्य तीस-तीस मील दुर्गम पर्वतीय

* आजकल शारीरिक बल और स्वस्थ-शरीर के समझने में बड़ी भ्रांति फैली हुई है। लोग साधारणतया माल खा-खाकर ख़ाली देह फुला लेने वालों अथवा डंड-कसरत करके डंड-बल्ले तैयार कर लेने वाले 'अखाड़े

मार्गों में चलना उनके लिए बच्चों का सा खेल होगया। और हिमानी-मंढित अत्यंत शीतल-शैल-शिखरों के निकट केवल एक धोती पहन कर जीवन-यापन करना एक साधारण बात हो गई। उन्होंने अमरनाथ और यमुनोत्री आदि यात्रायें केवल एक धोती पहने हुए कीं।

तीर्थराम की बुआ–हीरानन्दजी की बहन अति धर्मपरायणा और प्रेम की पुतली थीं। उनका सारा समय भजन-पूजन और व्रत उपवास आदि धर्म-कृत्यों में ही व्यतीत होता था। वे नित्य ग्राम के देव-मंदिरों में दर्शन करने जातीं और आरती में सम्मिलित होती थीं। जहाँ कहीं कथा वार्त्ता होती, उसे वे बड़ी श्रद्धा के साथ सुनती थीं। वे जहां जातीं, अपने साथ बालक तीर्थराम को ले जाती थीं। इस प्रकार अत्यन्त शिशुपन से ही तीर्थराम की होनहार आत्मा पर धर्म की छाप पड़ने लगी।

गोसाईं हीरानन्द का कथन है कि तीर्थराम जब केवल तीन वर्ष के थे, तो एक दिन वह उन्हें अपने साथ लेकर धर्मशाला में कथा सुनने गये। जब तक वह कथा सुनते रहे, बालक तीर्थराम टकटकी लगाकर कथा कहने वाले पण्डित की ओर देखते रहे। दूसरे दिन फिर जब कथा की शंख-ध्वनि हुई, तो तीर्थराम ने रोना आरम्भ कर दिया। गोसाईं हीरानन्द ने बच्चे को बहलाने के अनेक प्रयत्न किए; पर सब

के पहलवानों' को ही स्वस्थ और बलवान् समझ लेते हैं, जो ज़रा-ज़रा सी सर्दी गरमी और काम-क्लेश मिलते ही बीमार हो जाते हैं। वास्तव में ये लोग दूषित मल-मांस-पूर्ण और रोगी हैं। स्वस्थ और शक्तिमान् वे ही पुरुष हैं जो सुडौल, सुते हुए शरीर के, कष्ट-सहिष्णु और अक्लांत परिश्रम-शील हैं।

निष्फल हुए। अन्त को जब वे उसे गोद लेकर धर्मशाले की ओर चलने लगे, तो वह बिल्कुल चुप होगया। पिता पुत्र को चुप हुआ जान ज़रा ठिठके और चाहा कि उसे घर छोड़ जायँ, किन्तु ऐसा करते ही बालक ने रोना आरम्भ कर दिया, और जब वे उसे लेकर फिर कथा की ओर बढ़ने लगे, तो उसने रोना बन्द कर दिया। उस दिनसे नित्य कथा का शंखनाद होते ही तीर्थराम रोना आरम्भ करते और कथा-मन्दिर में पहुँचते ही उनका रोना बन्द हो जाता।

तीर्थराम अभी दो वर्ष के भी न होने पाये थे कि उनके पिता ने उनकी सगाई गुजराँवाले ज़िले की तहसील वज़ीराबाद के वैरोके ग्राम में पण्डित रामचन्द्र के यहाँ कर दी। उस स्थान में पण्डित रामचन्द्र का वंश प्रतिष्ठित समझा जाता है। इसी वंश के एक वृद्ध पं० मुसद्दीलाल थे, जिनके पिता सिक्खों की अमलदारी में, वज़ीराबाद में, मुहासिब थे। आगे चलकर जब तीर्थराम की आयु लगभग १० वर्ष के हुई, उनका विवाह भी कर दिया गया। भला इस छोटी सी आयु में बच्चा इस गोरख-धन्धे को क्या जान सकता था। कहते हैं, थोड़ा और बड़े होने पर जब तीर्थरामजी ने होश संभाला, तो एक दिन वे अपने पिता से बोले कि "आपने मुझे किस छोटी आयु में ही इस जंजाल में फँसा दिया।" किन्तु इस बाल-विवाह से हिन्दू-घरानों की जो दयाजनक दुर्गति है, उसके अनुसार ऐसी बातों की कौन पर-वाह करता है। अस्तु।

शिक्षा

तीर्थराम जब ५॥ वर्ष के हुये, तो मुरारीवाला ग्राम की वर्नाक्युलर प्राइमरी पाठशाला में वे पढ़ने बिठाए गये। तीर्थ-

राम यद्यपि छोटे डील के और सीधे-साधे थे, परन्तु उनकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी, पढ़ने में वे सबसे प्रवीण और परिश्रमी थे। मदरसे के मुख्य अध्यापक मौलवी मोहम्मदअली थे। वह तीर्थराम की प्रखर प्रतिभा और अद्भुत धारणा-शक्ति से बड़े विस्मित होते थे। तीर्थरामजी ने तीन ही वर्ष में पाठशाले की पाँचों श्रेणियाँ पढ़कर परीक्षा में प्रथम श्रेणी का प्रमाण-पत्र प्राप्त किया। और छात्रवृत्ति के साथ ही अपने मौलवी साहब से फ़ारसी की गुलिस्ताँ बोस्ताँ भी पढ़लीं। तीर्थराम की स्मरण-शक्ति इतनी प्रबल थी कि पंचम श्रेणी की उर्दू-रीडर की कुल नज़्में (कवितायें) उन्होंने कंठाग्र करली थीं। कहते हैं तीर्थराम जब मौलवी साहब के निकट अपनी शिक्षा समाप्त कर चुके, तो अपने पिता से कहने लगे-"पिताजी! मदरसे के मौलवी साहब ने मेरे साथ बड़ा परिश्रम किया है, मैं चाहता हूँ कि हमारे घर में जो भैंस है, वह मौलवी साहब को गुरुदक्षिणा में भेंट की जाय!" अहा! नव-दस वर्ष के बालक को यह कर्त्तव्य-ज्ञान!! सच है, 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'।

आरम्भिक शिक्षा समाप्त करने के अनंतर अंगरेज़ी पढ़ने के लिये तीर्थरामजी अपने पिता के साथ गुजराँवाला हाईस्कूल में भरती होने गए। यह नगर मुरारीवाला गाँव से लगभग ७ मील के अंतर पर है। इस दस वर्ष की छोटी सी आयु में बच्चे को बिना किसी संरक्षक के, घर से इतनी दूर अकेला छोड़ना उचित न समझ कर, उनके पिता जी उन्हें अपने एक सुयोग्य कृपालु मित्र भगत धन्नारामजी*के पास, उनकी संरक्षकता में छोड़ गये।

* भगत धन्नारामजी एक बाल-ब्रह्मचारी साधु हैं। आप जाति के अरोड़ा (सनोचे) हैं। आपका जन्म सं० १६०० विक्रमी में हुआ था।

नियमानुसार तीर्थराम ने गुजराँवाला हाई स्कूल में, स्पेशल क्लास में, भरती होकर दो वर्ष में मिडिल और दो वर्ष में इन्ट्रेन्स की भी परीक्षा दे दी। इन्ट्रेन्स की परीक्षा के समय उनकी आयु १४॥ वर्ष की थी, और परीक्षा में उनका नंबर पंजाब में ३८वां रहा।

आपके पिता का नाम जवाहिरलाल था। आपकी माता शिशुपन में ही मर गई थीं। इससे आप अपनी दादी के हाथों पले। भगतजी बचपन ही से करामाती थे। आपकी शिक्षा साधारण देसी थी। आपको लड़कपन में कुश्ती का बड़ा शौक़ था। और आगे चलकर आप इस विद्या में बड़े निपुण हो गये। एक बार आपने एक अपने से दूने पहलवान को कुश्ती में दे मारा। मकतब की शिक्षा के बाद आप ठठेरी का धंधा करने लगे। और उसमें शीघ्र निपुण हो गये। अपनी १६ वर्ष की आयु में आप एक बार कटासराज तीर्थ के मेले पर गए। वहां आपने अनेक साधुओं के दर्शन किये। कटासराज आपको बहुत ही भाया। आपने वहाँ एक बर्तनों की दूकान कर ली। वहाँ आप जो पैदा करते, सब साधु-संतों को खिला देते। आपने वहीं कुछ हठ-योग की साधना की और उसमें आप दृढ़ साधक बने। आपको कथा-वार्ता और सत्संग का बड़ा शौक़ था। और जब कभी भक्ति और प्रेम का प्रसङ्ग आता, तो आपके लोचनों में जल भर जाता। इसी कटासराज में आप कुछ शेर व स़ख़ुन भी कहने लगे। आपकी शेरें (कवितायें) बड़ी चुटीली होती थीं। एक बार आपने योगवासिष्ठ की कथा बड़े ध्यान से सुनी, तब से आप में अद्वैत ब्रह्म-ज्ञान का भाव भर गया। आप सबको ईश्वर या ब्रह्म कहने लगे। अब भी भगत जी के परिचित लोग उन्हें ईश्वर (रब व ख़ुदा) ही कहते हैं। जब आपमें इस ब्रह्म-भाव की जिज्ञासा बढ़ी, तो आप फिर गुजराँवाला चले आये। यहाँ आपको कई महात्माओं के दर्शन हुये, जिनसे आपने

हाई स्कूल की शिक्षा समाप्त करके उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये हमारे तीर्थरामजी लाहौर जाने लगे। पिताजी उन्हें आगे पढ़ाना नहीं चाहते थे। इसलिये तीर्थरामजी बिना उनकी सहायता की आशा किए, केवल भगवान् के भरोसे, घर से रूठ कर लाहौर चले गये और वहां मिशन कालेज के फ़र्स्ट इयर में भरती हो गये। इस समय वे केवल अपनी उस छात्र-वृत्ति पर जो उन्हें गुजराँवाला की म्युनिसिपलटी से मिलती थी, अपना निर्वाह करते थे, और अपने मौसिया (मासड़) पण्डित रघुनाथमल डाक्टर तथा अपने गुरु भगत धन्नाराम की सहायता और प्रोत्साहन से शिक्षा लाभ करते रहे।

एफ़० ए० के द्वितीय वर्ष में घोर परिश्रम करने के कारण हमारे तीर्थरामजी प्रायः रोगी (बीमार) रहने लगे। इस पर भी उन्हें एकांत-सेवन और परिश्रम करने का इतना चाव था कि उन्होंने अपने एक पत्र में अपने मौसियाजी को लिखा था कि—

समाधि लगाना सीख लिया। लेकिन शीघ्रही आप एकांत-अभ्यास के लिये जङ्गलों में चले गए। वहां आपको अनहद-शब्द का अभ्यास हो गया। मन-वाणी पर सिद्धि मिली। आपका शापाशीर्वाद फलने लगा। आप जङ्गलों से लौटकर फिर गुजराँवाला में रहने लगे और वहां आपकी अच्छी ख्याति होगई। इन्हीं दिनो आपको तीर्थराम सौंपे गये। तीर्थराम पर आपका ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे आपको केवल अपना गुरु ही नहीं वरन् ईश्वर का प्रत्यक्ष अवतार मानने लगे। तीर्थरामजी ने अपने विद्यार्थी जीवन में कोई ११०० पत्र अपने इन गुरु भगत धन्नाराम के पास भेजे। इनमें कोई ३०० पत्र श्रीमन्नारायण स्वामी ने रामपत्र के नाम से छापे हैं। भगतजी आज भी जीवित हैं। गुजराँवाला में, पुरानी मंडी में रहते हैं। लगभग ८६ की आयु होते हुए भी आप खूब चलते-फिरते और आजकल के नवयुवकों से कहीं अधिक शक्तिमान हैं।

"मेरी सबसे भारी ज़रूरत (महान् आवश्यता) १, एकांत स्थान और २, समय है। हे परमात्मन्! १ परिश्रमी मन, २ एकांत स्थान और ३ समय, इन तीनों वस्तुओं का कभी मेरे लिये अकाल न हो। मोसियाजी! यही मेरा संकल्प है। आगे परमेश्वर मालिक है।"

ईश्वर से इन प्रार्थनाओं का हमारे तीर्थराम जी को यह फल मिला कि निरन्तर रोग-ग्रसित रहने पर भी वे सन् १८६० ई० की एफ़० ए० की परीक्षा में अपने कालेज में सर्व-प्रथम रहे। और सरकारी छात्रवृत्ति भी प्राप्त करने के साथ ही उसी कालेज में अपनी बी० ए० की शिक्षा भी जारी रक्खी।

इस प्रकार शिक्षा बराबर जारी रखने से जब उन के पिता श्री को यह निश्चय हो गया कि तीर्थराम हमसे सहायता लिये बिना भी अपनी शिक्षा जारी रख सकता है और हमारी इच्छानुसार नौकरी आदि करने को तैयार नहीं होता, तो क्रोध में आकर वे तीर्थरामजी की स्त्री को भी, उनके पास, लाहौर में, छोड़ गये और स्वयं उस युवती को किसी तरह की भी सहायता करने को तैयार न हुए। इस समय नवयुक तीर्थरामजी को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। घर का किराया, किताबों और फ़ीस का बोझ, अपना और स्त्री का ख़र्च, सब कैसे पूरा हो। किन्तु सच है, दृढ़-संकल्प धीर-पुरुष कठिनाइयों के पर्वत को चूर्ण कर देता है, निराशा के सघन घन को छिन्न-भिन्न कर देता है।

एकबार छात्रवृत्ति के रुपए गोसाईं जी ने किताबों में ख़र्च कर दिये और अन्य ख़र्चों के लिए उस समय ध्यान न रहा; किन्तु बाद में बड़े सङ्कट में पड़ गए। हिसाब लगाने से मालूम हुआ कि इस महीने में उनके हिस्से में केवल तीन पैसे रोज़ बचते

हैं। पहले तो घबराए, फिर सँभल कर बोले "भगवान् हमारी परीक्षा करना चाहते हैं, कुछ चिन्ता नहीं ; भिक्षुक भी तो दो तीन पैसे में दिन काटते हैं।" अतः गोसाईं जी दो पैसे की सवेरे और एक पैसे की संध्या को रोटी खाकर दिन काटने लगे। किन्तु एक दिन जब संध्या को रोटी खाने दुकान में गये, तो दूकानदार ने कहा—"तुम रोज़ एक पैसे की रोटी के साथ दाल मुफ़्त में खा जाते हो। जाओ,मैं एक पैसेकी रोटी नहीं बेचता।" यह दशा देखकर नवयुवक तीर्थरामजी ने मनमें संकल्प कर लिया कि "चलो, जब तक और रुपया नहीं मिलता, २४ घण्टों में एक ही समय भोजन किया जायगा।"

लेख-विस्तार-भय से हम यहाँ तीर्थरामजी के उन पत्रों को उद्धृत करने से विरत होते हैं जिनसे इस दरिद्रता और संकट के समय भी उनके हृदय की परिश्रम-शीलता, गुरु-भक्ति और ईश्वर-विश्वास का ज्वलंत परिचय मिलता है, तथापि हम यहाँ उनके १६ जुलाई १८६० के, उस लम्बे पत्र में से जिसे उन्होंने अपने ईश्वर-तुल्य गुरु भगत धन्नारामजी के पास भेजा था, परिश्रम के संबंध की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर देने के लोभ को संवरण नहीं कर सकते। तीर्थरामजी लिखते हैं—

"दुनिया में कोई व्यक्ति होशियार हो ही नहीं सकता जब तक वह मिहनत न करे। जो होशियार हैं, वे सब बड़ा परिश्रम करते हैं, तब चतुर हैं। यदि हमको उनका परिश्रम विदित न हो, तो वे गुप्तरूप से अवश्य करते होंगे,या वह पहले कर चुके होंगे। यह बात बड़ी जँची हुई है।"...... ....

"ज़िहन जिसको कहते हैं, वह भी मिहनत से बढ़ जाता है। येन-केन-प्रकारेण यदि कोई व्यक्ति बिना परिश्रम के परीक्षा में अच्छा रह भी जाय, तो उसको पढ़ने का स्वाद कदापि नहीं

मिलेगा। वह मनुष्य बहुत बुरा है। वह उस मनुष्य जैसा है जिसने आपसे एक बार कहा था कि मुझे एक कविता बना दो, मगर उसमें नाम मेरा रखना।"..............................

"मैं यह जानता हूँ कि मिहनत बड़ी अच्छी वस्तु है; मगर मैं मिहनत इस तरह पर नहीं करनेवाला हूं कि बीमार हो जाऊँ। ....परमात्मन्! मेरा मन मिहनत में अधिक लगे। मैं निहायत दर्जे की मिहनत करूँ!"

गोसाईं तीर्थरामजी गणित में बड़े तीक्ष्ण थे, और परिश्रमी भी प्रसिद्ध थे; किन्तु उस वर्ष बी०ए० की परीक्षा न जाने किस ढंग से हुई कि श्रेणी के चतुर और सुयोग्य विद्यार्थी तो अनुत्तीर्ण रहे और अयोग्य निकम्मे उत्तीर्ण हो गए। हमारे गोसाईं जी केवल अँगरेज़ी के परचे में तीन नम्बर कम मिलने से अनुत्तीर्ण कर दिये गये। इस बात से कालिज के प्रोफ़ेसर और प्रिंसिपल को भी बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने बहुत प्रयत्न किया कि गोसाईं जी के अँगरेज़ी के परचे दुबारा देखे जायँ, परन्तु सब व्यर्थ हुआ। फिर क्या था, लगे अँगरेज़ी पत्रों में लेख-पर-लेख निकलने। युनिवर्सिटी के फ़ेलो महाशयगण. घबराये। परिणाम यह निकला कि भविष्य के लिये यह रूल पास किया गया कि जिन विद्यार्थियों के किसी विषय में पास अंकों से ५ अंक कम हों, या समस्त अंकों के जोड़ में से ५ अंक कम हों, तो वे विचाराधीन (under consideration) रक्खे जायँ, और उनके परचे फिर देखे जाँय। इस नियम से यद्यपि अन्य विद्यार्थियों के लिये भविष्य में कुछ सुभीता तो हो गया, किन्तु हमारे गोसाईं जी उस वर्ष बी० ए० में रह गये और दुबारा पढ़ने को विवश किये गये।

इस अचानक विपत्ति से गोसाईं जी के सुकोमल हृदय पर

कठोर आघात लगा। उनकी छात्रवृत्ति भी बन्द होगई। गोसाईं जी बहुत ही व्याकुल हुए। वे सोचने लगे, मेरी छात्रवृत्ति तो बंद होगई, अब यदि मैं अपनी शिक्षा जारी रक्खूं, तो साल-भर की फ़ीस, किताबों और भोजन आदि का व्यय, सब कहाँ से आवेगा। इसी आकुलावस्था में उन्होंने एक दिन अपने गोसियां जी को पत्र लिखा कि यदि तीर्थराम अपनी इच्छानुसार शिक्षा न पायेगा, तो संभव है कि बहुत शीघ्र वह संसार से विदा हो जाय।" जब किसी तरह उन्हें शांति न मिली, तो एक दिन एकांत-स्थान में, ईश्वर का ध्यान करके, नीचे-लिखे श्लोक का उच्चारण करते हुए फूट-फूट कर रोये—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

रोते-रोते नवयुवक तीर्थराम की आँखें लाल हो गईं। आँसुओं से कपड़े भीग गए। वे सैकड़ों प्रकार के करुणा-पूर्ण हृदय-वेधक वाक्यों का उच्चारण करते थे। अंत में वे ईश्वर से अत्यंत विगलित चित्त से, निम्न-लिखित प्रार्थना कविता रूप में करने लगे—

कुंदन के हम डले हैं जब चाहे तू गला ले।
बावर न हो तो हमको ले आज आज़मा ले॥
जैसे तेरी ख़ुशी हो सब नाच तू नचा ले।
सब छान-बीन करले हर तौर दिल जमा ले॥
राज़ी हैं हम उसी में जिसमें तेरी रज़ा है।
यां यों भी वाहवा है और वों भी वाहवा है॥

या दिलसे अब ख़ुश होकर कर हमको प्यार प्यारे।
ख़्वाह तेग़ खैंच ज़ालिम टुकड़े उड़ा हमारे॥

जीता रखे तू हमको या तनसे सिर उतारे।
अब राम तेरा आशिक़ कहता है यों पुकारे॥

राज़ी हैं हम उसी में जिसमें तेरी रज़ा है।
याँ यों भी वाह वा है और वों भी वाह वा है॥

ध्रुवकी प्रार्थना जिन कानों से सुनी गई थी, प्रह्लाद की पुकार जिन कानों में पहुँची थी, द्रौपदी के करुण-क्रंदन ने जिन कर्ण-कुहरों में प्रवेश किया था, ग्राह-ग्रसित गज की गुहार जहाँ लगी थी, नवयुवक रामतीर्थ का आर्त-नाद भी उन्हीं कानों में पहुँचा। भगवान् तो आज भी व्याघ्र बनने को तैयार हैं, किंतु कमी प्रह्लाद जैसे भक्तों की। दूसरे ही दिन कालेज के हलवाई, झंडूमल ने तीर्थरामजी से प्रार्थना की कि गोसाईंजी! साल-भर रोटी आप मेरे ही घर खा लिया करें। उसने रहने के लिये अपना घर भी दिया। कालेज के प्रोफ़ेसरों ने उन्हें ढाढ़स दिया और गणित के प्रोफ़ेसर श्रीयुत गिलबर्टसन (Gilbertson) साहब तो फ़ीस के रुपये अपनी तनख़्वाह से देने लगे। इसके अतिरिक्त गोसाईं जी को कुछ ट्यूशन भी मिल गये, जिससे उनकी बी० ए० की शिक्षा सोत्साह होती रही।

अबकी बार बी० ए० की परिक्षा में गोसाईं जी पंजाब में सबसे प्रथम रहे। इस परिक्षा के विषय में स्वामी जी ने अपने विश्वास नामक व्याख्यान में कहा था—

"राम जब बी० ए० की परीक्षा दे रहा था, तो परीक्षक ने गणित के परचे में १३ प्रश्न देकर ऊपर लिख दिया था कि इन १३ प्रश्नों में से कोई से ६ प्रश्न हल करो। राम के हृदय में विश्वास उमँग भर रहा था, उसने उतने ही समय में जितने में कि अन्य विद्यार्थियों ने कठिनता से ३ या ४ प्रश्न हल किये

होंगे, सब प्रश्नों को हल करके लिख दिया कि इन १३ प्रश्नों में से कोई से ६ प्रश्न जाँच लीजिए।" अस्तु।

बी० ए० की परीक्षा में फ़र्स्ट डिवीज़न में पास होने और युनिवर्सिटी-भर में प्रथम रहने से गोसाईं तीर्थरामजी को एम्० ए० के लिये ६०) रु० मासिक छात्र-वृत्ति मिलने लगी।

मिशन कालेज में उन दिनों एम्० ए०-क्लास नहीं खुली थी, इस लिये बी० ए० पास करने के बाद एम्० ए० की पढ़ाई आरंभ करने के लिये गोसाईंजी मई सन् १८६३ ई० को गवर्नमेंट कालेज में भरती हुए। इस समय गोसाईंजी की आयु १६॥ वर्ष के लगभग थी। जिस वर्ष गोसाईंजी ने बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की, उस वर्ष पंजाब युनिवर्सिटी की ओर से दो सौ पौंड की छात्रवृत्ति देकर किसी विद्यार्थी को सिविल सर्विस की परीक्षा के लिये विलायत भेजना था। गवर्नमेंट कालेज के प्रिंसिपल मिस्टर बेल ने जो उस समय स्थानापन्न रजिस्ट्रार थे और जो एक बार की अचानक भेंट से गोसाईं तीर्थराम के बड़े हितचिन्तक बन गए थे, गोसाईंजी के लिये सिफ़ारिश की। किंतु गोसाईंजी की अभिलाषा तो धर्म-उपदेशक वा अध्यापक बनने की थी, न कि सिविल-सर्विस-परीक्षा पास करके इक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर बनने की। इस कारण वह छात्र-वृत्ति किसी अन्य विद्यार्थी को मिल गई।

एम्० ए० में पढ़ते समय अपनी दिनचर्या के विषय में गोसाईं तीर्थराम ने अपने ता० ६ फ़रवरी सन् १८६४ ई० के पत्र में अपने गुरुजी को यों लिखा है कि:—

"मैं आजकल ५ बजे सवेरे उठता हूं और ७ बजे तक पढ़ता रहता हूँ। फिर दिशा आदि जाकर स्नान करता हूँ और व्यायाम करता हूँ। इसके पश्चात् पंडितजी की ओर जाता हूँ।

मार्ग में पढ़ता रहता हूँ। वहाँ एक घन्टे के बाद रोटी खाकर उनके साथ कालेज में जाता हूं। कालेज से डेरे आते समय मार्ग में दूध पीता हूँ। डेरे (निवास-स्थान) पर कुछ मिनट ठहरकर नदी को जाता हूं। वहाँ जाकर नदी-तट पर कोई आध घंटे के लगभग टहलता रहता हूँ। वहाँ से लौटते समय नगर के चहुँ ओर बाग में फिरता हूँ। वहाँ से डेरे आकर कोठे पर टह-लता रहता हूं। इतने में अँधेरा हो जाता है। (किंतु यह स्मरण रहे, मैं चलते-फिरते पढ़ता बराबर रहता हूं।) अँधेरा होने पर कसरत करता हूं और लैम्प जलाकर ७ बजे तक पढ़ता हूं। फिर रोटी खाने जाता हूं और 'प्रेम' (एक विद्यार्थी जिसको पढ़ाते थे) की ओर भी जाता हूं। वहाँ से आकर कोई १०-१२ मिनट तक अपने घर के वले (मकान में लगी हुई लकड़ी) के साथ कसरत करता हूं। फिर कोई साढ़े दस बजे तक पढ़ता हूँ और लेट जाता हूँ। मेरे अनुभव में आया है कि यदि हमारा पक्वाशय (मेदा) स्वस्थ दशा में रहे, तो हमें अत्यंत आनंद प्रफुल्लता, चित्त की एकाग्रता, परमेश्वर का स्मरण और अन्तर्शुद्धि प्राप्त होती है, बुद्धि और स्मरण-शक्ति अति तीक्ष्ण हो जाती है। पहले तो मैं खाता ही बहुत कम हूं, दूसरे जो खाता हूं उसे भली भाँति पचा लेता हूं।"

इस समय गोसाईंजी का भोजन अत्यंत हलका और सतो-गुणी होता था और आगे चलकर तो वह केवल दूध ही पर निर्वाह करने लगे थे। इस प्रकार के आहार से गोसाईंजी को आशातीत शक्ति प्राप्त हुई।

इन दिनों गोसाईं तीर्थरामजी प्राकृतिक दृश्यों के भी बड़े अनुरागी थे। और इन दृश्यों का चित्र वह जिस स्वाभाविकता से लिपि-बद्ध कर सकते थे, वह उनके पत्रों से प्रकट है। एक

प्राकृतिक दृश्य के वर्णन में आप अपने गुरुजी महाराज को १० जुलाई, १८९३ के पत्र में यों लिखते हैं:—

"यहाँ कल बड़ी वर्षा हुई थी। आज मैं कालेज से पढ़कर सैर करता हुआ डेरे आ रहा हूं। इस वक्त बड़ा सुहाना समय है। जिधर देखता हूं उधर जल नज़र आता है या सब्ज़ी। ठंडी-ठंडी पवन हृदय को बड़ी प्रिय लगती है। आकाश में बादल कभी सूर्य को छुपा लेते हैं, कभी प्रकट कर देते हैं। नाले-नालियों में पानी बड़े ज़ोर से बह रहा है। गोल बाग़ (लाहौर का बाग़) के वृक्ष फलों से भरपूर हैं, टहनियाँ झुककर पृथिवी से आ लगी हैं, यही प्रतीत होता है कि अनार, आ.डू, आम इत्यादि अभी गिरे कि गिरे। कबूतर, काक और चीलें बड़ी प्रसन्नता से हवा की सैर कर रहे हैं। वृक्षों पर पक्षी बड़े आनंद से गायन कर रहे हैं। भाँति-भाँति के पुष्प खिले हुए यही मालूम देते हैं कि मानो मेरी राह देखने के लिये आँखें खोले प्रतीक्षा में खड़े हैं। पृथ्वी पर हरियावल क्या है, सब्ज़ मलमल का बिछौना बिछा है। सरो और सपेदा के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष अभी स्नान करके सूर्य की ओर ध्यान किये एक टाँग से खड़े हैं, मानो संध्या-उपासना में मग्न हैं। आकाश की नीलिमा और सफ़ेदी ने अजब बहार बनाई है। मेंढक बरसात को खुशियां मना रहे हैं। हर एक तरफ़ से ख़ुशी के नक्कारे बज रहे हैं, मानो पृथ्वी आकाश का विवाह होने वाला है, जिसकी संतान कार्त्तिक और मगसर (मार्गशीर्ष) के सतोगुणी महीने होंगे। इस समय आप मुझे याद आते हैं। चूँकि मैं आपको यह सब चीज़ें दर्शा नहीं सकता, लिख देता हूं। अब मैं डेरे आ पहुँचा हूं।"

बी० ए० उत्तीर्ण करने के अनंतर गोसाईं तीर्थराम जी गणित-विद्या में अच्छी ख्याति पा चुके थे जिससे कई कालेजों

के बी० ए० और एम्० ए० के विद्यार्थी उनसे गणित सीखने आया करते थे। एक अँगरेज़-विद्यार्थी को भी वे गणित पढ़ाते थे। अपने कालेज नाम-मात्र को एक घंटे के लिये जाते थे, और अपना शेष समय मिशन-कालेज में एफ़० ए० और बी० ए० के विद्यार्थियों को गणित पढ़ाने में व्यय करते थे। इसके अतिरिक्त अन्य प्रोफ़ेसरों के गणित के परचे भी उनके पास देखने के लिये आते थे। इन सब बातों से उनके पास इतना काम बढ़ गया कि वे दिन-रात काम में व्यतिव्यस्त रहते थे। इसके सिवा व्यय का भार भी उन पर इतना अधिक था कि छात्र-वृत्ति के साठ रुपयों में से एक पैसा भी न बचता था। परीक्षा के समय फ़ीस जमा करने को उनके पास कुछ न था। अपने मौसिया की सहायता लेकर वह एम्० ए० की परीक्षा में प्रविष्ट हुए और परीक्षा दी। एप्रिल १८९५ में परिणाम निकला कि आप अत्यंत सफलता-पूर्वक एम० ए० परीक्षा में उत्तीर्ण हुए।

कार्य-क्षेत्र

एम्० ए० पास होने के पश्चात् गवर्नमेंट कालेज के प्रिंसिपल मिस्टर बेल (Bell) की सम्मति से, एफ़्० ए० और बी० ए० के विद्यार्थियों को १०) या १५) रु० मासिक लेकर गणित सिखाने के लिये आपने मई सन् १८९५ में प्राइवेट श्रेणियाँ खोलीं। किंतु घोर परिश्रम के कारण स्वास्थ्य बिगड़ जाने से, उन्हें स्वास्थ्य रक्षा के लिये, शीघ्र ही अपने गाँव मुरारीवाला जाना पड़ा। थोड़े दिनों बाद जब आप लाहौर आए, तो आप सनातनधर्म-सभा के मंत्री चुने गए। इसी अवसर पर आपने ला० हंसराज जी की सहायता से दयानंद ऐंग्लो-वेदिक कालेज में ड्राइंग सीखी।

तत्पश्चात् आप स्यालकोट 'अमरीकन' मिशन हाई स्कूलमें ७७)रु० मासिक पर सेकंड मास्टर नियुक्त हुए। और कुछ ही दिन बाद उक्त हाई स्कूल के बोर्डिङ्ग के सुपरिन्टेंडेंट भी हो गए। केवल दो मास इस पद पर काम करने के पश्चात्, एप्रिल १८६६ में, गोसाईंजी मिशन कालेज लाहौर में गणित के प्रोफ़ेसर, और तदनंतर मई १८६६ में सीनियर प्रोफ़ेसर के पद पर आसीन हुए।

इन दिनों हमारे गोसाईंजी के हृदय में कृष्ण-भक्ति का स्रोत बड़े वेग से उमड़ रहा था। आपने गीता का विधिवत् अनु-शीलन किया। त्याग आप में इस कोटि का था कि वेतन मिलते ही वह दीन दुखियों में बँट जाता और घर के लिये कुछ न रहता, जिससे उनके पिता गोसाईं हीरानंदजी वेतन मिलने के समय स्वयं लाहौर आते और घर के खर्च के लिये आवश्यक द्रव्य ले जाते। इन दिनों हमारे प्रोफ़ेसर तीर्थरामजी के अजमेर, शिमला, लाहौर, अमृतसर, पेशावर और स्यालकोट आदि स्थानों की सनातन-धर्म सभाओं में जो व्याख्यान होते थे, उनमें आप प्रेम और ईश्वर-भक्ति की स्रोतस्विनी में श्रोताओं को मग्न कर देते थे। व्याख्यान देते समय आपके अनुराग-पूर्ण नेत्रों से अविरल अश्रु-धारा प्रवाहित होती थी। लाहौर में "इश्क़े-इलाही" पर आपका जो भाषण हुआ, उसमें प्रेम के आवेश में आप इतना रोये कि हिचकियाँ आने लगीं। पेशावर में जो आप की "तृप्ति" विषय पर वक्तृता हुई, उसमें तो आप इतने विह्वल हुए कि बहुत देर तक आपके मुँह से शब्द ही न निकल सका। ऐसे ही भाषणों को सुनकर श्रीमन्नारायण स्वामी का मन-मधुकर भी गोसाईंजी के पाद पद्मों में लुभायमान हो गया।

इन्हीं दिनों द्वारका-मठ के अधीश्वर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजी महाराज लाहौर पधारे। लाहौर की सनातन-

धर्म-सभा की ओर से गोसाईंजी को उनकी सेवा का भार सौंपा गया। जगद्गुरुजी महाराज संस्कृत-भाषा के पूर्ण विद्वान् और वेदांत-शास्त्र के पारदर्शी थे। वे प्रायः उपनिषदों की कथा कहा करते थे और वेदांत-शास्त्र का उपदेश देते थे। उनके सत्संग से गोसाईंजी के पवित्र अंतःकरण पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उनका भक्ति-विगलित चित्त ज्ञान की अग्नि में चमकने लगा। उनकी कृष्ण-दर्शन की लालसा आत्म-साक्षात्कार में परिणत हुई। गरमियों की छुट्टियों में प्रति वर्ष मथुरा वृन्दावन की यात्रा करने के स्थान में अब वे उत्तराखंड के निर्जन वन और एकांत गिरि-गुहा का निवास ढूँढ़ने लगे। जगद्गुरुजी के उपदेश से अब गोसाईंजी गीता के साथ साथ उपनिषदों, ब्रह्मसूत्रों और वेदांत-ग्रंथों का निरंतर अध्ययन करने लगे। अब वे आत्म-विचार, आत्म-चिंतन, एवं आत्म-ध्यान में निमग्न होने लगे। जब अपने इस विचार-परिवर्तन की सूचना उन्होंने अपने पूर्व गुरु भगत धन्नारामजी को दी, तो वे अत्यंत प्रसन्न हुये और उन्होंने अत्यंत उत्साह-वर्द्धक उत्तर दिया, क्योंकि भगतजी पहले ही से ब्रह्म-ज्ञान में अनुरक्त थे।

जिस मकान में गोसाईंजी रहते थे, उसमें एकांत-अभ्यास का स्थान न होने से उन्होंने उसे छोड़कर एक दूसरा मकान हरिचरण की पौड़ियों में ले लिया। इस मकान में पहुँचकर गोसाईंजी ने कितने ही काम किये। यहीं पर एक बार लोक-विख्यात स्वामी विवेकानंदजी भी अपने साथियों सहित पधारे, और गोसाईंजी का आतिथ्य ग्रहण किया। इसी मकान से गोसाईंजी ने उर्दू-भाषा में 'अलिफ़' नाम का वेदांत की शिक्षा देने वाला एक मासिक पत्र भी निकाला। इसी मकान से जब उनके मानस-सरोवर में निजानंद की लहरें वेग से हिलोरें लेने

लगीं, तो वानप्रस्थ का जीवन व्यतीत करने के लिये वे स्त्री-पुत्रों सहित वन-वासी हुये। इसी मकान पर फ़रवरी १८९८ में, उन्होंने एक "अद्वैतामृतवर्षिणी" नाम की सभा स्थापित की, जिसमें प्रति बृहस्पतिवार को साधु-महात्मा और विवेकीजन एकत्रित होकर श्रवण-मनन-निदिध्यासन द्वारा निजानंद की प्राप्ति के लिये अपनी वृत्तियों को अंतर्मुखी करने का अभ्यास करते थे। इसी मकान में रहते-रहते जब निरंतर अभ्यास से निजानंद उमड़ने लगा और चित्त प्रतिदिन सांसारिक मोह-माया से मुड़ने लगा, तो उन्होंने भगवान् के आगे सदैव के लिये आत्म-समर्पण करके, अपने २५ अक्टोबर १८९७ ई० के पत्र में, अपने माता-पिता को लिख भेजा—

"मेरे परम पूज्य पिताजी महराज। चरण-वंदना। आपके पुत्र तीर्थराम का शरीर तो अब बिक गया। बिक गया राम के आगे। उसका शरीर अपना नहीं रहा। आज दीपमाला को अपना शरीर हार दिया और महाराज को जीत लिया। आपको धन्यवाद हो। अब जिस वस्तु की आवश्यकता हो, मेरे मालिक से माँगो, वह तत्काल स्वयं देंगे या मुझसे भिजवा देंगे। पर एक बार निश्चय के साथ उनसे आप माँगो तो सही। उन्नीस-बीस दिन से मेरे सारे काम बड़ी निपुणता से अब वह अपने आप करने लग पड़े हैं, आपके भला क्यों न करेंगे? घबराना ठीक नहीं। जैसी आज्ञा होगी, वैसा बर्ताव में आता जायगा। महाराज ही इन गोसाइंयों का धन हैं। अपने निज के सच्चे और अमूल्य धन को त्यागकर संसार की झूठी कौड़ियों के पीछे पड़ना हमको उचित नहीं। और उन कौड़ियों के न मिलने पर शोक करना तो बहुत ही बुरा है। अपने वास्तविक धन और संपत्ति का आनंद एक बार ले तो देखो।"

इसी मकान में ही श्रीमन्नारायण स्वामी (पूर्व आश्रम में नारायणदास) ने भी गोसाईं जी के सत्संग से तृप्त और मस्त हो कर उनके आगे अपने को पूर्ण समर्पित किया था और तब से वह निरन्तर उनके साथ रहते रहे, इत्यादि।

एप्रिल १८९८ में गोसाईं जी ने कटासरोज-तीर्थ की यात्रा की। इन दिनों यहाँ बहुत बड़ा मेला होता है, जिसमें अनेक साधु-महात्मा और विद्वान्-योगिराज आते हैं। किन्तु उन्नतमना गोसाईं जी इस मेले से प्रसन्न नहीं हुये, उन्होंने अपने गुरु जी को लिखा—"जो सुख एकांत-सेवन और निज धाम में है, वह कहीं भी नहीं"। इन्हीं दिनों गोसाईं जी का विद्यार्थियों के लाभ के लिये अँगरेज़ी में, गणित-विषय पर, एक विद्वता-पूर्ण भाषण हुआ, जो बाद में "How to excel in Mathematics (गणित में कैसे उन्नति कर सकते हैं)" नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। यह गोसाईं जी की पहली रचना थी, जो मुद्रित हुई। यह पुस्तिका अब स्वामी रामतीर्थजी के अँगरेज़ी लेक्चरों के साथ, जो "In Woods of God Realisation" के नाम से प्रकाशित हुये हैं, छपी है। लीग ने उसे अलग भी प्रकाशित किया है।

वन-गमन और आत्म-साक्षात्कार

सन् १८९८ की गरमी की छुट्टी में, एकांत-सेवन के विचार से, गोसाईं जी हरिद्वार से हृषीकेश होते हुये तपोवन पधारे। हृषीकेश से वन-गमन करते समय गोसाईं जी के पास जो कुछ पैसा-कौड़ी था, सो सब उन्होंने साधु-महात्माओं की सेवा में अर्पण कर दिया था और आप अकेले उपनिषदों की पुस्तकें साथ लिये, ईश्वर के भरोसे, तपोवन चल दिये। यह तपोवन

हृषीकेश से ८ मील के अन्तर पर आरम्भ हो जाता है। इसमें एक ब्रह्मपुरी-मंदिर है जिसके निकट कल्ल-कल्लोलिनी गङ्गाजी अपने कलकल-नाद से प्रवाहमान हैं। यह स्थान गोसाईं जी को बहुत ही भाया और यहीं पर उन्होंने अपना आसन जमा दिया। कहते हैं, यहाँ पर गोसाईं जी ने अत्यंत एकाग्र-चित्त हो कर आत्मसाक्षात्कार किया। इस स्थान पर निवास करके गोसाईं जी ने अपनी आंतरिक अवस्था और आत्म-साक्षात्कार का जो मनोहर वर्णन, उर्दू में, "जलवए-कुहसार" (पार्वतीय दृश्य) के नाम से किया है, पाठकों के विनोदार्थ उसका आभासमात्र यहाँ दिया जाता है। *

"गंगे! क्या वह तेरी ही छाती है जिसके दूध से ब्रह्म-विद्या पोषण पाती है? हिमालय! क्या वह तेरी ही गोद है जिसमें ब्रह्म-विद्या खेला करती है? नंगे सिर, नंगे पैर, नंगे शरीर, उपनिषदें हाथ में लिये, आत्म-साक्षात्कार की तरङ्ग में दीवाना वार राम पहाड़ी जङ्गलों में, गङ्गा-किनारे, फिर रहा है (और कह रहा है—)

बर्ग-हिना पै जाके लिखूँ दर्दे-दिल की बात;
शायद कि रफ़्ता-रफ़्ता लगे दिलरुबा के हात।

(पहाड़ की कन्दरा से प्रतिध्वनि होती है, मानों पर्वत राम से अपनी सहानुभूति प्रकट कर रहे हैं, राम की बात का हुंकारा भरते हैं—)

"इश्क़ का मन्सब लिखा जिस दिन मेरी तक़दीर में;
आह की नक़दी मिली, सहरा मिला जागीर में।"

---

* विस्तार-पूर्वक वर्णन के लिये ग्रन्थावली का १८ वाँ भाग देखो।

भीषण प्रतिज्ञा

"बस, तख़्त या तख़्ता (अर्थात् राजसिंहासन या चिता)। माता-पिता ! तुम्हारा लड़का अब लौट कर नहीं जायगा। विद्यार्थी लोगो! तुम्हारा विद्या-गुरु अब लौट कर नहीं जायगा। गृहणी ! तुम्हारा नाता कब तक निभेगा ? बकरे की माँ कब तक ख़ैर मनायेगी ? राम या तो सब सम्बन्धों से श्रेष्ठतर होगा, या तुम्हारी सब आशाओं के सिर पर एक सिरे से पानी फिर जायगा। या तो राम की आनन्दघन तरङ्गों में सब धन-धाम निमग्न होगा, या राम का शरीर गङ्गा की तरङ्गों के समर्पण होगा, देह-दशा का अन्त होगा। मर कर तो हर एक की हड्डियाँ गङ्गा में पड़ती हैं, किन्तु यदि राम को आत्म-साक्षात्कार न हुआ—यदि शरीर भाव की गंध शेष रह गई—तो राम की हड्डियाँ और मांस जीते जी मछलियों की भेंट होंगे।

बनके परवाना तेरा आया हूँ मैं ऐ शमए-तूर !
बात वह फिर छिड़ न जाए, यह तक़ाज़ा और है।"

अत्यंत प्रयत्न करने पर भी जब गोसाईं जी को आत्म-साक्षात्कार न हुआ, तो एक दिन व्याकुल हो कर उन्होंने अपना शरीर गङ्गा की धारा में बहा दिया। गङ्गा चढ़ाव पर थी, कल-कल-ध्वनि करता हुआ जल अत्यंत वेग से बह रहा था। एक विशाल तरङ्ग ने गोसाईं जी के शरीर का गाढ़ आलिंगन किया अपने भीतर छिपा लिया, और अत्यंत वेग से बहा कर एक पहाड़ी चट्टान पर, जो गङ्गा के भीतर थी, लिटा दिया। थोड़ी देर में जब पानी उतर गया; राम पहाड़ी पर उठ बैठे; और बोले—

"मैं कुश्तगाने-इश्क़ में 'सरदार' ही रहा ;
सर भी जुदा किया, तो 'सरे-दार' ही रहा।

खूने-आशिक़ चेह् कार मी आयद ;
न शवद् गर हिनाय-पाए-दोस्त ॥"

कहते हैं, राम को यहीं आत्म-साक्षात्कार हुआ, और वह बोल उठे—

"आज़ादा-अम, आज़ादा-अम; अज़ रंज दूर उफ़्तादा अम ;
अज़ हशवए ज़ाले-जहाँ आज़ादा अम, बाला स्तम । १ ।
तनहास्तम, तनहास्तम, चेह् बुलअजब तनहास्तम ;
जुज़ मन न बाशद् हेच शै, यक्तास्तम, तनहास्तम । २ ।
चूँ कार मरदुम मी कुनन्द अज़ दस्तो-पा हरकत कुनन्द ;
बेकार माँदम, जाय-हरकत हम मनम हर जास्तम । ३ ।
अज़ ख़ुद चहा बेरूँ ज़हम, गो मन कुजा हरकत कुनम ;
अज़ बहर चेह् कारे कुनम मन रूहे-मतलबहास्तम । ४ ।
चेह् मुफ़लिसम चेह् मुफ़लिसम बा ख़ुद नमी दारम जवे ;
अंजम जवाहिर मिहर-ज़र जुमला मनम, यक्तास्तम । ५ ।
दीवाना अम, दीवाना अम, वा अक़्लो-हुश बेगाना अम ;
बेहूदा आलम मी कुनम, ईं करदमो मन ख़्वास्तम । ६ ।
नमरूद शुद मरदूद चूँ ?—बूदश निगह महदूद चूँ ;
मारा तकब्बुर कै सज़द, चूँ किब्रिया हर जा स्तम । ७ ।
तालिब ! मकुन तौहीने-मन, दर ख़ाना अत राम अस्त बीं ;
रू ताफ़ती अज़ मन चरा ! दर क़ालबे-तो पैदा स्तम । ८ ।

अर्थ—१. मैं मुक्त हूँ, मैं मुक्त हूँ ; दुःख और शोक से दूर हूँ । जगत्-रूपी बुढ़िया की चटक-मटक से मुक्त हूँ—परे हूँ ।

२. मैं अकेला हूँ, मैं अकेला हूँ, कैसा आश्चर्य है, मैं अकेला हूँ ! मेरे सिवाय किसी वस्तु का अस्तित्व ही नहीं है:—मैं एकमेवाद्वितीयम् हूँ, नितान्त अकेला हूँ ।

३. जब सब लोग काम करते हैं और हाथ-पैर का संचालन करते हैं,

तो मैं अक्रिय रहता हूँ, क्योंकि गति का निकेतन तो मैं हूँ-समस्त विश्व मुझ ही से गति-शील है।

४. मैं अपने से बाहर कहाँ जाऊँ? बतला, मैं कहाँ गति करूँ? और किस लिये कोई काम करूँ? क्योंकि समस्त प्रयोजनों का प्राणात्मा तो मैं ही हूँ।

५. क्या मैं निर्धन हूँ?—क्या मैं सचमुच निर्धन हूँ, और अपने साथ एक जौ का दाना भी नहीं रखता हूँ?—नहीं! तारे, रत्न, सुवर्ण और सूर्य सब मैं हूँ—एक मैं ही हूँ।

६. मैं उन्मत्त हूँ, मैं विक्षिप्त हूँ, बुद्धि और विवेक से कुछ संबंध ही नहीं रखता। मैं व्यर्थ ही विश्व को उत्पन्न करता हूँ, और उत्पन्न करते ही उससे न्यारा हो जाता हूँ।

७. नमरूद * क्यों विताड़ित (मरदूद) हुआ है—इसलिये कि उसकी दृष्टि परिच्छिन्न थी। मुझे ऐसा अहंकार कब शोभा देता है, जब कि मैं सर्वोपरि श्रेष्ठ (महान्) और सर्वत्र व्याप्त हूँ।

८. ऐ जिज्ञासु! मेरा अपमान मत कर। देख, तेरे घर में 'राम' समाया हुआ है। तूने मुझसे मुँह क्यों मोड़ लिया? मैं तो तेरे हृदय में प्रकाशमान हूँ।"

---

* नमरूद शाम-देश का बादशाह था, जो अपने वैभव को सबसे बढ़ा हुआ देखकर अपने को ईश्वर कहने लगा था। ईश्वर की इच्छा से उसके कान में एक मच्छड़ घुस गया और उसके मस्तिष्क में फड़कने लगा। हकीमों ने उपाय बताया कि कोई आपके सिर पर जूते लगाया करे, तो आपको चैन पड़ेगी। तदनुसार वह सिंहासन पर बैठता था, और एक दास पीछे से उसके सिर पर जूते लगाया करता था। इसके पश्चात् एक फरिश्ते ने आकर उसका सब राज-पाट छीनकर उसे निकाल दिया। जब नमरूद ने गली-गली का भिखारी बनकर महा-दुःख सह लिया, तब उसके होश ठिकाने हुए और उसने पाप-पुण्य के फल-विधाता

विरक्त जीवन

इस एकांत-अभ्यास से मस्त और आत्मानन्द में मग्न गोसाईं तीर्थरामजी जब वन से लौटकर आए, तो उनके जीवन का ढंग ही दूसरा हो गया। अब वे संसार के व्यवहारों से बिलकुल अलग रहने लगे। पैसा-कौड़ी, घर-द्वार, अपने-पराये का भाव लुप्त होने लगा। वेतन मिलते ही वे उसे कालेज के छात्रों और चपरासियों के आगे रख देते और कह देते—"भगवन्, जिसको जितनी ज़रूरत हो, ले लो"। फिर भी जो बचता, उसे दीन-दुखियों और साधुओं को खिला देते। जो थोड़ी-बहुत रक़म गोसाईं हीरानंद के हाथ लगती, उससे घर का ख़र्च चलता। वेतन के अतिरिक्त उन्हें मिडिल और इन्ट्रेंस के विद्यार्थियों के पर्चे देखने की फ़ीस से भी यथेष्ट द्रव्य मिलता था, किंतु वह भी सब योंही ख़र्च हो जाता था। खाने-खिलाने के अतिरिक्त गोसाईंजी को पुस्तकावलोकन का भी बड़ा शौक़ था। इसके लिये मेसर्स रामकृष्ण एँड संस बुकसेलर, लाहौर का फ़र्म नियत था। कोई भी पुस्तक गणित-विज्ञान या तत्त्व-ज्ञान पर निकलती, वह तत्काल मँगाई जाती और अध्ययन के पश्चात् लाइब्रेरी में रक्खी जाती। इन सब ख़र्चों का परिणाम यह होता कि प्रायः महीने के अंत में जब उनके पास खाने तक को न रहता, तब उपवास किए जाते और जब कभी जलाने को

के अस्तित्व को स्वीकार किया। श्रीस्वामीजी महाराज कहते हैं कि नमरूद के दुर्दशा भोगने का कारण यह हुआ कि उसने अपने को ईश्वर तो जाना, किंतु अपने परिच्छिन्न शरीर-मात्र को ही ईश्वर जाना, समस्त चराचर जगत् को ईश्वर नहीं जाना। इसी से उसकी यह दुर्गति हुई किंतु मैं नमरूद-जैसा अहंकार नहीं करता।"

तेल तक न रहता, तो पुस्तकें लेकर घर से बाहर ऐसे स्थानों में पहुँच जाते, जहाँ प्रकाश होता। उनकी यह दशा पढ़कर पाठक कहीं यह न समझ बैठें कि गोसाईं तीर्थरामजी दुःखी और दरिद्र रहते थे। नहीं नहीं, महापुरुष गोसाईं तीर्थरामजी इस अवस्था में जितने सुखी और संतुष्ट थे, उतना कोई चक्रवर्ती सम्राट् भी हो सकता है या नहीं इसमें संदेह है। उन्होंने अपने ११ दिसम्बर १८९८ के पत्र में अपने गुरुजी को लिखा है:—

* "राम इस बाहरी ग़रीबी की वजह से लाइन्तहा दर्जे की अमीरी और बादशाही कर रहा है। पहले तो बड़ी चिंता के साथ अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयत्न हुआ करता था; अब आवश्यकताएँ बेचारी अपने आप पूरी होकर सम्मुख आ जाएँ तो राम की दृष्टि उन पर पड़ जाती है; नहीं तो उनके भाग्य में राम का ध्यान कहां? प्रारब्ध-कर्म और काल-रूपी सेवकों की सौ बार ग़रज़ हो, तो आकर राम-बादशाह के चरण चूमें; अन्यथा उस शाहंशाह को इस बात की क्या परवाह है कि अमुक सेवक आकर अपना नृत्य कर गया है या नहीं।

सौ बार ग़रज़ होवे तो धो-धो पियें क़दम।
क्यों चर्ख़ो मिहरो-माह पै मायल हुआ है तू।
ख़ंजर की क्या मजाल कि इक ज़ख़्म कर सके;
तेरा ही है ख़याल कि घायल हुआ है तू।"

हम पहले कह आये हैं कि जबसे राम-बादशाह उत्तराखंड से आए, उनके जीवन का स्रोत दूसरी ओर प्रवाहित होने लगा था। अब उनकी यह दशा थी कि कालेज में विद्यार्थियों को गणित के प्रश्न समझाते समय वे वेदांत के सिद्धांत सिद्ध करने लगते और अवसर पाकर उन्हें शम्सतबरेज़, मौलाना रूम

* गोसाईं तीर्थराम इन दिनों अपने को केवल 'राम' ही कहने लगे थे।

आदि के उच्च कोटि के शेर सुनाकर, सूफ़ी-धर्म की गंभीर उक्तियों का मर्म खोलने लगते। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि विद्यार्थियों के चित्तों पर इन सब बातों का बड़ा प्रभाव पड़ता। वे राम को महापुरुष मानकर उनके प्रति भक्तिमान रहते। इस बात से मिशन-कालेज के मति-मलीन मिशनरियों एवं स्वार्थ-परायण प्रोफ़ेसरों को उनसे ईर्ष्या उत्पन्न हो गई। उन लोगों ने परस्पर परामर्श करके साधु-प्रकृति गोसाईंजी को सलाह दी कि "आप जिनकी जगह पर काम करते हैं, वह प्रोफ़ेसर साहब अब विलायत से आनेवाले हैं, इसलिये यदि कहीं आपको जगह मिल सके, तो उसे प्राप्त करने का अभी से प्रबन्ध करें, नहीं तो कुछ दिनों बाद आपको बेकार बैठना होगा।" विश्व की वसुधा को तृणवत् समझनेवाले शाहंशाह राम यह सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुए, क्योंकि वह उस नौकरी को पहले ही से छोड़ना चाहते थे। उसी समय ज्ञात हुआ कि ओरियंटल कालेज में रीडरी का स्थान रिक्त है, और वहाँ केवल दो घंटे की ड्यूटी है। गोसाईंजी वहाँ नियुक्त हो गये। थोड़े ही दिनों बाद इस कालेज में गोसाईंजी को वेदांत और गणित पढ़ाने का काम सौंपा गया। गोसाईंजी का हृदय खिल उठा। मानों सोने में सुगंध आ गई। अब क्या था, राम-बादशाह के हृदय में भरा हुआ ज्ञान का अगाध सोता, जो झरना-रूप में चू-चू कर निकल रहा था, अब एक वेगवती नदी की धारा के समान बहने लगा। इसी समय भगत धन्नारामजी ने उन्हें सूचना दी कि मुरारीवाला में राम-बादशाह के घर पुत्र उत्पन्न हुआ है। इस सूचना का जो उत्तर गोसाईंजी ने दिया है, वह उनकी हार्दिक विशालता और निरासक्ति का पूर्ण फ़ोटो है। आप लिखते हैं कि—

"आपके पत्र से मालूम हुआ कि पुत्र उत्पन्न हुआ है। समुद्र में एक नदी आन पड़े, तो कुछ ज़्यादती नहीं हो जाती; और नदी कोई न गिरे, तो कुछ कमी नहीं हो जाती। सूर्य का जहाँ प्रकाश हो, वहाँ एक दीपक रक्खा गया तो क्या और न रक्खा गया तो क्या? जो ठीक उचित है, वह स्वतः पड़ा होगा। किसी प्रकार का शोक तथा चिंता हम क्यों करें? यह शोक चिंता करना ही अनुचित है। हम ज्ञानी नहीं, ज्ञान स्वयं हैं। देह से संबंध ही कुछ नहीं, देह और उसके संबंधी जानें और उनकी प्रारब्ध जानें, हमें क्या?

मनोबुद्ध्यहंकारचित्तानि नाहं,
न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे।
न च व्योमभूमिर्नतेजो न वायुः
चिदानंदरूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्॥ १॥

अर्थ—मैं मन नहीं, बुद्धि नहीं, अहंकार नहीं, चित्त नहीं, कान जिह्वा, नासिका, और आँख भी नहीं; पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश भी नहीं, मैं तो चिदानंद-स्वरूप हूँ, शिव हूँ, शिव हूँ।

गोसाईं जी की इस ब्रह्म-विद्या में निमग्न वृत्ति के कारण लड़के का नाम ब्रह्मानंद रक्खा गया। (आजकल यह लड़का बी० ए०, एल एल० बी० पास करने के बाद पंजाब की एक रियासत में बड़ा अफ़सर है।)

इस वर्ष गरमियों की छुट्टियों में गोसाईं जी ने अमरनाथ की यात्रा की। मार्ग में श्रीनगर और कशमीर की सैर करते हुए वहाँ की शोभा निरखकर उनके चित्त में जो आनंद का उद्रेक हुआ, उसे गोसाईं जी ने "कशमीर की सैर" नाम से स्वयं अपनी लेखनी से लिखा है। विस्तार-भय हमें उस मनोहर वर्णन का किंचित् आभास देने को विवश करता है। जब मस्त और

आनंद-स्वरूप राम अमरनाथ से लौटकर आये, तो उनकी पवित्रता की ख्याति नगर में खूब फैल गई। इसी समय श्रीमन्नारायण स्वामी भी राम-बादशाह के दर्शन करने और उनका उपदेश सुनने को उनके निकट जाने लगे। राम के दर्शन और उपदेशों का श्रीमन्नारायण स्वामी के चित्त पर ऐसा जादू-भरा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने अपने को राम के चरणों में समर्पण कर दिया। राम और नारायण के संयोग का फल-स्वरूप, लाला हरलालजी की आर्थिक सहायता से एक प्रेस खोला गया और "अलिफ़"-नाम का एक उर्दू पत्र निकाला गया। इस पत्र के दो ही तीन अंक निकले थे कि इसके लेख पाठकों को इतने पसंद आये कि इसके पहले और दूसरे अंकों को दो-दो तीन-तीन बार छापकर पाठकों की सेवा में भेजना पड़ा।

वानप्रस्थ या वन-वास

इस आनंद-पूर्ण पत्र के अभी तीनही अंक निकले थे कि ज्ञान की लाली राम के भीतर समा न सकी, उसकी लवें बाहर निकलने लगीं। अब राम-बादशाह को दस गज़ धरती के परकोटे में घिरकर बैठना और नर-नारियों के कोलाहल-पूर्ण नगर में रहना असंभव हो गया। अतः विरक्त और रंगे चित्त से विवश हुये राम, जुलाई १६०० में, नौकरी छोड़ वनों को सिधारे। उनकी धर्मपत्नी भी पुत्रों-सहित उनकी संगिनी हुईं। साथ में स्वामी शिवगणाचार्य, ला० तुलाराम (पश्चात् स्वामी रामानंद), लाला गुरुदास (पश्चात् स्वामी गोविंदानंद), अमृतसर-निवासी महात्मा निक्केशाह और नारायणदास (पश्चात् श्रीनारायण स्वामी), आदि सज्जन उनके साथ हो लिये। प्रेम और आनंद के आँसुओं से भरे हुये कालेजों के विद्यार्थी,

भजन-मंडलियों को साथ लिये और त्याग-वैराग्य-भाव के उद्दीपक भजनों को गाते, राम-बादशाह पर फूलों की वर्षा करते हुये, उन्हें स्टेशन पहुँचाने आए। स्टेशन पर दर्शकों का मेला लग गया। विदाई राम के ही शब्दों में सुनिये—

"अलविदा मेरी रियाज़ी! अलविदा।
अलविदा, ऐ प्यारी रावी! अलविदा।
अलविदा ऐ अहले-ख़ाना! अलविदा।
अलविदा मासूमे-नादाँ! अलविदा।
अलविदा ऐ दोस्तो-दुश्मन! अलविदा।
अलविदा ऐ शीत-उष्ण! अलविदा।
अलविदा ऐ कुतुबो-तदरीस! अलविदा।
अलविदा ऐ खुवसो-तक़दीस अलविदा।
अलविदा ऐ दिल! खुदा ले अलविदा।
अलविदा राम! अलविदा, ऐ अलविदा।

यारो, वतन से हम गये, हम से वतन गया;
नक़्शा हमारे रहने का जंगल में बन गया।

जीने का न अंदोह, न मरने का ज़रा ग़म;
यकसाँ है उन्हें ज़िंदगी और मौत का आलम।
वाक़िफ़ न बरस से, न महीने से वह इकदम;
शब की न मुसीबत, न कहीं रोज़ का मातम।
दिन-रात घड़ी-पहर महो-साल में खुश हैं;
पूरे हैं वही मर्द जो हर हाल में खुश हैं।

कुछ उनको तलब घर की, न बाहर से उन्हें काम,
तकिया की न ख़्वाहिश है, न बिस्तर से उन्हें काम।
महलों की हवस दिल में न मंदिर से उन्हें काम,

मुफ़लिस से न मतलब न तवंगर से उन्हें काम।
मैदान में, बाज़ार में, चौपाड़ में .खुश हैं;
पूरे हैं वही मर्द जो हर हाल में .खुश हैं।"
——इत्यादि

लाहौर से चलकर राम हरिद्वार पहुँचे। वहाँ से बदरी-नारायण का मार्ग पकड़ लिया। थोड़ी दूर चलकर जब देव-प्रयाग पहुँचे, तो स्वामी शिवगणाचार्य आदि कई साथी यहाँ से अलग हो गये। वे लोग तो बदरीनारायण की ओर रवाना हुये और राम गंगोत्री की ओर चले। जब टिहरी पहुँचे, तो राम एकांत-स्थल खोजने लगे। टिहरी से लगभग दो मील की दूरी पर सेठ .मुरलीधर का एक बहुत बड़ा बागीचा था, जिसे उक्त सेठ ने साधु-महात्माओं के एकांत-अभ्यास के लिये ही संकल्प कर दिया था। राम ने वहीं आसन जमा दिया। पैसा-कौड़ी जो कुछ जिसके पास था, राम-बादशाह ने उसे गंगा में फिकवा दिया, और सबको एकांत-स्थान में अलग-अलग बैठकर 'अहंग्रह-उपासना' करने का आदेश किया। उन्होंने स्पष्ट कह दिया—"अब ईश्वर पर पूर्ण विश्वास करके निश्चिंत होकर अभ्यास करो।" राम की आज्ञा में विश्वास करके सब लोग यथास्थान चले गये। उसी दिन प्रातः १० बजे अकस्मात हृषीकेश के कलकत्ता-क्षेत्र का मैनेजर वहाँ आया और सब लोगों के भोजनों का प्रबंध करके चला गया। राम के इस ईश्वर-विश्वास और दैवी साहाय्य से लोग विस्मित हो गये, और भविष्य के लिये सबके हृदयों में ईश्वर पर दृढ़ विश्वास हो गया। यहाँ रहकर राम की मस्त लेखनी से जो धारा प्रवाहित हुई, वह 'वन-वास' के नाम से छपी है।

कुछ समय यहाँ रहने के बाद एक दिन राम अपने

साथियों से बिना कुछ कहे, दमयंती की नाईं अपनी स्त्री को सोती छोड़, राजा नल की तरह आप आधी रात को, अकेले, नंगे पैर, नंगे शिर, उत्तर-काशी की ओर चल दिये। राम की इस लीला से उनकी साध्वी स्त्री के चित्त पर ऐसी गहरी चोट लगी कि वे बीमार हो गईं। राम यद्यपि कुछ दिन पश्चात् कृपा करके फिर वहीं लौट आये, किन्तु उनकी पत्नी का स्वास्थ्य न सँभल सका। कुछ उस वन का जल-वायु भी उनके अनुकूल न हुआ। जब उनके स्वस्थ होने की आशा जाती रही, तो उन्होंने राम से अपने पुत्र (ब्रह्मानन्द) के साथ घर जाने की इच्छा प्रकट की और राम की आज्ञा से ब्रह्मचारी नारायणदास उन्हें मुरारीवाला-ग्राम में, उनके श्वसुर गोसाईं हीरानन्द जी के निकट भेज आये।

संन्यास-ग्रहण और तीर्थ-भ्रमण।

इस तरह राम को एकान्त-निवास करते-करते जब छः मास हो गये, तो उनके भीतर संन्यास लेने की इच्छा तरंगें मारने लगी। हम पहले बतला आये हैं कि द्वारका-मठाधीश जगद्गुरु शंकराचार्य ने अपनी भेंट के समय उन्हें आज्ञा दे रक्खी थी कि "जब वैराग्य का स्रोत किसी तरह भीतर न समा सके, तो गंगा-तट पर संन्यास ले लेना।" यही हुआ भी। सन् १९०१ के आरंभ में, स्वामी विवेकानंद जी के शरीर त्यागने के कुछ दिन पहले, एक दिन राम-बादशाह ने नापित को बुलाकर सर्वतोभद्र कराया, गेरुए कपड़े रँगे गए, राम ने गंगा के बीच में खड़े होकर, ॐ ॐ का उच्चारण करते हुए, यज्ञोपवीत उतारकर गंगा को सौंपा और सूर्य-भगवान् को साक्षी करके गोसाईं तीर्थराम से स्वामी रामतीर्थ होकर गंगा से बाहर निकले और गेरुए

वसन धारण कर लिए। उस समय उनके गौर-कांत, सुंदर मुख-मंडल पर एक अपूर्व, अलौकिक, दिव्य तेज देखा गया। उनके संन्यास-ग्रहण की सूचना प्रथम तो उनके गुरुदेवजी को और पश्चात् सर्वत्र भेजी गई। खबर पाकर प्रतिदिन सैकड़ों मनुष्य उनके दर्शन करने और उपदेश सुनने के लिये आने लगे।

संन्यास लेने के पश्चात् स्वामीजी वहाँ छः महीने तक रहे, किंतु जब मनुष्यों के गमनागमन से वह स्थान एकांत न रह गया, तो स्वामी राम, १४ जून १९०१ ई० को, चुपके से चल दिए और वहाँ से ४-५ मील की दूरी पर, गंगा के किनारे, बमरोगो-गुफ़ा में, रहने लगे। वहाँ भी दो एक मास निवास करके ब्रह्मचारी नारायणदास और तुलाराम (पश्चात् श्रीनारायण स्वामी और रामानंद स्वामी) को साथ लेकर, १६ अगस्त १९०१ ई० को, राम-बादशाह यमुनोत्री, गंगोत्री, त्रियुगीनारायण, केदारनाथ, बदरीनारायण की यात्रा के लिये चल दिए। स्वामी राम ५ सितम्बर १९०१ ई० अर्थात् जन्माष्टमी को यमुनोत्री पहुँचे और एक मास वहाँ रह कर यमुनोत्री के ऊपर, सुमेरु-पर्वत पर, जो बंदरपूछ के नाम से प्रसिद्ध है, सैर करने गए। वहाँ के मनोरम दृश्य से स्वामी राम को जो आनंद मिला उसका वर्णन उन्होंने 'सुमेरु-दर्शन' नाम के एक गद्य-पद्य-मय लेख में किया है। यमुनोत्री पहुँचने पर उनके चित्त की जो प्रफुल्लित, मस्त और आनंदमय अवस्था थी, वह उनके निम्नांकित गद्य-पद्य-मय पत्र से स्पष्ट है—

"इस बुलन्दी पर माश की दाल नहीं गलती, न दुनिया की ही दाल गलती है। निहायत गर्म-गर्म चश्मासार (अति उष्ण स्रोत), क़ुदरती लालाज़ार (प्राकृतिक दृश्य), चमकदार चाँदी को शरमाने वाले सफ़ेद दुपट्टे (अर्थात् यमुना के जल पर झाग,

फेन) और उनके नीचे आकाश की रंगत को लजानेवाला यमुना रानी का गात बात-बात में कशमीर को मात करते हैं।

"आबशार (झरने) तो तरंगे बे.खुदी में (निजानन्द में मग्न हुए) नृत्य कर रहे हैं, यमुना-रानी साज़ बजा रही हैं। राम-शाहंशाह गा रहा है—

हिप हिप हुर्रे। हिप हिप हुर्रे॥ (टेक)

अब देवन के घर शादी है, लो राम का दर्शन पाया है।
पाकोवां[1] नाचते आते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे॥ १॥
.खुश .खुर्रम मिल-मिल गाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे।
है मंगल साज़ बजाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे॥ २॥
सब ख़्वाहिश मतलब हासिल हैं, सब ख़ूबों से मैं वासिल हूँ।
क्यों हमसे भेद छुपाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे, ॥ ३॥
सब आँखों में मैं देखूँ हूँ, सब कानों में मैं सुनता हूँ।
दिल बरकत मुझसे पाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे॥४॥
गह इश्वह सीमीबर का हूं, गह नारा शेरे-बबर का हूं।[2]
हम क्या-क्या स्वाँग बनाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे॥५॥
मैं कृष्ण बना, मैं कंस बना, मैं राम बना, मैं रावण था।
हाँ, वेद अब क़समें खाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे॥६॥
मैं अंतर्यामी साकिन[3] हूं, हर पुतली नाच नचाता हूं।
हम सूतर तार हिलाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे॥ ७॥
सब ऋषियों के आईना-दिल में मेरा नूर दरख़्शाँ[4] था।
मुझ ही से शायर लाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे॥ ८॥
हर इक का अंतर आतम हूं, मैं सबका आक़ा-साहिब हूं।

---

(१) पावों से, (२) कभी चाँदी जैसी सुंदरी का नख़रा हूं, (३) अचल, (४) चमक रहा है।

मुझ पाय दुखड़े जाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ ९ ॥
मैं ख़ालिक, मालिक, दाता हूं, चश्मक[6] से दहर बनाता हूं।
क्या नक़्शे रंग जमाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥१०॥
इक कुन से दुनिया पैदा कर, इस मंदिर में .खुद रहता हूं।
हम तनहा शहर बसाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हु ॥११॥
वह मिसरी हूं जिसके बाइस दुनिया की इशरत शीरीं है।
गुल मुझसे रंग सजाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥१२॥
मसजूद हूं क़िवला[10], काबा हूं, माबूद[11] अज़ां[12] नाक़ूस[13] का हूं।
सब मुझको कूक बुलाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥१३॥
कुल आलम[14] मेरा साया है, हर आन बदलता आया है।
ज़ल[15] क़ामित[16] गिर्द घुमाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥१४॥
यह जगत हमारी किरणें हैं, फैलीं हरसू[17] मुझ मरकज़ से।
शाँ बूक़लमू[18] दिखलाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥१५॥
मैं हस्ती सब अशिया की हूं, मैं जान मलायक[19] कुल की हूं।
मुझ बिन बेबूद कहाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ १६॥
ज़ादूगर हूं, जादू हूं .खुद, और आप तमाशा-बीं मैं हूं।
हम जादू खेल रचाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ १७ ॥
बेजानों में हम सोते हैं, हैवाँ में चलते-फिरते हैं।
इन्साँ में नींद जगाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ १८ ॥
संसार तजल्ली[20] है मेरी, सब अंदर बाहिर मैं ही हूं।
हम क्या शोले[21] भड़काते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥१९॥

---

(५) जगत्कर्ता, (६) पलक मारने से, (७) समय, युग, (८) आज्ञा, (९) वंदनीय, (१०) प्रतिष्ठापात्र, (११) पूजनीय वा प्रार्थनीय, (१२) बाँग, (१३) शंख, (१४) जगत, (१५) साया, (१६) बिम्ब, (१७) सब ओर, (१८) नाना प्रकार, (१९) देवता, (२०) प्रकाश, (२१) लपटें, तेज।

है मस्त पड़ा महिमा में अपनी, कुछ भी ग़ैर अज़ राम नहीं।
सब कल्पित धूम मचाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥२०॥

दीवानगी को दिन-दूनी रात चौ-गुनी तरक्क़ी है। "दीवाना रा हुए बसस्त" वाला हाल है। क़ालिबे-अन्सरी (शरीर) का कुछ पता नहीं।

ख़ुराक—फलाहार जो यमुना-रानी अपने हाथ से पका देती हैं अर्थात् गरम कुण्ड में ख़ुद ब ख़ुद तैयार कर देती हैं।

स्नान—कभी-कभी सौ-सौ फ़ीट की बुलंदी से गिरनेवाले आवशारों के नीचे स्नान की मौज लूटी जाती है, कभी सदियों की जमी हुई बर्फ़ से ताज़ा-ताज़ा निकलकर जो यमुना जी आती हैं, उसमें स्नान का लुत्फ़ उठाया जाता है, और कभी कुण्डों के तत्ते पानी में शहंशाह सलामत ग़ुसल फ़रमाते हैं।

चलना-फिरना—सब जगह बिलकुल नंगे बदन से होता है।

—राम-शहंशाह"

सुमेरु-दर्शन के अनन्तर स्वामी रामतीर्थ यमुनोत्री आए। यमुनोत्री से घरसाली गाँव होकर, ऊपर के तुषारपूर्ण दुर्गम मार्ग से धराली गाँव होते हुए गंगोत्री पहुँचे। इस विकट हिमानी-मार्ग की यात्रा का विस्तृत वर्णन स्वामीराम ने अंग्रेज़ी में, एक पुस्तिका-रूप में किया है। गंगोत्री में रहने के पश्चात् स्वामी राम बूढ़े केदार और त्रियुगी-नारायण के मार्ग से केदारनाथ गये और केदारनाथ से बदरीनारायण की यात्रा की। बदरीनारायण दीपमालिका से एक सप्ताह पहले पहुँचे। उस वर्ष सूर्य और चंद्र, दोनों ग्रहण एक ही पक्ष में पड़े थे। सूर्य-ग्रहण-स्नान करने के पश्चात् स्वामी राम ने एक कविता लिखी जिसके दो-एक पद, पाठकों के विनोदार्थ, यहाँ दिये जाते हैं—

इश्क़ का तूफ़ाँ बपा है हाजते-मयख़ाना[1] नेस्त।
ख़ूँ शराबो, दिल कबाबो, फ़ुर्सते[2]-पैमाना नेस्त ॥ १ ॥
सख़्त मख़्मूरी[3] है तारी, ख़्वाह कोई क्या कुछ कहे।
पस्त है आलम नज़र में वहशते-दीवाना नेस्त ॥ २ ॥
अलविदा ऐ मर्ज़े-दुनिया, अलविदा ऐ जिस्मो-जाँ।
ऐ अतशँ[4], ऐ जू[5], चलो, ईंजा कबूतर-ख़ाना नेस्त ॥ ३ ॥
क्या तजल्ली है यह नारे-हुस्न[6] शोला-ख़ेज़[7] है।
मार ले पर ही यहाँ पर ताक़ते-परवाना नेस्त ॥ ४ ॥
मेहूर हो, मह हो, दबिस्ताँ[8] हो गुलिस्ताँ कोहसार[9]।
मौजज़न[10] अपनी है ख़ूबी, सूरते-बेगाना नेस्त ॥ ५ ॥
लोग बोले, ग्रहण ने पकड़ा है सूरज को, ग़लत।
ख़ुद हैं तारीकी में वरमन[11] साया महजूबाना[12] नेस्त ॥ ६ ॥
उठ मेरी जाँ, जिस्म से, हो ग़र्क़[13] ज़ाते-राम में।
जिस्म बदरीश्वर की मूरत हर्कते-फ़र्ज़ाना[14] नेस्त ॥ ७ ॥

धर्म-सभाओं के जलसे और श्रीनारायण-स्वामी को संन्यास।

जब स्वामीराम बदरीनारायण से लौटने लगे, तो मथुरा से स्वामी शिवगणाचार्यजी का पत्र मिला, जिससे विदित हुआ कि वहाँ उन्होंने एक 'रिलीजस कानफ्रेंस' सब मतों का धार्मिक

---

(१) शराबख़ाने की ज़रूरत, (२) प्याले की ज़रूरत, (३) निजानन्द घन, (४) प्यास, (५) भूख, (६) सुन्दरता की अग्नि, (७) भड़की हुई, (८) पाठशाला, (९) पर्वत, (१०) तरंगमयी, (११) मुझ पर, (१२) पर्दे में छुपे हुये के समान, (१३) राम के स्वरूप में निमग्न, (१४) बालकवत् चेष्टा,

उत्सव करने का महोद्योग किया है, जिस का सभापति स्वामी रामतीर्थजी को मनोनीत किया गया है। अतः दिसम्बर १६०१ में, स्वामीजी अपने साथियों (ब्रह्मचारी नारायणदास और तुलाराम) सहित मथुरा पहुँचे और उस धर्म-महोत्सव में सभापति के आसन को सुशोभित किया। यहाँ राम बादशाह के मनोहर उपदेश और उनकी दिव्य तेज-पूर्ण मूर्ति के दर्शन से दर्शकों पर जो प्रभाव पड़ा, उसका लेखनी द्वारा वर्णन नहीं हो सकता।

मथुरा के बाद, फ़रवरी १६०२ में, स्वामी राम साधारण-धर्म-सभा के दूसरे वार्षिक अधिवेशन में फ़ैज़ाबाद आये। यहाँ हिंदू, मुसलमान, ईसाई और अन्य धर्म के प्रचारकों ने अपने-अपने धर्म की विशेषताएँ दिखलाईं। इस उत्सव में मुसलमानी धर्म की ओर से मौलवी मुहम्मद मुर्तज़ाअलीख़ां साहब स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने वाले थे, किन्तु ज्योंही मौलवी साहब स्वामी जी के सम्मुख आये और उनकी मनोहर मूर्ति के दर्शन किये, तो न मालुम उनका वह विरोध-भाव कहां चंपत हो गया, उलटे उनकी आँखों से प्रेमाश्रु बहने लगे, और वे राम के बड़े प्रेमी बन गये।

साधारण-धर्म-सभा फ़ैज़ाबाद के वार्षिकोत्सव पर स्वामी राम की आज्ञा से ब्रह्मचारी नारायणदास ने भी व्याख्यान दिया था। नारायणदास के भाषण का श्रोताओं पर बड़ा प्रभाव पड़ा। यह देख स्वामी राम ने उन्हें संन्यास लेकर देश में उपदेश देने की आज्ञा दी। तदनुसार, मार्च १६०२ में, नारायणदासजी को संन्यास मिला और वे राम से अलग होकर गेरुए बसन पहनकर देश-देश में विचरने लगे। किंतु केवल ४ महीने विचरण कर, जून १६०२ में, वे फिर स्वामीजी के निकट पहाड़ों पर आ गये।

टिहरी के महाराज से भेंट।

मई १६०२ में, जब स्वामीराम टिहरी-पर्वत पर गये, तो रायबहादुर लाला बैजनाथ बी० ए० रिटायर्ड जज, आगरा भी उनके साथ हो लिये। टिहरी से देहरादून की ओर, लगभग ११ मील के अंतर पर, कौड़िया चट्टी नाम का एक पड़ाव है। यहाँ विशाल दुर्ग के समान एक पुरातन प्रासाद है, जो जीर्ण-शीर्ण पड़ा है। उसके चहुँ ओर सुविस्तीर्ण मैदान और विविध भांति के सुरभित सुमनों से समाकीर्ण सघन वन है। इस रम्य स्थान पर यह जान पड़ता था, मानों प्रकृति देवी पुष्प-पादप-राज़ि से लज्जित होकर, मुग्धा-नायिका की भांति, राम-बादशाह की प्रतीक्षा कर रही थीं। राम ने भी वहीं अपना आसन जमा दिया।

संयोग से टिहरी के महाराज, जो वाइसराय से मिलने के लिये देहरादून आ रहे थे, उस मार्ग से निकले और उसी चट्टी पर मुक़ाम किया। महाराज को जब राम बादशाह के आगमन का समाचार मिला, तो उनके मन में दर्शनों की अत्यन्त उत्कंठा हुई। उन्होंने अपने वज़ीर द्वारा राम-बादशाह से दर्शन देने की प्रार्थना की। राम-बादशाह वज़ीर साहेब के साथ चले। टिहरी-महाराज, जो स्वागत के लिये मार्ग में खड़े थे, राम-बादशाह को अपने डेरे पर ले गये। महाराज टिहरी एक विद्वान् पुरुष थे, किन्तु उनके चित्त पर हरबर्ट स्पेंसर (Herbert Spencer) के अज्ञेय-वाद (Agnosticism) ने अधिकार जमा रक्खा था, इस लिये वे Agnostic (अज्ञेय-वादी) प्रसिद्ध थे। राम-बादशाह के वहां पहुँचते ही एक बहुत बड़ा दरबार लग गया। महाराज टिहरी ने ईश्वर के अस्तित्व-संबंध में प्रश्न किया। राम बादशाह

ने नाना युक्ति प्रमाणों से, (दिनके २ बजे से ५ बजे तक) ठीक तीन घंटे भाषण करके, ईश्वर का अस्तित्व प्रत्यक्ष सिद्ध करने का प्रयत्न किया। इस सत्संग का महाराज के हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा और वे अत्यन्त विनीत-भाव और श्रद्धा-सहित राम-बादशाह से प्रार्थी हुये कि "हृदय के बहुत-से संशय तो निवृत्त हो गये हैं, पर यदि राम महाराज टिहरी वा प्रतापनगर पधारने की कृपा करेंगे और ऐसे ही सत्संग की वर्षा होती रहेगी, तो सब संशय अवश्य नष्ट हो जायँगे"।

विदेश-यात्रा।

टिहरी में कुछ दिन निवास करने के पश्चात् स्वामी रामतीर्थजी महाराज प्रतापनगर गए। यह स्थान पर्वत की चोटी पर है। इसे महाराज टिहरी के पितामह श्रीप्रतापशाह ने अपने निदाघ-निवास (Summer house) के लिये निर्माण कराया था। महाराज टिहरी भी वहीं गए। इन दिनों प्रति सप्ताह महाराज टिहरी श्रीस्वामीजी के निकट आते और जी-भर कर सत्संग करते थे। जुलाई १९०२ में, महाराज टिहरी ने किसी अँगरेज़ी समाचार-पत्र में यह समाचार पढ़ा कि "शिकागो की तरह जापान में भी संसार-भर के धर्मों का एक धर्म-महासम्मेलन (Religious Conference) होगा, जिस में भारतवर्ष के भी सब धर्मों के विद्वानों को निमंत्रित किया गया है।" महाराज टिहरी स्वयं यह समाचार-पत्र हाथ में लिए श्रीस्वामीजी के निकट आए और उनसे उक्त कानफ़्रेंस में सम्मिलित होने की प्रार्थना की। स्वामीजी के स्वीकार करते ही महाराज ने तार भेजकर "टामस कुक ऐंड कम्पनी" (Thomas Cook & Co.) के द्वारा स्वामीजी को यात्रा के लिये १०००)रू० में जहाज़ के किराए आदि का सब

प्रबंध अपने आप कर लिया। श्रीस्वामीजी महाराज इस यात्रा के लिये टिहरी से लखनऊ और आगरा आदि स्थानों में घूमते, अपने प्रेमियों से मिलते हुए कलकत्ते की ओर प्रस्थानित हुए। कलकत्ता पहुँचकर उन्होंने श्रीनारायण स्वामी को भी, अपने साथ ले चलने के लिये, कलकत्ते बुलाया और २८ अगस्त १९०२ ई० को वे जापान के लिये जार्डन कम्पनी के कुमसैन नामक जहाज़ पर सवार हुए। मार्ग में हांगकांग आदि बंदरों में ठहरते, व्याख्यान देते, लोगों को मोहित करते हुए अक्टोबर के प्रथम सप्ताह में स्वामी जी जापान के यूकोहामा नाम के बड़े बंदरगाह में उतरे। इस जल-यात्रा के समय उनके चित्त की जो गद्गद दशा थी, उसका आभास उनकी निम्न-लिखित कविता से मिलता है—

यह सैर क्या है अजब अनोखा कि राम मुझमें, मैं राम में हूँ।
बग़ैर सूरत अजब है जल्वा कि राम मुझमें, मैं राम में हूँ॥
मुरक़्क़ा-ए-हुस्नो-इश्क़[1] हूँ मैं, मुझीमें राज़ो-नियाज़[2] सब हैं।
हूँ अपनी सूरत पै आप शैदा कि राम मुझमें, मैं राम में हूँ॥
ज़मान आईना राम का है, हर एक सूरत से है वह पैदा।
जो चश्मे-हक़्वीं[3] खुली तो देखा कि राम मुझमें, मैं राम में हूँ॥
वह मुझसे हर रंग में मिला है कि गुल से बू भी कभी जुदा है।
हबाबो-दरिया[4] का है तमाशा कि राम मुझमें, मैं राम में हूँ॥
सबब बताऊँ मैं वज्द[5] का क्या, है क्या जो दर परदा देखता हूँ।
सदा[6] यह हर साज़ से है पैदा कि राम मुझमें, मैं राम में हूँ॥
बसा है दिल में मेरे वह दिलवर, है आइना में खुद आइनागर[7]।

(१) सुन्दरता व प्रेम का ज़ख़ीरा। (२) गुह्य रहस्य और प्रेम व मिलाप की इच्छा। (३) तत्व दृष्टि का नेत्र। (४) बुलबुला और समुद्र। (५) अत्यन्त आनन्द व विस्मय। (६) ध्वनि। (७) शीशा बनानेवाला (सिकन्दर से मतलब है)।

अजब तहँय्यर[8] हुआ यह कैसा ? कि राम मुझमें, मैं राम में हूँ ॥
मुक़ाम पूछो तो लामकाँ था, न राम ही था न मैं वहाँ था।
लिया जो करवट तो होश आया कि राम मुझमें, मैं राम में हूँ ॥
अलल्तवातर[9] है पाक जल्वा[10] कि दिल बना तूरे-बर्क़[11]-सीना।
तड़प के दिल यूं पुकार उट्ठा कि राम मुझमें, मैं राम में हूँ ॥
जहाज़ दरिया में और दरिया जहाज़ में भी तो देखिए आज।
यह जिस्म किश्ती है, राम दरिया कि राम मुझमें, मैं राम में हूँ ॥

राम-बादशाह जापान में।

विदेशों में यह प्रथा है कि जब कोई बड़ा जहाज़ वहाँ आने वाला होता है, तो उसके पहले और दूसरे दर्जे के सब यात्रियों के नाम, उसके आने के एक दिन पहले, उस बंदर के समाचार-पत्रों में छप जाते हैं। इसलिये, जापान में, जहाज़ ठहरते ही, सेठ बसियामल-आसूमल सिंधी-मर्चेंट के दो नौकर स्वामीजी को जहाज़ पर से उतारकर अपने फ़र्म ले गए। एक सप्ताह तक वे वहाँ रहे किंतु जब उन लोगों को ज्ञात हुआ कि स्वामी जी महाराज उनके यहाँ संसार-भर के धर्मों के महा-सम्मेलन में भाग लेने आए हैं, तो वे अत्यंत विस्मित हुए, क्योंकि उन लोगों को इसकी बिलकुल ख़बर तक न थी। इस प्रकार जब यूकोहामा में रिलीजस कानफ़्रेंस का कुछ पता न चला, तो उचित प्रतीत हुआ कि जापान की राजधानी टोकियो में उसका पता लगाया जाय। अतः सेठजी के एक सुबोध नौकर के साथ स्वामीजी टोकियो गए और वहाँ एक भारतीय विद्यार्थी मिस्टर पूरनसिंह के मकान पर पहुँचे। पूरनसिंह निपट विदेश में अपनी

---

(८) आश्चर्य। (९) निरन्तर। (१०) शुद्ध दर्शन। (११) भीतर की बिजली का अग्नि-पर्वत।

जन्मभूमि के दो तेजस्वी संन्यासियों को अपने घर पर आए हुए देखकर आनंद में विह्वल हो गए। किन्तु जब स्वामीजी ने उनसे उक्त कानफ्रेंस का हाल पूछा, तो ज्ञात हुआ कि किसी मसख़रे ने झूठमूठ यह ख़बर हिंदुस्तान के अख़बारों में छपा दी है। इसका निश्चय हो जाने पर स्वामीजी ने तार द्वारा भारतीय पत्रों में इस मिथ्या समाचार का प्रतिवाद छपा दिया।

उन दिनों टोकियो में भारतवर्ष के प्रोफ़ेसर छत्रे का सरकस अपने अद्भुत खेल दिखा रहा था और प्रोफ़ेसर महोदय के प्रस्ताव पर भारतवर्ष के नेपाल, पंजाब और युक्तप्रदेश के कितने ही विद्यार्थी, जो जापान में शिक्षा लाभ करते थे, कई भारत-हितैषी जापानी भाइयों की सहायता से वहाँ एक "इंडो-जापान क्लब" स्थापित कर रहे थे, जिसका उद्देश्य भारतीय नवयुवकों को जापान में बुलवाकर शिक्षा दिलवाना और परस्पर एक स्वदेश भाई का दूसरे स्वदेश-भाई की सहायता करना था। इस नूतन क्लब में राम-बादशाह के अनेक व्याख्यान हुए जिससे भारतीय विद्यार्थियों में एक नवीन जीवनी-शक्ति का संचार हुआ। इसके बाद टोकियो के हाई कमर्शल कालेज में स्वामीजी का 'सफलता का रहस्य' (Secret of Success) के विषय पर अत्यंत युक्ति-पूर्ण व्याख्यान हुआ जिससे जापानी विद्यार्थियों और प्रोफ़ेसरों के हृदयों पर उसका एक विलक्षण प्रभाव पड़ा। इन व्याख्यानों के श्रीमन्नारायण स्वामी ने संक्षिप्त नोट लिए और मिस्टर पूरनसिंह ने जब उन्हें अपनी ओजस्विनी लेखनी से, राम की भाषा में, विस्तरित रूप देकर सम्मुख उपस्थित किया, तो राम-बादशाह ने प्रसन्न होकर प्यारे पूरनसिंह को प्रेम-पूर्ण दृष्टि से देखा। वार्तालाप करने पर विदित हुआ कि पूरन-सिंह एक होनहार युवक, हरबर्ट स्पेंसर के मत के अनुयायी

और सच्चे आनंद के जिज्ञासु हैं। उन्होंने कई बार स्वामीजी से पूछा कि मेरे लिए जीवन का क्या कर्तव्य होना चाहिये? स्वामीजी ने हर बार उन्हें उत्तर दिया कि अपने अंतरात्मा से पूछो और उसका अनुसरण करो। किंतु जब उन्होंने तीसरी बार राम-बादशाह से वही प्रश्न किया, तो उन्होंने कह दिया—"Take up Sannyas and serve Humanity (संन्यास धारण करके मनुष्यत्व की सेवा करो)।" *

राम-बादशाह अमेरिका में।

इस उत्तर के कुछ दिन बाद श्रीनारायण स्वामी को युरोप, अफ़्रिक़ा, सीलोन, ब्रह्मा प्रभृति देशों में प्रचार करने का आदेश देकर, स्वामी रामतीर्थजी महाराज प्रोफ़ेसर छुत्रे के साथ, अमेरिका प्रस्थानित हुए। अमेरिका पहुँचकर उन्होंने जो काम किया, उसका वर्णन इस छोटे-से लेख में करना असंभव है।

---

*जब राम अमेरिका चले गए, तो मिस्टर पूरन ने संन्यास ले लिया और जापान के साधुओं (योगियों) की तरह साल-भर जापान के नगर-नगर में फिर कर वेदांत का प्रचार किया। इतना ही नहीं, उन्हों ने जापानी नवयुवकों में वेदांत का प्रभाव डालने के लिये Thundering Dawn (गर्जनशील प्रभात) नाम का एक पत्र भी निकाला। एक वर्ष पश्चात् जब वह स्वदेश लौटे, तो कलकत्ते में उनके माता-पिता उन्हें लेने आए। पुत्र को साधु-वेश में देखकर वे बहुत रोए; अपने घर पंजाब लाकर समझा-बुझाकर उन्होंने उन्हें गृहस्त फिर बना लिया। इसके बाद मिस्टर पूरनसिंह रियासत ग्वालियर में फ़ारेस्ट डिपार्टमेंट के केमिकल ऐडवाइज़र का काम करते रहे। अब वे अपने जन्म के सिक्ख-धर्म में वापस आ गये हैं, और मिस्टर पूरनसिंह के स्थान सरदार पूरनसिंह के नाम से प्रसिद्ध हैं।

संक्षेप में यह कि कुछ दिनों तक तो राम प्रोफ़ेसर छत्रे के साथ वहाँ घूमते और व्याख्यान देते रहे, किंतु स्याटलबाग़-नगर में कुछ दिन रहने के बाद वहां के गुण-ग्राही अमेरिकन लोगों ने उन्हें प्रोफ़ेसर छत्रे के हाथ से छीन लिया। बहुत समय तक वह एक सहृदय सज्जन डाक्टर एलबर्ट हिल्लर के पास सानफ़्रान्सिस्को में रहे। यह नगर केलीफ़ोर्निय का प्रसिद्ध क़सबा और बंदर-स्थान है। उक्त डाक्टर महाशय ने बड़ी श्रद्धा के साथ डेढ़ वर्ष तक स्वामीजी को अपने पास रक्खा और अपना एक बँगला उनके लिये रिज़र्व कर दिया। वहाँ स्वामीजी के उपदेश से लोगों ने कई सोसाइटियाँ बनाईं जिनका उद्देश्य ग़रीब भारतीय नवयुवकों की शिक्षा के लिये अमेरिका में हर प्रकार से सहायता करना था। स्वामीजी से नित्यप्रति सत्संग का लाभ उठाने के लिये एक "Hermetic Brotherhood" (साधु भाईचारा) स्थापित किया गया, जिसमें अधिकतर उनके उपदेश होते थे। इन उपदेशों से स्वामीजी का इतना प्रभाव पड़ा कि वहाँ के कई समाचार-पत्रों ने उनके फ़ोटो छापकर "Living Christ has come to America" (जीवित ईसामसीह अमेरिका में आए हैं) शीर्षक देकर अपने लेखों में उनकी भूरि भूरि प्रशंसा की। अमेरिका में स्वामीजी की इतनी ख्याति हुई कि तत्कालीन अमेरिकन प्रेसीडेंट ने भी उनके दर्शन किए।

न्यूयार्क के एक पत्र ने लिखा—"अमेरिका में एक विचित्र भारतीय साधु आया है, जो अपनी ऐनक के अतिरिक्त और किसी धातु को स्पर्श नहीं करता। अपने साथ कुछ भोजन-सामिग्री भी नहीं रखता। जब सैर को निकलता है, तो एक साधारण वस्त्र में कई दिनों तक अत्यन्त शीतल स्थानों में विच-

रण करता रहता है। जब व्याख्यान देता है, तो दिन में कई बार, और एक-एक बार में तीन-तीन घंटे लगातार बोलता रहता है। उसका सुंदर स्वरूप अत्यन्त मनोहर है।"

ग्रेट पैसिफ़िक आयल रोड कम्पनी अमेरिका के मैनेजर ने लिखा—"एक भारतीय तत्त्व-वेत्ता स्वामी राम की न रुकने-वाली हँसी और माधुरी मुसकान मन को मोह लेती है।"

सेंट लुईसकी धार्मिक कानफ्रेंस के संबंध में वहां के एक लोकल पत्र ने लिखा—"इस समारोह में अकेला प्रफुल्ल मुख-मंडल स्वामीराम का था, जो एक भारतीय तत्त्व-वेत्ता हमको ज्ञान सिखाने आया है।" इत्यादि अगणित लेख अमेरिकन लेखकों की ओर से वहां के समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुये। राम के दर्शनों में इतना प्रभाव था कि अमेरिका में एक बार एक नास्तिक समाज (Athiest Society) की एक विदुषी लेडी राम के पास बहस करने आई। राम-बादशाह उस समय समाधिस्थ थे। नास्तिक लेडी, जब तक राम समाधि की अवस्था में थे, चुप-चाप बैठी उनको देखती रही। समाधि खुलने पर जब स्वामी राम ने उनकी ओर देखकर अपना अभिप्राय प्रकट करने को संकेत किया, तो बहस करने की चुलबुल से भरी हुई लेडी उस नीरवता को भंग करती हुई बोली—"माई लार्ड! मैं नास्तिक नहीं हूं। आपके दर्शन से मेरे सब संदेह दूर हो गये!" मिसेज़ वेलमैन अमेरिका में एक अत्यन्त प्रेम-पूर्ण लेडी थी। वह राम-बादशाह की ॐ, ॐ की हृदय-हारिणी ध्वनि सुनकर ऐसी पुलकित हुई कि अपने पश्चिमीय वस्त्र उतार कर संन्यासिन बन गई, और भारतीय संन्यासियों की तरह बिना कौड़ी-पैसा पास रक्खे ही नगर-नगर विचरण करने लगीं। यह राम के प्रेम की मतवाली

योगिनी भारतवर्ष में भी आईं और जब राम की जन्म-भूमि के दर्शन करने के लिये मुरारीवाला गांव गईं. तो उस छोटे-से ग्राम को निरख कर हर्षातिरेक से गद्गद हो गईं। इसके अतिरिक्त कितनी ही अन्य लेडियों ने भी भारत आकर राम की जन्म-भूमि के दर्शन करने की अभिलाषा प्रकट की और कर रही हैं। अस्तु। यह जो हम In woods of God Realization नाम से अनेक खंडों में स्वामी राम के अँगरेज़ी लेक्चर्स पढ़ने को पाते हैं, यह भी उन्हीं अमेरिकन लोगों की सभ्यता और उनके अकृत्रिम राम-प्रेम का फल है। बात यह थी कि स्वामी राम जब अमेरिका में लेक्चर देते थे, तो वे लोग शार्टहैंड में उनके व्याख्यान लिख लेते और बाद में टाइप-राइटिंग मेशीन द्वारा उसकी चार-पाँच प्रतियां छापकर दो-एक राम की भेंट करते और शेष अपने व्यवहार में लाते। राम उन लेक्चरों को लेकर अपनी पुस्तकों की मंजूषा (संदूक) में डाल देते। इस प्रकार लोग उनको जितने भाषण दे गये और उनकी मंजूषा में रक्षित रहे, वे ही छप सके। जितने नष्ट हो गये या नहीं लिखे गये, उनका पता अब कौन लगा सकता है। स्वामी राम ने अपनी परमहंसी वृत्ति के कारण कभी अपने विषय के रेकर्ड या डायरी रखने की परवा नहीं की, यहां तक कि अमेरिका के सैकड़ों समाचार-पत्रों ने समय-समय पर उनकी प्रशंसा में जो लेख छापे थे, उनकी ढेर की ढेर कतरनों (Cuttings) को भी उन्होंने सैक्रेमेंटो नदी में फेंक दिया। इस लिये उन स्थानों की, जहां वह अकेले रहे, उनकी शृंखलित जीवनी नहीं मिलती। वह एकांत सेवन के बड़े पक्षपाती थे। उनका कथन था, दूसरा साथ होने से मनुष्य की ईश्वर निर्भरता को हानि पहुँचती है, वह अपने साथी की सहायता का अवलम्ब करने लगता है।

राम बादशाह मिस्र में।

अस्तु। अमेरिका में लाखों पवित्र हृदयों में वेदान्त का भाव भरकर जिबराल्टर (Gibraltar) के मार्ग से राम मिस्र-देश में पहुँचे। वहाँ मुसलमानो समाज में, एक मसजिद में, उन्होंने फ़ारसी भाषा में एक जादू-भरा व्याख्यान दिया जिससे तद्देशीय मुसलमान भाई अत्यंत प्रसन्न हुए। सुना जाता है, वहाँ के सुप्रसिद्ध अरबी भाषा के पत्र "अलवहाव" ने राम-बादशाह के उस भाषण के नोट लिये थे और उन्हें अपने पत्र में "हिन्दो फ़िलासफ़र" के शीर्षक से छापे थे। इसके अतिरिक्त स्वामीजी ने मिस्र में कुछ और भी काम किया या नहीं, इस प्रश्न का उत्तर देने को इन पंक्तियों के लेखक के पास कोई साधन नहीं है। केवल इतना ही लिखा जाता है कि राम जहाँ जाते थे, उस देशवाले उनको अपना ही मान लेते थे और उनके सैकड़ों प्रेमी बन जाते थे।

स्वदेश प्रत्यागमन।

इस प्रकार अन्य देशों में वेदांत का सिंहनाद करते हुए स्वामी राम कोई ढाई वर्ष बाद, ८ दिसम्बर १९०४ ई० को, बंबई में उतरे। विदेशों में जाने से पहले ही भारतवर्ष में स्वामी राम की पर्याप्त ख्याति हो चुकी थी, इधर अमेरिका आदि जाने और अँगरेज़ी समाचार-पत्रों में उनकी चर्चा बढ़ जाने से समस्त भारत की आँखें उनके शुभागमन की प्रतीक्षा कर रही थीं। सब सम्प्रदायों के समाचार-पत्रों ने उनका अत्यंत प्रेम-पूर्ण शब्दावली में स्वागत किया। स्वामी जी को जहाज़ पर से उतारने के लिये, उनके अनेक प्रेमी जहाज़ पर गये। स्वदेश आने पर स्वामी जी का पहला व्याख्यान बम्बई में हुआ।

बम्बई से आप आगरा, मथुरा और लखनऊ में अपने अनुभवों का वर्णन करते अपनी जादू-भरी वाणी से लोगों की तृषा शांत करते पुष्करराज पहुँचे। इन सब स्थानों में उनका बड़ी धूम-धाम से स्वागत होता रहा। स्वामी जी के उदार विचारों के कारण उनके स्वागत में आर्यसमाजी, सनातनधर्मी, ब्राह्मो, सिक्ख और ईसाई-मुसलमान तक सम्मिलित होते थे।

राम-बादशाह के उदार भाव।

अमेरिका से प्रत्यागमन करने के पश्चात् जब श्रीस्वामी जी मथुरा पहुँचे, तो उनके कई भक्तों ने उनको परामर्श देना चाहा कि "स्वामी जी, अब आप किसी नये नाम से कोई संस्था स्थापित कीजिये।" उस उन्नत से उन्नतमना राम-बादशाह ने जो अनमोल वाक्य उच्चारण किये हैं, प्रत्येक देश-भक्त भारत-वासी को उन्हें स्वर्णाक्षरों से अपने अन्तःकरण में अङ्कित कर लेना चाहिये। श्रीस्वामी जी महाराज ने उत्तर दिया—

"भारतवर्ष में जितनी सोसाइटियाँ (सभा-समाजें) हैं वे सब राम की हैं, राम उनमें काम करेगा।........(आँखें बंद करके हाथ फैलाकर प्रेमाश्रु बहाते हुए) ईसाई, आर्य, सिक्ख, हिंदू, पारसी, मुसलमान और वे सब लोग जिनके अंग और हड्डियाँ, रक्त और मस्तिष्क मेरे इष्टदेव भारत-भूमि के अन्न और लवण से बने हैं, मेरे भाई हैं—हाँ मेरे अपना आप हैं।"

"जाओ, उनको कह दो कि राम उनका है। राम उन सबको अपनी छाती से लगाता है और किसी को अपने प्रेमालिंगन से पृथक् नहीं समझता।"

"मैं संसार पर प्रेम की वर्षा बरसाऊँगा और संसार को

आनंद में नहलाऊँगा। यदि कोई मुझसे विरोध प्रकट करेगा, तो मैं उसे 'स्वागत' कहूँगा।"

"क्योंकि मैं प्रेम की वर्षा करता हूँ, समस्त सोसाइटियाँ मेरी हैं, क्योंकि मैं प्रेम की बढ़िया लाऊँगा, प्रत्येक शक्ति मेरी शक्ति है, चाहे वह बड़ी हो या छोटी। ओहो! मैं प्रेम की वर्षा करूँगा।"

यह शब्दावली है या बहु-मूल्य मोतियों की लड़ी! राम-बादशाह ने और एक स्थल पर लिखा है—

"मैं शहंशाह राम हूँ। मेरा सिंहासन तुम्हारे हृदय में है। जब मैंने वेदों का उपदेश दिया, जब कुरुक्षेत्र में गीता सुनाई, जब मक्का और यरूशलम (Jerusalem) में अपने संदेशे सुनाए, तो लोगों ने मुझे ग़लत समझा था। अब मैं अपनी आवाज़ फिर ऊँची करता हूं। मेरी आवाज़ तुम्हारी आवाज़ है—'तत्त्वमसि', 'तत्त्वमसि', 'तत्त्वमसि'। कोई शक्ति नहीं जो इसको रोक सके।"

अहा! यह देखिए हिंदुओं के पतन की कारण, कलह की मूल एवं उन्नति की अवरोधक वर्ण-व्यवस्था* पर उदारचेता

* पतन की कारण इसलिये कि वर्ण-गत क्रम की व्यवस्था होने से युद्ध करना केवल क्षत्रियों का ही कर्म था; अतः विदेशियों के आक्रमण में केवल अल्प-संख्यक क्षत्रियों के हार हो जाने से समस्त देश ने अपना पराजय स्वीकार कर लिया। कलह की मूल इसलिये कि वर्ण-व्यवस्था के प्रचार से आज भी भारत की समस्त हिन्दू-जातियाँ अपने को उच्च वर्ण होने के दावे कर रही हैं और एक दूसरी को घृणा की दृष्टि से देखती हैं; नीच वर्ण हो कर रहना किसी को प्रिय नहीं। उन्नति की अवरोधक इस-लिये कि हृदय और मस्तिष्क रखते हुये भी शूद्र वर्ण में परिगणित हिन्दुओं की एक बहुत बड़ी जन-संख्या को विद्यालोचना से वंचित रक्खा गया और यह एक सिद्ध बात है कि सार्वजनिक शिक्षा ही देश की उन्नति का मूल कारण है।

रामबादशाह ने कैसी अद्भुत रीति से सार्वभौमिक व्यवस्था दे डाली। आपने अपने "ज़िंदा कौन है?"—शीर्षक लेख में बतलाया है कि जैसे जमादात, नबातात, हैवानात, इंसानात (खनिजवर्ग, वनस्पतिवर्ग, प्राणिवर्ग, मनुष्यवर्ग) यह चार प्रकार की सृष्टि है, वैसे ही चार प्रकार के स्वभाववाले मनुष्य भी हैं। वे मनुष्य जो खनिज धातुओं की तरह केवल नयन-रंजक आभूषणों का ही काम देते हैं, जिनके भीतर कुछ ज्ञान नहीं होती, अर्थात् जिनके जीवन का कोई लक्ष्य नहीं होता, शिश्नोदर-परायणता ही जिनके जीवन की सीमा है, स्वार्थपरता ही जिनका परम धर्म है, और वासना-भोग ही जिनका परम पुरुषार्थ है, वे सोना, चाँदी, लोहा, हीरा आदि जड़ पदार्थों की भाँति शोभायमान, खनिजवर्ग-स्वभावापन्न 'पेट-पालू' मनुष्य हैं, और उनका गति-क्षेत्र 'लट्टू' के समान है, जो अपनी ही कील पर घूमा करता है। यही लोग वास्तव में शूद्र हैं।

जो मनुष्य वनस्पतियों की नाईं एक ही स्थान पर बढ़ते फूलते-फलते हैं, धरती से रसादि चूसकर शाखा, पत्र आदि अपने कुटुंब को हरित रखते हैं और अपने निकट आए हुए पथिकादिकों को छाया और फलादि देते हैं तथा एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने की सामर्थ्य न रखने के कारण अत्याचारी पशुओं या मनुष्यों द्वारा नष्ट भी हो जाते हैं, वे वनस्पतिवर्ग-स्वभावापन्न 'परिवारपालक' मनुष्य हैं और इनका गति-क्षेत्र 'कोल्हू के बैल' की नाईं है, जो अपने केंद्र के चारों ओर घूमा करता है। ये ही लोग वास्तव में वैश्य हैं।

जो मनुष्य पशवादिकों की नाईं अपनी जाति में ही अभेदता रखते हैं और अपनी ही जाति की वृद्धि, अपनी ही जाति की भलाई और अपनी ही जाति के प्रतिपालन में संलग्न रहते हैं

अन्य जातियों की कुछ भी परवा नहीं करते, वरन् अन्य जातियों को अपनी जाति के अधीन कर लेना चाहते हैं, वे प्राणिवर्ग स्वभावापन्न या 'जाति-प्रति-पालक' मनुष्य हैं और उनका गति-क्षेत्र घोड़-दौड़ के घोड़े के समान है जो एक नियत सोमा के अंतर्गत चक्कर लगाया करता है। ये ही लोग वास्तव में क्षत्रिय हैं।

जिनमें मनुष्यों की नाईं न्याय आदि सद्गुण होने से जाति, वर्ण और मत आदि का पक्षपात नहीं होता, जो अपने देश के प्रत्येक व्यक्ति को अपना सगा भाई समझते हैं, जिन्होंने अपने समस्त समय और ध्यान को देश की भलाई के लिये अर्पण कर दिये हैं, जिनको अपने देश की धूलि तक प्यारी है वे लोग मनुष्य-स्वभावापन्न 'देश-भक्त' या 'देश-सेवक' हैं और उनका गति क्षेत्र चंद्रमा की नाईं है, जो देश की दारिद्र-निशा में चारों ओर प्रकाश छिटकाता है। ये ही लोग वास्तव में ब्राह्मण हैं।

इनके अतिरिक्त एक और पुरुष भी हैं जो पेट-पालक कुटुम्ब-पालक, जाति-पालक और देश-भक्तों से भी उत्तम हैं, वे अमृत पुरुष महात्मा लोग हैं जो विश्व-ब्रह्मांड को अपना ही आत्मा समझते हैं, उनमें मैं तू का भाव नहीं होता, वे समस्त विश्व-ब्रह्मांड के प्राणात्मा हैं, और उनका गति-क्षेत्र सर्वत्र व्याप्त सूर्य के समान है। वे चाहे जिस देश या जाति में जन्में, प्राणी-मात्र को अमृत का दान करते हैं, उनमें द्वैत-भाव नहीं होता। वे ही ईश्वर का साक्षात् अवतार हैं।

एकांत-निवास की खोज।

अस्तु। जब स्वामी राम एकांत-निवास के विचार से पुष्कर पहुँचे तो श्रीनारायण स्वामी भी, जो लंदन में बीमार हो जाने

के कारण स्वामीजी के भारत-आगमन से छः मास पूर्व, जुलाई १९०४ में भारत आ गए थे, जनवरी १९०५ में उनकी चरण-शरण में उपस्थित हुए। कई मास वहाँ सत्संग रहने के अनंतर राम-बादशाह श्रीमन्नारायण स्वामी को सिंध और अफ़ग़ानिस्तान में भ्रमण करने की आज्ञा देकर, आप अजमेर और जयपुर में व्याख्यान देते हुये, दार्जिलिंग-पर्वत की ओर प्रस्थानित हुये। किंतु बंगाल और संयुक्त-प्रदेश में भ्रमण करने के अनंतर अक्टोबर १९०५ में जब स्वामीजी हरिद्वार पधारे, तो उनका शरीर ज्वर से इतना जर्जर हो गया कि आठ दिन तक वे बिछौने पर से उठ ही न सके। ख़बर पाकर श्रीनारायण स्वामी भी आये। किंतु स्वस्थ होते ही श्रीनारायण स्वामी को लखनऊ की ओर भेजकर स्वामीजी मुज़फ़्फ़रनगर चल दिये।

व्यास-आश्रम-निवास और वेदाध्ययन।

शरीर में कुछ बल आते ही उनके मन में यह तरङ्ग उठी कि अपने अमेरिका के लेक्चरों को, जो टाइप की हुई कापियों के रूप में उनके पास पड़े थे, संपादित करके डिनेमिक्स आफ़ माइंड (Dynamics of Mind) के नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित करें, अतः श्रीनारायण स्वामी को लखनऊ से बुलाकर किसी एकांत-स्थान की खोज में, हरिद्वार होते हुए, नवंबर १९०५ में वे हृषिकेश आये और वहां से कोई ३० मील की दूरी पर व्यास-आश्रम पधारे। यहाँ टिहरी-राज्य में व्यास चट्टी के सम्मुख एक निर्जन सघन वन है, जिसमें अत्यंत प्राचीन, विशाल और ऊँचे-ऊँचे वृक्ष-समूह धरती को ढके हुये हैं। कहते हैं, इन्हीं वृक्षों की सघन शीतल छाया में भगवान् कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ने तप किया था। यह स्थान सुनसान

होने के साथ ही दुर्गम भी है। इसमें एक साधारण रस्सों के कच्चे पुल द्वारा झँगूरे में बैठकर एक दूसरे मनुष्य की सहायता से गङ्गा पार करके जाना होता है। राम-बादशाह ने उस स्थान को पसंद करके वहीं अपना आसन जमा दिया।

स्वामीजी जिस समय हरिद्वार से चलने लगे थे, तो एक पुराने विचारों के महात्मा जी ने सत्संग करके अपने वार्तालाप द्वारा उनके चित्त पर यह अंकित कर दिया था कि विना वेद-वेदांग के प्रमाण दिये हुये वेदांत विषय पर किसी ग्रंथ का प्रकाशित करना भारतवर्ष के लिये उपयुक्त नहीं, इस लिये वे किसी बृहद् ग्रंथ की रचना करने से पूर्व वेदाध्ययन का उपक्रम करने लगे। थोड़े मास के भीतर ही अत्यंत मनोयोग-पूर्वक उन्होंने पाणिनि-व्याकरण को निरुक्त और महाभाष्य-सहित पढ़ डाला, और फिर सामवेद का अध्ययन आरंभ करके उसे समाप्त किया। इतने में सन् १९०६ का आधा फ़रवरी मास व्यतीत हो गया। शिशिर-संचालित सबल समीर ने काननवासी पादप-पुंज को पत्र-पल्लव-विहीन करना प्रारंभ कर दिया। अतः और अधिक एकांत और शीतल स्थान के अनुसंधान में फ़रवरी १९०६ में, राम-बादशाह वहां से भी चल दिये।

वसिष्ठ-आश्रम-वास

व्यास-आश्रम से चलकर राम देव-प्रयाग होते हुये वसिष्ठ आश्रम पहुँचे। यह स्थान टिहरी से ५० मील की दूरी पर लगभग १३००० फ़ुट की उँचाई पर है। यहाँ व्यास-आश्रम से भी अधिक घना जङ्गल है। टिहरी के महाराज ने अपनी राजधानी में बड़ी आतुरता से उनका स्वागत किया और उनके भोजनादि के लिये अपने अनुचरों को नियुक्त कर दिया। व्यास-

आश्रम तक उनके भोजनादि का प्रबन्ध काली कमलीवाले बाबा के कलकत्ता क्षेत्र के मैनेजर बाबा रामनाथ द्वारा होता रहा था, वसिष्ठ-आश्रम में रियासत ने किया। वहाँ उत्तम भोजन-सामग्री न मिलने के कारण स्वामीजी का स्वास्थ्य बिगड़ गया और वे अत्यन्त कृशांग और दुर्बल हो गये। स्वामी जी ने अन्न त्याग दिया और केवल पयाहार पर निर्भर रहने लगे। इससे रोग-मुक्त तो हुये, पर शरीर में बल न आ सका। वेदाध्ययन निरन्तर होता था। यहाँ पर स्वामीजी ने कई स्थान परिवर्तन किये, किन्तु उनके स्वास्थ्य को तनिक भी लाभ न हुआ। वसिष्ठ आश्रम में मि० पूरनसिंह भी पं० जगतराम आदि साथियों के साथ स्वामीजी के दर्शनार्थ आये और लगभग एक मास उनके निकट वास करके उनसे अंतिम विदाई ग्रहण कर साश्रुलोचन लौट गये। दूषित खाद्य-सामग्री मिलने के कारण वहां मिस्टर पूरन और उनके साथियों का भी स्वास्थ्य बिगड़ गया था, अतएव उन लोगों ने स्वामीजी से वह स्थान छोड़ देने के लिये प्रार्थना की; जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया।

अन्तिम निवास और जल-समाधि।

अक्टोबर १९०६ में राम फिर टिहरी आए और टिहरी के महाराज के सिमलासु बाग़ में ठहरे। दो सप्ताह वास करने के पश्चात् वे फिर एक ऐसे एकांत-स्थान की खोज करने लगे जिसे फिर बदलना न पड़े। टिहरी से कुछ दूर चलकर भृगु-गंगा के किनारे मालीदेवल-ग्राम से लगभग एक मील के अंतर पर वे एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जो तीन ओर गंगाजी से वेष्टित होने के कारण अत्यंत सुंदर और सुहावना था। यह स्थान लगभग सौ वर्षों से साधु-महात्माओं का एकांत-स्थान बना हुआ था

और इस समय रिक्त पड़ा था। राम-बादशाह ने उसे पसंद कर लिया और वहाँ अपनी कुटिया बनाने का मानचित्र स्वयं अपने कर-कमलों से खींचा। ख़बर मिलते ही टिहरी महाराज ने स्वामीजी के साथियों को कुटिया बनाने से रोक दिया और अपने यहाँ के पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट के सुपरिंटेंडेंट को भेजकर स्वामीजी के खींचे हुए मानचित्र के अनुसार पक्की कुटिया बनवाने की आज्ञा दे दी। टिहरी महाराज के इस अकृत्रिम प्रेम से स्वामीजी अति प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने शेष जीवन तक वहीं रहने का पक्का विचार कर लिया।

जब स्वामीजी ने अपने लिये एकाँत-स्थान मनोनीत कर लिया, तो उनके मनमें श्रीनारायण स्वामी के लिये भी एकांत-स्थान ढूँढ़ देने की तरंग उठी। अतः उस स्थान से लगभग तीन मील की दूरी पर गंगा के किनारे बमरोगी-गुफ़ा को उन्होंने पसंद किया, जहाँ वे स्वयं सन् १६०१ ई० में श्रीनाराण स्वामी को साथ लेकर कुछ दिन रह चुके थे। उन्होंने श्रीनारायण स्वामी को उसमें रहकर एकांत-अभ्यास करने की आज्ञा दी। आज्ञानुसार श्रीनारायण स्वामी उस गुफ़ा की ओर जाने लगे, तो राम-बादशाह, नंगे सिर, नंगे पैर सैर करने के बहाने, बहुत दूर उन्हें पहुँचाने गए। मार्ग में श्रीनारायण स्वामी को उन्होंने अनेक सदुपदेश इस शैली से दिए जिनसे प्रतीत होता था, मानों वे उनको अपना अंतिम आदेश सुना रहे हैं। राम के उन वियोग-व्यथाव्यंजक वाक्यों को सुनकर श्रीनारायण स्वामी अश्रुपात करने लगे। राम-बादशाह ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा—

"बेटा, घबराओ नहीं। गुफ़ा में एकांत रह कर अभ्यास और अध्ययन करो, नित्य आत्मचिन्तन करते हुये अपनी वृत्तियों को अन्तरमुखी करो। राम के पार्थिव शरीर का प्रेम छोड़ दो;

राम के दिव्य रूप में वास करो। सर्व प्रकार से वेदान्त का स्वरूप बनो। किसी का सहारा मत लो। अपने पैरों आप खड़े होना सीखो। प्रति सप्ताह रविवार को राम के पास आते रहो।"

इस प्रकार अपना अन्तिम उपदेश देकर राम-बादशाह ने श्रीनारायण स्वामी को बिदा किया और उसके पाँचवें दिन, अर्थात् १७ अक्टोबर सन् १९०६ ई० तदनुसार कार्तिक कृष्ण १५, दीपमाला को, मध्याह्न के समय, वे भृगु-गङ्गा में स्नान करने गये और गङ्गा की वेगवती धारा में, आकण्ठ जल में, स्नान करते समय, डुबकी लगाते ही, पैर के नीचे का पत्थर खिसक जाने से, एक भँवर में पड़ कर, उनका निष्पाप, निष्कलंक, परिश्रमी, कर्तव्य-परायण, दर्शनीय, कमनीय, परमोपयोगी, कई मास से रोग-ग्रसित रहने कारण कृश, गौर वर्ण और दिव्य तेजोमय शरीर, उनकी परम प्यारी गङ्गा में, सदा के लिये लीन हो गया।

अपने लेख की जिन अन्तिम पंक्तियों को लिख कर राम-बादशाह गङ्गा-स्नान करने गये थे, वे ये हैं—

"ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, गङ्गा, भारत!

"ओ मौत! बेशक उड़ा दे इस एक जिस्म को; मेरे और अजसाम ही मुझे कुछ कम नहीं। सिर्फ़ चाँद की किरणें, चाँदी की तारें पहन कर चैन से काट सकता हूँ। पहाड़ी नदी-नालों के भेस में गीत गाता फिरूँगा, बहरे-मव्वाज के लिबास में लहराता फिरूँगा। मैं ही बादे-ख़ुश-ख़राम और नसीमे-मस्तानागाम हूँ। मेरी यह सूरते-सैलानी हर वक़्त रवानी में रहती है। इस रूप में पहाड़ों से उतरा; मुरझाते पौदों को ताज़ा किया; गुलों को हँसाया, बुलबुल को रुलाया, दरवाज़ों को खटखटाया; सोतों को जगाया; किसी का आँसू पोंछा, किसी का

घूँघट उड़ाया। इसको छेड़, उसको छेड़, तुझको छेड़। वह गया! वह गया!! वह गया!!! न कुछ साथ रक्खा, न किसी के हाथ आया!"

उपसंहार।

राम-बादशाह के भौतिक शरीर के जल-समाधि लेने का समाचार लेकर जब मिस्टर पूरनसिंह मुरारीवाला गाँव पहुँचे, तो स्वामी जी महाराज की पति-परायणा पत्नी अपने पूज्य देवता के देहावसान का समाचार सुनते ही मूर्च्छित हो कर गिर पड़ीं। यद्यपि अनेक उपचारों से वे चैतन्य हुईं; किंतु उस घड़ी से उन्हें उन्माद-सा हो गया और जून १९०७ में वह अपनी पार्थिव देह त्याग कर पतिलोक-वासिनी हुईं। श्रीस्वामी जी के पिता गोसाईं हीरानन्दजी ने सन् १९०९ में शरीर त्याग किया। श्री स्वामी जी महाराज के जेष्ठ पुत्र गोसाईं मदनमोहन जी, जो टिहरी-महाराज की आर्थिक-सहायता से विलायत जाकर तीन वर्ष की पढ़ाई के पश्चात् माइनिङ्ग इञ्जीनियरी परीक्षा पास करके, सन् १९०९ में भारतवर्ष आ गए थे, आज कल पटियाला रियासत में माइनिङ्ग इञ्जीनियर के पद पर काम करते हैं और छोटे पुत्र गोसाईं ब्रह्मानन्दजी आजकल (१९२३) काशी के हिन्दू-विश्वविद्यालय में, एम० ए० क्लास में, शिक्षा लाभ कर रहे हैं। इस होनहार नवयुवक के रूप का दर्शन करते ही स्वामी रामतीर्थजी महाराज की छवि नेत्रों के सम्मुख आ जाती है। स्वामीजी के एक कन्या भी थी जो दारुण क्षय-रोग से पीड़ित होकर, १९१५ में, स्वर्ग-वासिनी हो गई थी। गोस्वामी तीर्थ रामजी के जेष्ठ भ्राता गोसाईं गुरुदासजी और कनिष्ठ भ्राता गोसाईं मोहनलालजी आज भी

वर्तमान हैं, और मालाकाण्ड में, ब्रह्म-वृत्ति द्वारा अपना काल-यापन करते हैं।

स्वामी राम के भक्त।

यों तो राम जहाँ गए उनके चरण छूने से अहिल्या की नाईं पत्थर भी जीवित हो गए, पर कई एक व्यक्ति विशेष, जिन्होंने राम को अपने जीवन का आदर्श मान कर उनके उपदेशों का अनुयायी होना सहर्ष स्वीकार किया था उनमें से कुछ यह हैं:—अमरीका में मिसेज वेलमेन (तत्पश्चात् सूर्यानन्द), डाक्टर विलियम गिवसन (पश्चात् स्वामी नारद), डाक्टर एलवर्ट हिल्लर (पश्चात् स्वामी गोतम) इत्यादि। जापान में प्रोफ़ेसर टाटाक्यो इत्यादि। भारतवर्ष में तो राम-वादशाह के अनेक भक्त वा राम के जीवन को अपना आदर्श मानने वाले हैं, पर उनमें से प्रसिद्ध-प्रसिद्ध ये हैं—स्वर्गवासी महाराज साहव टिहरी, लखनऊ के स्वर्गवासी राय वहादुर लाला शालिग्राम साहव तथा वावू गङ्गाप्रसाद वर्मा; फ़ैज़ावादके प्रसिद्ध रईस लाला राम-रघुवीरलाल और प्रसिद्ध कार्यकर्ता वावू सुरजनलाल पांडेय; देहरादून के प्रसिद्ध रईस लाला वलदेवसिंह; इलाहावाद के प्रसिद्ध नेता पण्डित मदनमोहन मालवीय; आगरा के प्रसिद्ध स्वर्गवासी राय वहादुर लाला वैजनाथ; मुज़फ़्फ़रनगर के प्रसिद्ध रईस स्वर्गवासी राय वहादुर लाला निहालचन्द; मेरठ के प्रसिद्ध रईस लाला रामानुजदयाल; लाहौर के प्रसिद्ध स्वामी शिवानन्दजी तथा डाक्टर मुहम्मद इक़वाल और लख्या के मियाँ मुहम्मदहुसेन आज़ाद, इत्यादि।

जिन सज्जनों को स्वामी राम से संन्यास मिला अर्थात् जिन लोगों ने स्वामीजी की आज्ञा वा आदेश से संन्यास धारण किया और संन्यासी नाम पाया, वे निम्नलिखित हैं।

सब से पहले स्वामी रामानन्द को संन्यास दिया गया। इनका पहला नाम तुलाराम था। इनका शरीर अब छूट चुका है। इसके बाद श्रीमन्नारायण स्वामी को संन्यास दिया गया। इनका पूर्व नाम नारायणदास था। इसके बाद सरदार पूर्णसिंहजी को जापान में ही संन्यास धारण करने की आज्ञा मिली, और वह एक वर्ष संन्यासी रह कर फिर गृहस्थ हो गए और आजकल (१६२१), ग्वालियर-रियासत में चीफ़ कैमिस्ट हैं। अन्त में स्वामी गोविन्दानंद तथा स्वामी पूर्णानन्द को संन्यास लेने की आज्ञा मिली। इनका नाम गुरुदास तथा रामप्रताप था। जहाँ तक पता चलता है, इनके अतिरिक्त और किसी व्यक्ति को स्वामीजी ने न संन्यास लेने की आज्ञा दी और न अपने कर से संन्यास ही दिया, यद्यपि आज कल वीसियों महात्मा अपने आप को उनका संन्यासी-शिष्य प्रख्यात करते हुए सुने जाते हैं।

शक्ति-स्रोत

(The Fountain of Power)

श्री स्वामी रामतीर्थ ।

SHRI SWAMI RAM TIRTHA.

LUCKNOW. 1905.

S. P. Press Lucknow.

स्वामी रामतीर्थ।

सफलता का रहस्य।

टोकियो (जापान) के हाई कमर्शियल कालेज में दिया हुआ व्याख्यान।

भाइयो,

भारत की अपेक्षा जापान ज़ाहिरा अधिक बुद्धिमानी से जिस विषय का व्यवहार कर रहा है, उस पर एक अभ्यागत भारतीय का व्याख्यान देना क्या आश्चर्य-जनक नहीं है? होगा। किन्तु एक से अधिक कारणों से मैं आप लोगों के सामने उपदेश देने खड़ा हुआ हूं।

किसी विचार को दक्षतापूर्वक अमल में लाना एक बात है, किन्तु उसके तत्त्व को समझ लेना दूसरी बात है। चाहे किन्हीं सामान्य सिद्धान्तों के बर्तने से कोई राष्ट्र आज फल फूल रहा हो, तो भी उसके पतन का पूरा पूरा ख़तरा है, यदि

राष्ट्रीय चित्त ने उन सिद्धान्तों को भली भांति नहीं समझ लिया और गम्भीर कल्पना द्वारा उनका स्पष्ट समर्थन नहीं कर लिया। सफलता पूर्वक किसी रासायनिक प्रयोग को करने वाला मज़दूर रसायन-शास्त्री नहीं बन जाता, क्योंकि उसका कार्य कल्पना या युक्ति से परिपूर्ण नहीं है। अंजन को सफलतापूर्वक चलाने वाला कोयला झोंकू (fireman) इंजीनियर नहीं हो सकता, क्योंकि वह कल की तरह एक बँधे ढर्रे पर काम करता रहता है। हमने एक जर्राह की कहानी पढ़ी है, जो घावों को एक सप्ताह तक पट्टी से बँधा रख कर और नित्य तलवार से छूकर अच्छा कर देता था। खुले न रहने के कारण घाव अच्छे हो जाते थे, किन्तु अच्छा करने की विचित्र शक्ति वह तलवार के स्पर्श में बताता था। उसके रोगी भी ऐसा ही समझते थे। इस अंधविश्वासमय कल्पना के कारण अनेक ऐसे मामलों में, जहाँ केवल बन्धन के सिवाय किसी अन्य दवा की ज़रूरत थी, बार बार असफलता पर असफलता हुई। इस लिये ठीक उपदेश और ठीक प्रयोग का साथ साथ चलना बहुत ही ज़रूरी है। दूसरे, मैं जापान को अपना देश समझता हूं और जापानियों को अपने देश-वासी। मैं युक्तिपूर्वक सिद्ध कर सकता हूं कि आपके पूर्वज प्रारम्भ में भारत से आये। आपके पूर्वज मेरे पूर्वज हैं। इसलिये मैं आपके भाई की तरह आप से हाथ मिलाने आया हूं, न कि परदेशी की तरह। एक और भी हेतु है जो मुझे समान भाव से इस स्वत्व (privilege) का अधिकारी बनाता है। जन्म से ही मैं स्वभाव, ढंगों, आदतों और सहानुभूतियों के कारण जापानी हूं। इस भूमिका के बाद मैं अपने विषय पर आता हूं।

सफलता की कुंजी एक स्पष्ट रहस्य है। हर एक आदमी इस

विषय पर कुछ न कुछ कह सकता है, और इसके सामान्य सिद्धान्तों का वर्णन शायद आपने अनेक वार सुना होगा; परन्तु विषय यह इतने मार्के का है कि लोगों के मनों में बैठाने के लिये जितना भी इस पर ज़ोर दिया जाय, ठीक ही है।

सफलता का पहला सिद्धांतः—काम (Work.)

शुरू में हमें यह प्रश्न अपने इर्द गिर्द की प्रकृति से करना चाहिये।

"Books in running brooks and sermons in stones."

"बहते हुए नालों से सब शिक्षाएँ और शिलाओं से उपदेश" असंदिग्ध स्वरों से निरन्तर अर्थात् लगातार कार्य के मन्त्र का प्रचार कर रहे हैं। प्रकाश से हमें देखने की शक्ति मिलती है। प्रकाश सब प्राणियों को प्रातःकालीन स्रोत (matin spring) देता है। आओ देखें कि स्वयं प्रकाश इस विषय पर क्या प्रकाश डालता है। उदाहरण के लिये मैं साधारण प्रकाश अर्थात् दीपक को लेता हूं। दीपक की प्रभा और उज्ज्वलता का मूल मंत्र यही है कि वह अपनी बत्ती और तेल को नहीं बचाता है। बत्ती और तेल अर्थात् दीपक का परिच्छिन्नात्मा निरन्तर ख़र्च किया जा रहा है, और प्रभा इसका स्वाभाविक परिणाम होता है। यही तो बात है। दीपक कहता है कि अपने को (ख़र्चने से) बचाते ही तुम तुरन्त बुझ जाओगे। यदि तुमने अपने शरीरों के लिये चैन और आराम चाहा, यदि विलासिता और इन्द्रियों के सुखों में तुमने अपना समय नष्ट किया, तो तुम्हारी ख़ैर नहीं है। दूसरे शब्दों में, अकर्मण्यता (inactivity) तुम्हें मृत्यु के मुख में डालेगी; और कर्मण्यता

(activity) अर्थात् केवल कर्मण्यता ही जीवन है। निश्चल तालाब और बहती हुई नदी को देखो। नदी का झरझराता हुआ बिल्लौरी पानी सदा ताज़ा, स्वच्छ, मनोहर और पीने के योग्य रहता है; किन्तु इसके विपरीत गति हीन सरोवर का जल देखिये तो सही कि कैसा मैला, गँदला, बदबूदार, सड़ा हुआ, दुर्गन्धयुक्त और घिनौना होता है। यदि आप सफलता चाहते हैं, तो कर्म का रास्ता पकड़िये, नदी की निरन्तर गति का अनुकरण कीजिये। उस मनुष्य के लिये कोई आशा नहीं है जो अपनी बत्ती और तेल को ख़र्च करने से बचाने में नष्ट करता है। सदा आगे बढ़ने, दूसरी वस्तुओं को सदा अपने रूप में मिलाते रहने, सदा अपने को परिस्थिति के अनुकूल बनाने, और बराबर काम करने की नदी की नीति बरतो। सफलता का पहला सिद्धान्त है काम, अर्थात् काम वा विश्राम-हीन काम। "From good to better daily self-surpassed," अर्थात् "अच्छे से अधिक अच्छे होते हुए नित्यप्रति अपने आप से आगे बढ़ना"।

यदि आप इस सिद्धान्त पर काम करें, तो आप देखेंगे कि, "It is as easy to be great as to be small," "छोटा बनना जितना सहज है, बड़ा बनना भी उतना ही सहज है"।

दूसरा सिद्धांत—आत्म-त्याग।(Self-Sacrifice.)

हरएक मनुष्य सफ़ेद चीज़ों को प्यार करता है। आओ हम उनके सार्वभौम प्रेम-पात्र होने का कारण जानें, और सफ़ेद वर्ण की सफलता का सबब समझें। काली चीज़ों से सब कहीं घृणा की जाती है, वे सर्वत्र उपेक्षित होती हैं, कहीं भी उनका आदर नहीं होता। इस तथ्य को मान कर हमें इसका कारण

जानना चाहिये। पदार्थ-विज्ञान हमें रंग के चमत्कार की असलियत बताता है। लाल, लाल नहीं है; हरा, हरा नहीं है; काला, काला नहीं है; और सभी चीज़ें जैसी दिखाई पड़ती हैं वैसी नहीं हैं। लाल गुलाब लाल रङ्ग को लौटाने या प्रतिक्षेप करने से ही अपना सुहावना (लाल) रङ्ग पाता है। गुलाब सूर्य की किरणों के अन्य सब रङ्ग अपने में लीन कर लेता है, और उन रङ्गों को गुलाब का कोई नहीं कहता। हरी पत्ती प्रकाश के अन्य सब रङ्गों को अपने में लीन कर लेती है; किन्तु जिस रङ्ग को ग्रहण नहीं करती तथा लौटा देती है, उसी की बदौलत वह ताज़ी और हरी जान पड़ती है। काले पदार्थों में (प्रकाश के) सब रङ्गों को अपने में लीन कर लेने और किसी को भी वापिस न लौटाने का गुण होता है। उनमें आत्म-त्याग और दान का भाव नाम मात्र को भी नहीं होता। वे एक किरण का भी त्याग नहीं करते। वे जो कुछ प्राप्त करते हैं उसका ज़रा सा भी अंश वापिस नहीं लौटाते। प्रकृति आपको बतलाती है कि जो कोई अपने पड़ोसी को अपनी प्राप्त वस्तु देने से इनकार करता है, वह काला अर्थात् कोयले के समान काला दिखाई पड़ता है। देना ही पाने का उपाय है। सर्वस्व-त्याग, जो कुछ मिले वह सब का सब तुरन्त अपने पड़ोसियों को दे डालना ही उज्ज्वल मालूम पड़ने की कुञ्जी है। सफ़ेद वस्तुओं के इस गुण को प्राप्त कीजिये और आप सफल होंगे। सफ़ेद से मेरा मतलब क्या है? यूरोपीय? केवल यूरोपीय ही नहीं; सफ़ेद शीशा, सफ़ेद मोती, सफ़ेद कपोत, सफ़ेद बरफ़, विशुद्धता और शुचिता के सभी चिन्ह आप के महान गुरू हैं। इस लिये आत्म-त्याग की भावना को पान करो और जो कुछ तुम्हें मिले उसे दूसरों पर प्रतिक्षेप करो। स्वार्थ-पूर्ण शोषण का आश्रय न लो और तुम उज्ज्वल हो जाओगे।

अंकुरों में फूट कर वृक्ष बनने के लिये बीज को अपने को मिटाना पड़ता है। इस प्रकार पूर्ण आत्म-त्याग का अन्तिम परिणाम सफलता है। सभी शिक्षक मेरे इस कथन का समर्थन करेंगे कि ज्ञान का प्रकाश जितना ही अधिक हम फैलाते हैं उतना ही अधिक हम प्राप्त करते हैं।

तीसरा सिद्धान्त—आत्मविस्मृति।

(Self-forgetfulness.)

विद्यार्थी लोग जानते हैं कि अपनी साहित्यिक सभाओं में व्याख्यान देते समय ज्यों ही उनके चित्त में यह विचार प्रबलता प्राप्त करता है कि "मैं व्याख्यान देता हूं," उनका व्याख्यान बिगड़ जाता है। काम में अपने तुच्छ अहं भाव अर्थात् परिच्छिन्नात्मा को भूल जाओ और दिलोजान से उसमें लग जाओ, तुम सफल होगे। यदि तुम विचार कर रहे हो तो विचार ही बन जाओ, और तब तुम्हें सफलता होगी। यदि तुम काम में लगे हो तो स्वयं काम ही बन जाओ। और सफलता का केवल यही उपाय है।

"When shall I be free?
When 'I' shall cease to be.

मैं कब मुक्त हूंगा?
जब "मैं" न रह जायगी।

दो भारतीय राजपूतों की एक कहानी है। ये दोनों राजपूत भारत के मोगल सम्राट अकबर के पास गये, और नौकरी माँगी। अकबर ने उनकी योग्यता पूछी। उन्होंने कहा, हम शूरवीर हैं। अकबर ने उनसे इस कथन का प्रमाण देने को कहा। दोनों ने अपने अपने खञ्जर मियान से निकाल लिये। अकबर के दरबार में यह दो बिजलियाँ कौंधने लगीं। खञ्जरों की चमक

दोनों वीरों की आन्तरिक शूरता का प्रतिरूप थी। तुरन्त दोनों कौंधे दोनों शरीरों में मिल गयीं। दोनों ने अपने अपने खञ्जर की नोक एक दूसरे की छाती पर रख दी, और दोनों ही ने निर्मम शांति से खञ्जरों को भोंक कर अपनी शूरवीरता का प्रमाण दिया। शरीर गिरे, आत्माओं का मिलाप हुआ, और वे वीर सिद्ध हुए। मेरा सङ्केत कहानी की ओर नहीं है, जो इस उन्नति के युग में बीभत्स वा हृदय विदारक है, किन्तु इसकी शिक्षा पर है। इससे यही शिक्षा मिलती है, कि अपने तुच्छ वा परिछिन्न आत्मा का त्याग करो; अपने काम के करने में इसे भूल जाओ; फिर सफलता तुम्हारे सामने आकर हाज़िर होगी। इसके विरुद्ध हो ही नहीं सकता। क्या यह मैं नहीं कह सकता कि सफलता प्राप्त करने के पूर्व ही आपकी सफलता की आकांक्षा का अन्त काम करने में ही हो जाना चाहिये?

चौथा सिद्धान्त—सार्वभौम प्रेम।

(Universal Love.)

प्रेम सफलता का एक और सिद्धान्त है। प्यार करो और प्यार पाओ, यही लक्ष्य है। हाथ को जीवित रहने के लिये उसे शरीर के सब अंगों को प्यार करना पड़ेगा। यदि वह अपने को अलग करके सोचने लगे कि "मेरी कमाई का लाभ समग्र शरीर क्यों उठावे?" तो उसकी कुशलता नहीं, उसे मरना पड़ेगा। स्वार्थपरता की सिद्धि के विचार से हाथ को चाहिये कि वह केवल अपने परिश्रम से (चाहे क़लम द्वारा, चाहे तलवार आदि द्वारा) प्राप्त खानपान को मुख में न रखे; किन्तु सब प्रकार के पौष्टिक भोजनों को अपनी ही खाल में भरकर ठोंस ले और दूसरे अंगों को अपने परिश्रम के फल में भाग

न लेने दे। यह सत्य है कि इस प्रकार खाल में ठोंसने से अथवा मधुमक्खी या बरैंया के डंक से हाथ मोटा हो सकता है: परन्तु ऐसी मोटाई हित की अपेक्षा अहित ही अधिक करती है। सूजन तरक़्क़ी नहीं है। और पीड़ित हाथ अपनी ख़ुदगर्ज़ी के कारण अवश्य मर जायगा। हाथ तभी फल फूल सकता है जब उसे शरीर के और सब अंगों के आत्मा से अपने आप की एकता का अमली अनुभव हो और समग्र की भलाई से अपने आपकी भलाई को अलग न करता हो।

सहकारिता प्रेम का ऊपरी आविष्कार है। सहकारिता की उपयोगिता के संबंध में आप बहुत कुछ सुनते रहते हैं। विस्तार-पूर्वक उस पर कुछ कहना मैं अनावश्यक समझता हूं। आप के भीतरी प्रेम से उस सहकारिता का उद्भव होना चाहिये। प्रेममय हो जाते ही आप सफल हैं। जो व्यापारी अपने ग्राहक के स्वार्थों को अपने ही समान नहीं समझता, वह सफलता नहीं प्राप्त कर सकता। फलने-फूलने के विचार से उसे अपने ग्राहकों से प्रेम करना चाहिये। उसे दिलोजान से उनका ख़्याल रखना चाहिये।

पाँचवाँ सिद्धांत:—प्रसन्नता। (Cheerfulness.)

एक और साधन जो सफलता के सम्पादन में महत्त्वपूर्ण भाग लेता है, प्रसन्नता है। मेरे भाइयो! तुम स्वभाव से ही प्रसन्नचित्त हो। तुम्हारे खिलते हुए चेहरों की मुसक्यान देख कर मुझे आनन्द होता है। तुम मुस्कुराते हुए पुरुष हो। तुम मानव-ज़ाति की हँसती हुई कलियाँ हो। तुम प्रसन्नता की मूर्ति हो। सो मैं तुम्हें यह बतलाना चाहता हूं कि समय के अन्त तक अपने जीवन का यह लक्षण क़ायम रक्खो। अब हमें यह विचारना है कि इसकी रक्षा कैसे हो सकती है।

अपने परिश्रमों के पुरस्कार के लिये चिन्तित न हो; भविष्य की परवाह न करो; संशयों को त्याग डालो; सफलता और असफलता का विचार न करो। कार्य्य के लिये कार्य करो। काम अपना पुरस्कार आप ही है। भूतकाल पर बिना खिन्न हुए और भविष्य की बिना चिन्ता किये जीवित वर्तमान में काम करो, काम करो, काम करो। यह भाव तुम्हें सब अवस्थाओं में प्रसन्न रक्खेगा। जीवित बीज को फलने फूलने के लिये हवा, पानी और मट्टी की जितनी मात्रा की उसे ज़रूरत है वह संपर्क या सम्बन्ध के अमित नियम (law of affinity) से अपनी ओर खींच ही लेगा। इसी प्रकार प्रसन्न-चित्त उद्योगी कार्य-कर्त्ता को प्रकृति हर प्रकार की सहायता का वचन देती है।

"The way to more light is the faithful use of what we have."

"जो कुछ हमें प्राप्त है उसका सदुपयोग ही अधिक प्रकाश पाने का साधन है।"

यदि एक अँधेरी रात में तुम्हें बीस मील की यात्रा करना है और तुम्हारे हाथ के प्रकाश की रोशनी केवल दस फ़ुट ही तक जाती है तो समग्र अप्रकाशित रास्ते का विचार न करो, बल्कि प्रकाशित फ़ासला चल डालो और इस रीति से दस फ़ुट रास्ता और रोशन आप ही हो जायगा। फिर कोई भी स्थल तुम्हें अप्रकाशित न मिलेगा। इसी तरह किसी वास्तविक और उत्सुक कार्य-कर्त्ता को एक आवश्यक नियम के अनुसार अपने मार्ग में कहीं भी अंधेरी भूमि नहीं मिलती है। तो फिर किसी घटना के सम्बन्ध में बेचैन होकर दिल को ओछा हम क्यों करें? जो लोग तैरना नहीं जानते, वे यदि अचानक झील में

गिर पड़ें, तो केवल अपनी समचित्तता व समता को बनाये रखने से अपने को बचा सकते हैं। मनुष्य का जातीय गुरुत्व जल से कम होने के कारण वह जल पर तैरता रहेगा; किन्तु साधारण मनुष्यों के चित्त की स्थिरता जाती रहती है, और अपने तिरते रहने के प्रयत्न के ही कारण वे डूब जाते हैं। इसी तरह भावी सफलता के लिये अशान्ति वा काल व्यग्रता प्रायः स्वयं ही असफलता का कारण होती है।

असफलता के पीछे दौड़ने और भविष्य से चिपटने वाले विचार के स्वभाव को हमें जान लेना चाहिये। वह ऐसा है। जैसा कि एक मनुष्य अपनी ही छाया पकड़ने को जाता है। अनन्त समय तक वह भले ही दौड़ता रहे, परन्तु अपनी छाया को कदापि, कदापि न पकड़ पावेगा। किन्तु छाया की ओर पीठ करके उसे सूर्य की ओर मुख करने दो, तब देखो कि वही छाया उसके पीछे दौड़ने लगती है। ज्योंही तुम सफलता की ओर अपनी पीठ फेरते हो, ज्योंही तुम परिणामों की चिन्ता त्याग देते हो, ज्योंही तुम अपनी उद्योग-शक्ति अपने उपस्थित कर्त्तव्य पर एकाग्र करते हो, त्योंही सफलता तुम्हारे साथ हो जाती है, बल्कि तुम्हारे पीछे-पीछे दौड़ने लगती है। अतः सफलता का अनुसरण न करो, सफलता को अपना लक्ष्य न बनाओ। तभी और केवल तभी सफलता तुम्हें ढूँढ़ेगी। किसी न्यायालय में हाकिम को, अपना इजलास लगाने के लिये वादियों-प्रति-वादियों, वकीलों और चपरासियों आदि को बुलाने की ज़रूरत नहीं पड़ती; परन्तु स्वयं न्यायाधीश के अपने न्यायासन पर बैठ जाने भर की ज़रूरत है, और इजलास का सम्पूर्ण दृश्य आप ही आप उसके सामने प्रकट हो जाता है। प्यारे मित्रो! यही बात है। बड़ी प्रसन्नता से अपने कर्त्तव्य का पालन करते

रहो, और सफलता के लिये तुम्हें जो कुछ भी आवश्यक है सब तुम्हारे पैरों पर आकर गिर पड़ेगा।

छठा सिद्धांतः—निर्भीकता। (Fearlessness.)

दूसरी बात जिस की ओर मैं आपका ध्यान खींचना चाहता हूं और जिसकी सत्यता स्वानुभव से सिद्ध करने को मैं आपसे आग्रह करूँगा, वह निर्भीकता है। एक ही नज़र से सिंह वशीभूत किये जा सकते हैं, एक ही दृष्टि से शत्रु शान्त किये जा सकते हैं, और एक ही निर्भयता की चोट से विजय प्राप्त की जा सकती है। हिमालय की घनी घाटियों में मैं घूमा हूं। चीते, रीछ, भेड़िये और विषैले जन्तु मुझे मिले हैं। कोई हानि मुझे नहीं पहुँची। जंगली जानवरों पर अशंक भाव से सीधी दृष्टि डाली गई, नज़र से नज़र मिली, खूनी पशु भयभीत हो गये, तथा भयंकर कहे जाने वाले जीव कुपित होकर चल दिये। बस यही सिद्धान्त है। निर्भय बनो और कोई तुम्हें हानि न पहुँचा सकेगा।

कबूतर बिल्ली के सामने किस तरह अपनी आँखें बन्द कर लेता है, शायद आपने देखा होगा। कदाचित वह समझता है कि बिल्ली उसे नहीं देखती, क्योंकि वह बिल्ली को नहीं देखता। तब क्या होता है? बिल्ली कबूतर पर झपटती है और उसे खा लेती है। निर्भयता से चीता भी पालतू बना लिया जाता है, और डरने वाले को बिल्ली भी खा जाती है।

आपने शायद देखा होगा कि थर्राता हुआ हाथ एक बर्तन से दूसरे बर्तन में कोई तरल पदार्थ ठीक ठीक नहीं उडेल सकता। वह अवश्य गिर जायगा। किन्तु एक स्थिर, अशङ्क हाथ बिना एक बूँद भी गिराये बहुमूल्य तरल पदार्थ को उलट पुलट

सकता है। प्रकृति पुनः आप को अत्यन्त मधुर वचनों से शिक्षा दे रही है।

एक बार एक पञ्जाबी सिपाही जहाज़ पर किसी दुष्ट रोग से पीड़ित हुआ। डाक्टर ने उसे जहाज़ से फैंक दिये जाने का अन्तिम आदेश निकाला। डाक्टर अर्थात् ये डाक्टर कभी कभी प्राण-वध के दण्ड देते हैं। सिपाही को इसका पता लग गया। शत्रु से घिर जाने पर साधारण लोगों में भी निर्भयता चमक उठती है। असीम शक्ति से सिपाही उछल पड़ा और निर्भय हो गया। वह सीधा डाक्टर के पास गया और अपनी पिस्तौल उसकी ओर सीधी करके बोला, "मैं बीमार हूं? तुम ऐसा कहते हो? मैं तुम्हें गोली मार दूँगा"। डाक्टर ने तुरन्त ही उसे स्वस्थता का प्रमाणपत्र दे दिया। निराशा ही निर्बलता है, इस से बचो। निर्भयता ही सारी शक्ति का मूल है। मेरे शब्दों "निर्भीकता" व "निर्भयता" पर ध्यान दो। निर्भीक हो जाओ।

सातवां सिद्धांत—स्वावलम्बन।

(Self-reliance.)

सब से अन्त में, किन्तु तुच्छ नहीं, बल्कि सफलता का मार्मिक सिद्धांत अथवा स्वयं कुंजी स्वावलम्बन या आत्म-निर्भरता है। यदि मुझ से कोई एक शब्द में मेरा तत्त्व-ज्ञान बताने को कहे, तो मैं कहूंगा "स्वावलम्बन" अर्थात् आत्मा का ज्ञान। ऐ मनुष्य! सुन, अपने को जान। यह सच है, अक्षरशः सच है कि जब आप अपनी सहायता करते हैं, तो ईश्वर भी आप की सहायता करता ही है। दैव आपकी सहायता करने को बाध्य है। यह सिद्ध किया जा सकता है अथवा अनुभव किया जा सकता है कि आप का अपना आप (आत्मा) ही ईश्वर, अनन्त, सर्व-

शक्तिमान है। यह एक तत्त्व, वास्तविकता, या सच्चाई है, जो प्रयोग से प्रमाणित होने की प्रतिक्षा कर रही है। सचमुच, सचमुच, अपने पर निर्भर करो, और तुम सब कुछ प्राप्त कर सकते हो। तुम्हारे सामने असम्भव कुछ भी नहीं है।

सिंह वन-राज है, पर वह अपने आप पर निर्भर करता है। वह हिम्मती, बली और सब कठिनाइयों का विजेता है, क्योंकि वह स्वस्थ (अपने में स्थित) है। हाथी, जिन्हें यहूदियों ने पहले पहल भारत के जङ्गलों में देखकर "गतिशील भूधर" वा "चल पर्वत" कहा था और ठीक भी कहा था, अपने शत्रुओं से सदा भय भीत रहते हैं। वे हमेशा दल बाँध कर रहते हैं, और सोते समय अपनी रक्षा के लिये पहरुए (sentinels) नियुक्त कर देते हैं, और उनमें से कोई भी अपने ऊपर या अपनी सामर्थ्य पर नहीं भरोसा करता। वे अपने को निर्बल समझते हैं, और नियम के अनुसार उन्हें निर्बल होना पड़ता है। सिंह की एक साहसपूर्ण झपट उन्हें भयभीत कर देती है, और हाथियों का सम्पूर्ण समूह घबड़ा जाता है, यद्यपि एक ही हाथी—चलता-फिरता पहाड़—कोड़ियों सिंहों को अपने पैरों से कुचल डाल सकता है।

दो भाइयों की, जिन्हों ने पैतृक सम्पत्ति को सम-भाग में बांटा था, एक बड़ी ही शिक्षाप्रद कहानी प्रचलित है। परन्तु कुछ वर्षों के बाद एक तो ग़रीब हो गया और दूसरे ने अपनी सम्पत्ति अनेक गुणा बढ़ाली। जो "लखपती" हो गया था उसने किसी के "क्यों और कैसे धनी होने के" प्रश्न के उत्तर में कहा, मेरा भाई सदा कहा करता था "जाओ, जाओ" और मैं सदा कहा करता था "आओ, आओ"। इसका अर्थ यह है कि उनमें से एक स्वयं तो अपने मुलायम गद्दों पर पड़ा रहता था और नौकरों को आज्ञा दिया करता था "जाओ, जाओ, अमुक

काम करो" और दूसरा अपने काम पर सदा ख़ुद मुस्तैद रहता था और अपने सेवकों से सहायता मांगता था, "आओ, आओ, यह करो"। एक अपनी शक्ति पर निर्भर करता था जिससे उसके नौकरों तथा धन की वृद्धि हुई। दूसरा अपने नौकरों को आज्ञा देता था "जाओ, जाओ"। वे चले गये और सम्पत्ति ने भी उसकी "जाओ, जाओ" की आज्ञा का पालन किया, और वह अकेला रह गया। राम कहता है। "आओ, आओ" और मेरी सफलता तथा आनन्द में हिस्सा लो। भाइयो! मित्रो! और देशवासियो! ऐसा मामला है। मनुष्य अपने भाग्य का आप ही मालिक है। यदि जापान-वासी अपने समक्ष मुझे अपने विचार प्रकट करने का और अवसर दें, तो यह दिखलाया जा सकता है कि क़िस्से-कहानियों और पौराणिक कथाओं पर विश्वास करने और अपने से बाहर हमें अपना केन्द्र मानने का कोई युक्ति-संगत आधार नहीं है। एक ग़ुलाम भी स्वतंत्र होने ही के कारण ग़ुलाम है। स्वाधीनता के ही कारण हम सुखी हैं, अपनी स्वाधीनता के ही हेतु हम कष्ट भोगते हैं, और हमारी स्वाधीनता ही हमें ग़ुलाम बनाती है। तो फिर हम विलाप और काँय काँय क्यों करें और अपनी सामाजिक तथा शारीरिक स्वाधीनता के लिये अपनी स्वतंत्रता का उपयोग क्यों न करें?

राम जो धर्म जापान में लाया है यथार्थ में वही है जो सदियों पूर्व भगवान् बुद्ध के अनुयायी यहाँ लाये थे; परन्तु वर्तमान युग की ज़रूरतों की पूर्ति के लिये उसी धर्म को बिलकुल विभिन्न पहलू से बतलाने की आवश्यकता है। पाश्चात्य पदार्थ-विज्ञान और तत्त्व-ज्ञान के प्रकाश में उसे प्रकाशित करने की ज़रूरत है। मेरे धर्म के मूल और

आवश्यक सिद्धान्तों का वर्णन जर्मन कवि गेटे (Goethe) के शब्दों में यूँ हो सकता है :—

"I tell you what's man's supreme vocation,
Before me was no world, 'tis my creation.
'T was I who raised the sun from out the sea
The moon began her changeful course with me."

"मैं तुम्हें बताता हूं कि मनुष्य का परम व्यवसाय क्या है, मुझ से पूर्व कोई जगत नहीं था। यह मेरी सृष्टि है। वह मैं ही था जिसने सूर्य को समुद्र से निकाल कर प्रकट किया, और चन्द्र ने अपनी परिवर्तनशील गति मेरे ही साथ शुरू की"।

एक बार इसका अनुभव करो और तुम इसी क्षण स्वतंत्र हो जाओगे। एक बार इसका अनुभव करो और तुमको सदा सफलता होगी। एक बार इसका अनुभव करो और महा अन्धकारमय कारागार ठौर ही पर नन्दन कानन में बदल जायगा।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

सफलता का रहस्य।

(२६ जनवरी १९०३ को सैन फ्रांसिस्को नगर के गोल्डेनगेट हाल में दिया हुआ व्याख्यान।)

(टोकियों के छोटे से व्याख्यान की अपेक्षा यह अधिक विस्तार पूर्वक है—सम्पादक)

तीन लड़कों को उन के गुरू ने पाँच सेंट की एक मुद्रा आपस में बरावर बाँट लेने के लिये दी। उन्होंने रुपये से कोई चीज़ खरीदने का निश्चय किया। उन में से एक लड़का अंग्रेज़, एक हिंदू और तीसरा ईरानी था। उनमें से कोई भी दूसरे की भापा भली भाँति नहीं समझता था। इस लिये उन्हें यह निश्चय करने में कुछ कठिनता पड़ी कि कौन सी वस्तु मोल ली जाय। अंग्रेज़ वालक ने "वाटर मेलन" (तरबूज़) खरीदने की ज़िद की। हिन्दू लड़के ने कहा, "नहीं, नहीं, मैं हिंद्राना पसन्द करूँगा"। तीसरे लड़के अर्थात् ईरानी ने कहा, "नहीं नहीं, हमें तरबूज़ लेना चाहिये"। इस तरह वे निश्चय न कर सके कि कौन सी वस्तु ख़रीदी जाय। जिसको जो वस्तु पसन्द थी उसने वही ख़रीदने पर ज़ोर दिया, दूसरों की रुचि की हर एक ने परवाह न की। उन में अच्छा खासा झगड़ा उठ खड़ा हुआ। वे सड़क पर चलते चलते झगड़ते जाते थे। वे एक मनुष्य के पास से होकर निकले जो इन तीनों भाषाओं (अंग्रेज़ी, फ़ारसी

और हिन्दुस्थानी) को समझता था । इस मनुष्य को लड़कों के झगड़े में बड़ा मज़ा आया । उसने उनसे कहा कि तुम्हारा झगड़ा मैं निपटा सकता हूं । तीनों ने उसे अपना अभियोग सुनाया और उसका फ़ैसला मानने को वे सब राज़ी हुए। इस मनुष्य ने उनसे मुद्रा ले ली और कोने में ठहरने को कहा। वह स्वयं एक खटिक की दुकान पर गया और उक्त मुद्रा से एक बड़ा सा तरबूज़ मोल लिया। उस ने लड़कों से इसे छिपाये रक्खा, और एक एक करके तीनों को बुलाया। पहले उसने अंग्रेज़ बालक को बुलाया। और उससे छिपा कर तरबूज़ को तीन सम भागों में काट एक टुकड़ा अंग्रेज़ी बालक को दे कर बोला "यही वस्तु तुम चाहते थे" ! लड़का बहुत ख़ुश हुआ। प्रसन्नता और कृतज्ञता से स्वीकार कर कूदता, नाचता और यह कहता हुआ वह चल दिया कि "यही वस्तु मैं चाहता था"। इसके बाद भद्रपुरुष ने ईरानी लड़के से अपने पास आने को कहा, और दूसरा टुकड़ा दे कर पूछा, "यही चीज़ तुम माँगते थे ?" ईरानी लड़का ख़ुशी से फूल कर कुप्पा हो गया और बोला, "यही मेरा तरबूज़ है, यही मैं चाहता था"। वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ और चला गया। तिस पीछे हिन्दू लड़का पुकारा गया और तीसरा टुकड़ा उसे दिया गया। उससे पूछा गया "इसी वस्तु की तो तुम्हें अभिलाषा थी" ? बालक बड़ा सन्तुष्ट हुआ। उसने कहा, "यही मैं चाहता था, यही मेरा हिंद्वाना है"।

झगड़ा या बखेड़ा क्यों हुआ ? छोकड़ों में मतभेद वा मनमोटाव किस बात ने पैदा किया ? केवल नामों ने। एक मात्र नामों ने, और कुछ नहीं। नामों को हटा दो, नामों के परदे के पीछे झाँको; ओह ! तब तुम देखोगे कि तीनों विरोधी नाम, "वाटर मेलन", "हिंद्वाना" और "तरबूज़," एक और उसी

एक चीज़ के सूचक हैं। तीनों नामों के नीचे एक ही वस्तु है। यह हो सकता है कि फ़ारस का तरबूज़ इङ्गलैण्ड के तरबूज़ से कुछ भिन्न होता हो, और यह भी हो सकता है कि भारत के तरबूज़ इङ्गलैण्ड के तरबूज़ों से कुछ भिन्नता रखते हों, परन्तु वास्तव में फल एक ही है। वह एक ही वस्तु है। छोटे भेदों की उपेक्षा की जा सकती है।

इसी प्रकार विभिन्न धर्म्मों के विवादों, झगड़ों, मनोमालिन्यों और वाद-विवादों पर राम को हँसी आती है। ईसाई यहूदियों से लड़ रहे हैं, यहूदी मुसलमानों से झगड़ रहे हैं, मुसलमानों का ब्राह्मणों से विवाद चल रहा है, ब्राह्मण बौद्धों में त्रुटियाँ निकाल रहे हैं; और बौद्ध उसी तरह बदला चुका रहे हैं। ऐसे झगड़े देखने में तो बड़े मनोरञ्जक हैं; पर इन झगड़ों और मनोमालिन्यों का कारण मुख्यतः नाम है। नामों का घूँघट उतार डालो, नामों का परदा समेट दो, उनके (नामों के) पीछे देखो, वे जो कुछ सूचित करते हैं उसकी ओर देखो, और तब तुम्हें अधिक भेद न मालूम होगा।

राम प्रायः "वेदान्त" शब्द का, जो एक नाम है; व्यवहार करता है। इसी नाम का द्वेष कुछ लोगों को राम से कुछ भी सुनने के विरुद्ध कर देता है। एक मनुष्य आता है और वह भगवान् बुद्ध के नाम से उपदेश देता है। बहुतेरे लोग उसे नहीं सुनना चाहते, क्योंकि वह एक ऐसा नाम उनके पास लाता है जो उनके कानों को नहीं रुचता। कृपया कुछ अधिक समझदार बनिये। यह बीसवीं सदी है, नामों से ऊपर उठने का बहुत ठीक समय है। राम जो कुछ आप के पास लाता है, अथवा दूसरा कोई व्यक्ति जो कुछ आप के पास लाता है, उसके दोष-गुणों को परखो। नामों के भ्रम-जाल में न उलझो; नामों के

धोखे में न पड़ो। हर एक चीज़ की जाँच करो, देखो वह काम की है या नहीं। कोई धर्म सब से प्राचीन है, इसी लिये उसे न ग्रहण कर लो। सर्व-प्राचीनता उसके सत्य होने का कोई प्रमाण नहीं। कभी कभी सब से पुराने घर गिरा देने के योग्य होते हैं और सब से पुराने कपड़े बदलने ज़रूरी होते हैं। नया से नया नव-मार्ग, यदि वह तर्क वा युक्ति की परीक्षा में ठहर सकता है, तो वह चमकते हुए ओस-कण से सुशोभित गुलाब के ताज़े फूल के समान उत्तम है। नवीनतम होने ही के कारण किसी धर्म को अंगीकार न कर लो। नवीन चीज़ें सदा सर्वोत्तम नहीं हुआ करतीं, क्योंकि समय की कसौटी पर वे नहीं कसी गई हैं। किसी धर्म को इस लिये ग्रहण न करो, कि मानवजाति की विपुल संख्या उसे मानती है, क्योंकि मानवजाति का बहुत बड़ा भाग व्यवहारतः शैतानी धर्म पर, अर्थात् अविद्या के धर्म पर विश्वास रखता है। एक समय था जब मनुष्य-जाति का बहुत बड़ा भाग ग़ुलामी को ठीक समझता था। परन्तु ग़ुलामी की रीति उत्तम होने का यह कोई प्रमाण नहीं है। किसी धर्म पर इस लिये श्रद्धा मत करो कि उसे गिने चुने लोगों ने माना हुआ है। कभी कभी किसी धर्म को ग्रहण करने वाले थोड़े से लोग अन्धकार में वा भ्रान्ति में होते हैं। कोई धर्म इसी लिये मान्य नहीं है कि उसकी प्राप्ति एक महान साधु से, अर्थात् पूर्णत्यागी से हो रही है, क्योंकि हम देखते हैं कि बहुतेरे साधु अर्थात् बहुतेरे पूर्ण त्यागी पुरुष कुछ भी नहीं जानते, अर्थात् सचमुच कोरे धर्मान्ध हैं। किसी धर्म को इस लिये ग्रहण न करो, कि उस के प्रवर्तक राजकुमार या राजा हैं, क्योंकि राजा-महाराजा प्रायः अध्यात्म-दरिद्र (spiritually poor) होते हैं। कोई धर्म इसी लिये ग्राह्य न समझो कि उसका

संस्थापक बड़ा सच्चरित्र था, क्योंकि सत्य की व्याख्या करने में बड़े से बड़े चरित्रवानों को प्रायः असफलता हुई है। सम्भव है कि किसी मनुष्य की पाचन-शक्ति बड़ी ही प्रबल हो, और फिर भी पाचन क्रिया के सम्बन्ध में वह कुछ भी न जानता हो। कल्पना करो, यह एक चित्रकार है, वह तुम्हें एक अत्यंत सुंदर, मनोहर, चित्र-कला का अति उज्ज्वल नमूना देता है। फिर भी सम्भव है कि चित्र-कार संसार का परम कुरूप मनुष्य हो। ऐसे भी लोग हैं जो घोर कुरूप होते हुए भी सुंदर सच्चाइयों का प्रचार करते हैं। सुकरात इसी तरह का एक मनुष्य था। एक सर फ्रांसिस बेकन (Sir Francis Bacon) हो गया है, वह न तो बड़ा नैतिक ही था, न चरित्र ही में बहुत बढ़ा चढ़ा था, फिर भी उसने संसार को "नोवम आरगेनन" (Novum Organon) नामक ग्रन्थ दिया और पहले पहल व्याप्तिवाद (Inductive Logic=आगमनात्मक तर्क-शास्त्र) की शिक्षा दी। उसका तत्त्व-ज्ञान उत्कृष्ट था। किसी धर्म में इस लिये न विश्वास करो कि वह बड़े विख्यात व्यक्ति का चलाया हुआ है। सर आइज़ाक न्यूटन (Sir Isaac Newton) बड़ा प्रसिद्ध पुरुष था। फिर भी प्रकाश के सम्बन्ध में उसकी वार्तांहर मीमांसा (emissory theory of light) ग़लत है। उसका चलन पद्धति का तरीक़ा लाइबनिट्स के शून्य वृद्धि की पद्धति को नहीं पाता। किसी वस्तु को स्वीकार और किसी धर्म पर विश्वास उसके गुणों को समझ कर करो। स्वयं उसकी परीक्षा करो। उसकी जाँच पड़ताल करो। बुद्ध, ईसा, मोहम्मद, या कृष्ण के हाथ अपनी स्वाधीनता न बेच डालो। यदि बुद्ध ने इस रीति से शिक्षा दी, या ईसा ने उस विधि से शिक्षा दी; अथवा मोहम्मद ने कोई और ही विधि से शिक्षा दी, तो वह उनके लिये बहुत

अच्छी थी, उनके समय दूसरे थे। उन्होंने अपनी समस्याओं को हल किया था, उन्होंने अपनी बुद्धियों से निर्णय किया था, उन्होंने बड़ा काम किया; किन्तु तुम आज जी रहे हो, तुम्हें अपने लिये मामलों की जाँच, आलोचना और निर्णय आप करना पड़ेगा। स्वतंत्र हो, अपनी ही ज्योति से हर एक वस्तु देखने के लिये स्वतंत्र हो। यदि तुम्हारे पूर्वज किसी विशेष धर्म पर विश्वास करते थे, तो शायद उनके लिये उसी पर विश्वास करना बहुत उचित था; परन्तु तुम्हारी मुक्ति अब तुम्हारा अपना काम है, तुम्हारा उद्धार तुम्हारे पूर्वजों का व्यवसाय नहीं। वे एक विशेष धर्म पर विश्वास करते थे, जिसने उनको बचाया हो या न बचाया हो, परन्तु तुम्हें अपना मोक्ष आप सम्पादन करना है। जो कुछ तुम्हारे सामने आवे उसकी उसी रूप में जाँच करो, बिना अपनी स्वतंत्रता खोये हुए स्वयं उसकी परीक्षा करो। तुम्हारे पूर्वजों को शायद एकही खास धर्म बताया गया हो, पर तुम्हारे सामने सब प्रकार के सत्य, सब प्रकार के धर्म, सब प्रकार के तत्त्वज्ञान, सब प्रकार के विज्ञान प्रतिपादित किये जा रहे हैं। यदि तुम्हारे पूर्वजों का धर्म इस लिये तुम्हारा है कि वह तुम्हारे सामने रक्खा गया है, तो बुद्ध का धर्म भी तुम्हारे सामने रक्खा जाने के कारण तुम्हारा है; उसी तरह वेदान्त भी तुम्हारे सामने उपस्थित किया जाने के कारण तुम्हारा है।

सत्य किसी व्यक्ति-विशेष की सम्पत्ति नहीं है। सत्य ईसा की जायदाद नहीं है; उसका प्रचार हमें ईसा के नाम में नहीं करना चाहिये। सत्य बुद्ध की सम्पत्ति नहीं है; उसका प्रचार हमें बुद्ध के नाम में नहीं करना चाहिए। वह मोहम्मद की भी सम्पत्ति नहीं है। वह कृष्ण अथवा किसी और पुरुष की जाय-दाद नहीं है। वह हर एक की सम्पत्ति है। यदि पहले किसी ने

सूर्य की किरणों का सेवन किया, अथवा घास खाया है, तो आज आप भी घास खा सकते हैं। यदि एक मनुष्य चश्मे का ताज़ा पानी पीता है, तो आप भी वही ताज़ा पानी पी सकते हैं। सब धर्मों के प्रति आपका यह भाव होना चाहिए। कोई भी पुरुष अपने सच्चे चित्त से अपने पड़ोसियों के लौकिक ऐश्वर्यों को अपहरण करने में न हिचकेगा। परन्तु क्या यह विचित्र बात नहीं है कि जब हमारे पड़ोसी बड़ी प्रसन्नता से अपने धार्मिक अथवा आध्यात्मिक भंडार, जो निर्विवाद रूप से लौकिक कोषों से बहुत बढ़ कर हैं, हमें देते हैं, तो हर्षपूर्वक उन्हें ग्रहण करने के बदले हम उनके विरुद्ध डण्डा लेकर खड़े होते हैं? तुम्हें वेदान्ती नाम की उपाधि देने के इरादे से राम तुम्हारे पास वेदान्त नहीं लाया है। नहीं; यह सब तुम ले लो, इसे पचा लो, इसे तुम अपना-लो, फिर चाहे इसे ईसाइयत ही कहो। नाम हमारे लिये कुछ भी नहीं हैं। राम तुम्हारे पास एक ऐसा धर्म लाया है, जो केवल इञ्जील और अधिकांश पुराने धर्म ग्रंथों ही में नहीं मिलता, बल्कि दर्शन-शास्त्र और पदार्थ-विज्ञान के नये से नये ग्रंथों में भी मिलता है। राम तुम्हें एक ऐसे धर्म का उपदेश देने आया है, जो गलियों में भी मिलता है, जो पत्तियों पर लिखा हुआ है, जो नालों द्वारा गुनगुनाया जाता है, जो पवन द्वारा कानों में संसना रहा है, जो तुम्हारी अपनी ही नसों और नाड़ियों में फड़क रहा है। यह वह धर्म है जिसका सम्बन्ध वा वास्ता तुम्हारे व्यवसाय और अन्तःकरण से है। यह वह धर्म है जिसके अभ्यास के लिये तुम्हें किसी ख़ास गिर्जाघर ही में जाने की ज़रूरत नहीं। यह वह धर्म है जिसका तुम्हें अपने नित्य जीवन में, अपने भोजनशाला में, वा अपने चूल्हा-चक्की

के आस-पास अभ्यास और व्यवहार करना है। सब कहीं तुम्हें इस धर्म का आचरण करना है। वेदान्त हम इसे न कहें, किसी दूसरे ही नाम से हम इसे पुकार सकते हैं। वेदान्त शब्द का अर्थ केवल सारभूत सत्य है। सत्य तुम्हारा अपना है, राम का अधिकार उस पर तुम से अधिक नहीं है। हिन्दू का स्वामित्व उस पर तुम से अधिक नहीं है। वह किसी की मिलकियत नहीं; हर एक चीज़ और प्रत्येक प्राणी उसका है।

अब हम यह विचार करेंगे कि इस जीवन में वेदान्त हमारा मार्ग सरल और हमारे काम अधिक रुचिकर क्योंकर बनाता है। आज हम व्यावहारिक वेदान्त अर्थात् दूसरे शब्दों में सफलता के रहस्य पर कहेंगे। वेदान्त का आचरण करना ही सफलता की कुञ्जी है। हर एक विज्ञान की उसके अनुरूप एक कला भी होती है, और आज हम वेदान्त के उसी स्वरूप को लेंगे जो विज्ञान की अपेक्षा अधिक कला है, अर्थात् जो अमली वेदान्त है।

कुछ लोग कहते हैं कि वेदान्त निराशावाद की शिक्षा देता है; वेदान्त नाउम्मेदी, आलस्य, सुस्ती सिखाता है। राम की उन लोगों से प्रार्थना है कि वे अपना न्याय-शास्त्र अपने ही पास रक्खें, और दूसरों के हाथ अपनी बुद्धि न बेचें। वे अपनी बुद्धि अपने ही पास रक्खें और देखें कि वेदान्त की शिक्षा जीवन, शक्ति, उद्योग और सफलता का कारण होती है या किसी और चीज़ की। यह न पूछो कि भारत का निवासी इसका व्यवहार करता है या नहीं। राम साफ़ साफ़ कहता है कि यह केवल भारतीयों की सम्पत्ति नहीं है, यह हर एक की सम्पत्ति है। यह आप का निजी जन्म-स्वस्व है। अमेरिका-वासी अपने व्यापारिक जीवन में इसका अधिक आचरण करते हैं,

और इसी से उन्हें उस विभाग में सफ़लता होती है। भारतीय उसी मात्रा में इसका व्यवहार नहीं करते, और भौतिक दृष्टि से वे इसी लिये पिछड़े हुए हैं।

राम उलटा पुलटा वेदान्त आप के पास नहीं लाया है, किन्तु प्रकृति के मूल-सोतों से निकला हुआ असली वेदान्त लाया है। अपनी बुद्धि और तर्क का (आज के) विषय पर प्रयोग करिये, और आप देखेंगे कि वेदान्त कैसा अपूर्व है, और हर एक विभाग में वह हमें क्योंकर सफ़लता दिलाता है, क्योंकर हर एक को अपनी इच्छा के विरुद्ध भी वेदान्त की रेखा वा पद्धति पर चलना और उसके आदेशों का पालन करना पड़ेगा।

सफलता का रहस्य बहुरूप है। रहस्य के अनेक दृश्य वा भाव हैं। हम एक एक करके इन सिद्धान्तों को लेंगे, और हिन्दू धर्म-ग्रंथों की व्याख्या के अनुसार वेदान्त से उनके सम्बन्ध का पता लगावेंगे।

सफलता का पहला सिद्धान्तः—कार्य।

यह खुला हुआ भेद है कि सफलता की कुञ्जी कार्य, आक्रमण तथा साग्रह प्रयोग है।

"चोट लगाते जाओ, चोट लगाते जाओ"! सफ़लता का पहला सिद्धान्त है। कार्य बिना तुम कदापि सफ़ल नहीं हो सकते। "जीवन-संग्राम" में सुस्त आदमी का नष्ट हो जाना अटल है, वह नहीं जी सकता, उसे मरना ही होगा। यहाँ पर एक सवाल उठता है जो बहुधा वेदान्त के विरुद्ध उठाया जाता है। वेदान्त से प्रतिपादित निज स्वरूप या आत्मा की विशुद्ध, निर्विकार, अकर्तृक वा भावमय प्रकृति से निरन्तर परिश्रम की संगति कैसे आप युक्त ठहरा सकते हैं? वैराग्य या त्याग का

उपदेश देकर और परमात्मा की शान्ति और विश्राम की प्राप्ति को अपने उपदेश का अंग बना कर क्या वेदान्त सुस्त और अकर्मण्य नहीं बनाता है? कार्य या त्याग की असलियत का भयंकर अज्ञान ही इस आपत्ति का कारण है।

काम क्या चीज़ है? वेदान्त के अनुसार अतीव कार्य ही विश्राम है। "काम विश्राम है" यह एक विस्मयकर कथन है, परस्पर-विरोधी बयान है। सच्चा कार्य मात्र विश्राम है। यही वेदान्त सिखाता है। सब से बड़े काम-काजी पर उस समय ध्यान दो, जब वह अपने काम की चोटी पर हो, जब वह ख़ूब काम कर रहा हो। दूसरों की दृष्टि से वह बड़े प्रयत्न में लगा हुआ है, परन्तु उसी के दृष्टि-बिन्दु से उसे जाँचिये, वह कर्त्ता ही नहीं है; जैसे दूर से देखने वालों की दृष्टि में इन्द्र-धनुष में अनेक सुन्दर रंग होते हैं, परन्तु मौक़े की जाँच से मालूम हो जाता है कि उसमें किसी तरह का कोई भी रंग नहीं है। समर में जिस समय नायक (नेपोलियन या वाशिंगटन, कोई भी कह लो) लड़ रहा हो, अर्थात् ख़ूब लड़ रहा हो, और अपने जौहर दिखला रहा हो, तब उस पर ध्यान दीजिये। शरीर मानों आप से आप यंत्रवत् काम कर रहा है, मन इस दर्जे तक काम में लिप्त है कि "मैं काम कर रहा हूं" का भाव बिलकुल चला गया है, सुख-भोगी क्षुद्र अहंकार बिलकुल लुप्त है, वाहवाही का भूखा तुच्छ अहं-भाव ग़ैरहाज़िर है। यह निरन्तर कार्य अनजाने ही आप को योग की सर्वोपरि दशा में पहुंचाता है।

वेदान्त चाहता है कि अतीव कार्य के द्वारा आप क्षुद्र अहंकार अर्थात् तुच्छ अहं-भाव के ऊपर उठें। आप शरीर और चित्त को निरन्तर इस दर्जे तक काम में लगा दें कि परिश्रम का बोध

ही न हो। कवि तभी अभिनिवेश में होता है जब वह क्षुद्र अहं-कार या अहं-भाव के विचार से ऊपर उठता है, जब "मैं कविता कर रहा हूं" का उसे ध्यान तक नहीं रहता। किसी भी ऐसे व्यक्ति से पूछो, जिसे गणित के कठिन प्रश्नों को हल करने का अनुभव प्राप्त हुआ हो, वह तुम्हें बतावेगा कि तभी कठिनाइयाँ दूर और समस्याएँ हल होती हैं जब "मैं यह कर रहा हूं" का विचार बिलकुल दूर हुआ होता है। और क्षुद्र आत्मा या तुच्छ अहंकार से जितना ही अधिक ऊँचा कोई मनुष्य उठ सकता है, उतना ही अधिक गौरवान्वित कार्य उसके द्वारा होता है।

इस प्रकार, वेदान्त सोद्योग कार्य द्वारा क्षुद्र आत्मा से ऊपर उठने और वास्तविक अकथनीय सिद्धान्त में (जो वेदान्त के अनुसार मनुष्य का असली स्वरूप अथवा आत्मा या ईश्वर है) सर्वथा लीन हो जाने की शिक्षा देता है। जब कोई विचार शील, तत्व-ज्ञानी, कवि, वैज्ञानिक या कर्मी समाधि या योग की अवस्था से अपनी एकता स्थापित करता है, और तल्लीनता या वैराग्य की इतनी ऊँची अवस्था में प्राप्त हो जाता है कि व्यक्तित्व का कोई लेश ही उसमें नहीं रह जाता, तथा वेदान्त का प्रत्यक्ष अनुभव होता है, तब और तब ही केवल परमेश्वर अर्थात् नाद-गुरू उस (तत्व-ज्ञानी या कवि इत्यादि) के शरीर और चित्त के बाजे या यंत्र को अपने हाथ में लेता है, और उससे महान अलाप, मधुर ध्वनियां और अनुपम सच्चे स्वर निकलता है। लोग कहते हैं, "ओह! वह आवेश (inspiration) में है!" यद्यपि उसमें कोई "वह" या "मैं" नहीं है, उसकी दृष्टि से उसमें कर्म करने या भोग करने के लेश का भी पता नहीं है। व्यावहारिक जीवन में यही वेदान्त की प्राप्ति

या अनुभव है। इस प्रकार वेदान्त के व्यवहार से, चाहे वह अनजान भी हो, सफलता मात्र प्राप्त होती है।

वेदान्तिक योग की प्राप्ति के लिये आप को जंगलों में जाने और असाधारण कार्यों का अभ्यास करने की कोई ज़रूरत नहीं है। जब तुम कर्म में डूबे हुए हो, या जब काम में तुम लीन हो, तब तुम योग के जनक हो, अथवा स्वयं शिव हो। वेदान्त के अनुसार शरीर तुम्हारा आत्मा नहीं है, और क्या आप यह नहीं देखते कि केवल तभी आप उच्च गौरव प्राप्त करते और अत्युत्तम काम दिखाते हैं, जब अमली रूप से इस सत्य का आप आचरण करते हैं, तथा अतीव प्रयत्न के प्रभाव से शरीर और मन का आपके लिये अभाव हो जाता है।

दीपक या प्रकाश से समझाया जायगा कि काम क्या वस्तु है। एक गैस या तेल का दीपक ले लीजिये। वाह! रोशनी कैसी उज्ज्वल, चमकदार, प्रभापूर्ण, उत्तम और भड़कीली है। दीपक को गौरव और प्रभा काहे से मिलती है? निरन्तर कार्य के द्वारा अहंगता का अन्त करने से। दीपक अपनी बत्ती और तेल को बचाने की चेष्टा करते ही अन्धकारमय, असफलता का पुंज और सफलता से सर्वथा शून्य हो जायगा। सफलता पाने के लिये दीपक को अवश्य जलना चाहिये, उसे अपनी बत्ती और तेल नहीं बचाना चाहिये। वेदान्त की यही शिक्षा है। यदि आप सफलता चाहते हैं, यदि आप समृद्धि चाहते हैं, तो तुम्हें अपने कामों के द्वारा, अपनी ही दैनिक जीवन-चर्या से अपने ही शरीर और नाड़ियों की आहुति देनी होगी; उपयोग की अग्नि में उनको जलाना होगा। आप को उन्हें काम में अवश्य लाना होगा। आप को अपने शरीर और चित्त का दाह करना होगा, उन्हें बलती हुई दशा में रखना पड़ेगा। अपने

शरीर और चित्त को सूली पर चढ़ाओ, काम करो, और तब तुम से प्रकाश फैलेगा। सभी काम अपनी बत्ती तथा तेल को जलाने के सिवाय और कुछ नहीं है। दूसरे शब्दों में सभी काम अपने शरीर और चित्त को मिथ्या बनाने अथवा अपनी ही चेतना या बोध की दृष्टि से उन्हें व्यवहार में शून्य या व्यर्थ कर देने के सिवाय और कुछ नहीं है। उन (शरीर आदि) से ऊपर उठो और इसी का नाम काम है।

समस्त असली काम तभी पूर्ण होता है जब हम शरीर आदि से ऊपर उठते हैं। भारत के सम्राट् अकबर के दरबार में एक बार दो वीर हिन्दू भाई पहुँचे। उन्होंने बादशाह से नौकरी पाने की प्रार्थना की। सम्राट् ने उनसे उनकी योग्यता पूछी। उन्होंने कहा हम शूर-वीर हैं। बादशाह ने उनसे शूर-वीरता का प्रमाण देने को कहा। अकबर के दरबार में वे आमने सामने खड़े हो गये। उनके तीखी नोकवाले, लपलपाते हुए खांड़े चमक गये। दोनों ने अपने अपने खंजरों की तीक्ष्ण नोक अपने भाई की छाती में अड़ाई। मुस्कुराते हुए वा प्रसन्न-चित्त से वे एक दूसरे की ओर बढ़े। उनके हाथ दृढ़ थे, खंजर शरीरों में घुसते जाते थे, किन्तु शान्तिपूर्वक और बिना सहमे वे दोनों एक दूसरे के पास पहुँच गये। उनमें न हिचक थी, न कोई घबराहट वा डर था। उनके शरीर रक्त बहाते हुए ज़मीन पर गिरे और मिले, और उनकी आत्माएं वैकुण्ठ में मिलीं। उनकी वीरता का बड़ा ही विलक्षण प्रमाण बादशाह को मिल गया। यह इस बात का उदाहरण है कि सच्चा कार्य तभी पूरा होता है जब अपने आप को निरूपण करनेवाला कार्यकर्त्ता अपना बलिदान कर देता है। डंक मारते समय भिड़ों को अपने प्राणों की प्रतिष्ठा डंक में ही कर लेनी पड़ती है। प्लेटो (Plato) कहता

है, "The man who is his own master knocks in vain at the doors of poetry". "जो मनुष्य अपने आप ही का स्वामी है, उसका काव्य के द्वार पर खटखटाना व्यर्थ है।" अर्थात् कविता उससे स्वतः बहती रहती है और उसे कविता के लिए कोई परिश्रम की ज़रूरत नहीं।

इस प्रकार वेदांत को जीवनचर्या में चरितार्थ करने से समस्त वैभव और सफलता की प्राप्ति होती है। सांसारिक मनुष्य के लिये निरन्तर कार्य अर्थात् निरन्तर परिश्रम ही सब से बड़ा योग है। जब आप अपने लिये या अपनी भीतरी दृष्टि से कुछ भी काम नहीं करते, तो संसार के लिये आप बहुत बड़े कामकाजी होते हैं।

पुनः, किस दशा और वृत्ति में सफल काम हमारे लिये स्वाभाविक होजाता है? "काम करो" यह कहना तो बड़ा सहल है; परन्तु काम करना बड़ा कठिन है। हर एक सब से बड़ा चित्रकार बनना चाहता है; हर एक सब से बड़ा गवैया बनना चाहता है; पर हर एक जो कुछ चाहता है, वही नहीं बन जाता। अकर्मण्यता की प्रवृत्ति आप में क्यों कर होती है? परिश्रम में आप को मज़ा क्यों मिलता है? क्या आपको यह अनुभव नहीं हुआ है कि प्रायः काम करने की इच्छा होने पर भी आप काम नहीं कर सके? क्या आपके ध्यान में यह नहीं आया है कि किसी वक्त आपकी काम करने में अरुचि होने पर भी आप से उच्चतर काम होगया? क्या आपने यह नहीं देखा है कि कोई एक उच्चतर सत्ता है जो आपकी कार्य-योग्यता का शासन करती है? कितनी वार ऐसा नहीं होता कि मनुष्य सवेरे जाग कर अपने को एक अद्भुत अकथनीय अवस्था में प्रकृति के पूर्ण अनुकूल पाता है? ऐसी अवस्था में वह अपनी लेखनी उठाता है और उसकी लेखनी से अत्युत्तम काव्य या

तत्त्वज्ञान की धारा वह चलती है। एक चित्रकार सुन्दर चित्र खींचने की चेष्टा करता है, परन्तु लाख प्रयत्न करने पर भी उससे नहीं बन पड़ता। किसी दिन प्रातःकाल जागने पर वह अपने को मानों आवेश में पाता है, और तब बड़े ही कौशलपूर्ण चित्र खींचता है। यह बात है कि नहीं?

इस प्रकार हमें पता चलता है कि आप में कोई एक ऐसी उच्चतर वस्तु है जो आपकी समस्त कार्य-कारिणी शक्तियों को अत्यन्त उपयोगी बनाती है। यदि आप उस उच्चतर मनो-वृत्ति से लाभ उठावें, तो आप सदा अपने को अपनी उत्कृष्ट दशा में रख सकते हैं, और आपके हाथ से निकला हुआ काम सर्वांगपूर्ण और सुन्दर होगा। उस उच्चतर मनोवृत्ति या उस उच्चतर रहस्य को वेदान्त आपके सामने रखता है। अखिल विश्व से पूर्ण ऐक्य स्थापित करने, परमेश्वर के साथ एक स्वर होने, अपने भीतर शुद्धात्मा वा ईश्वर में अमली तौर से जीवन व्यतीत करने, और क्षुद्र अहंगता या स्वार्थपूर्ण आकाँक्षाओं के ऊपर उठने के सिवाय यह (उच्चतर मनोवृत्ति या उच्चतर रहस्य) और कुछ नहीं है। इस तरह अपने अन्तर्गत सम्पूर्ण शक्ति या प्रकाश के रहस्य से लाभ उठा कर आप कार्य को विचित्र बना सकते हैं।

कोई कलाकुशल या चित्रकार सड़क पर जाता है, और वहाँ अनेक चेहरे देखता है। एक व्यक्ति के नेत्र उसको लुभा लेते हैं, वे नेत्र उसके मन में अज्ञात भाव से सञ्चय हो जाते हैं। वह दूसरे मनुष्य को मिलता है और उसकी चिबुक (ठोड़ी) उसे मनोहर जँचती है। वह इस ठोड़ी को अपने चित्त में जमा लेता है। नेत्र एक मनुष्य से लिये गये और ठोड़ी दूसरे व्यक्ति की हरी गई। तीसरा आदमी उसकी दुकान पर तसवीर खरी-

दने आता है। चित्र उसके हाथ बेच दिया गया, ग्राहक चित्र लेकर चला गया, किन्तु वह यह नहीं जानता कि वह अपने केश शिल्पी के चित्त में पीछे छोड़ आया है। इसके बाद एक और आदमी आता है जो चित्रकार से कुछ काम कराना चाहता है। चित्रकार उसका वह काम करता है, और उसके अद्भुत (मार्के के) कान झपट लेता है। और इस तरह सूक्ष्म रूप से चित्रकार का चित्त काम में लगा हुआ है। विभिन्न पुरुषों के नेत्र, ठोड़ी, नाक आदि अपने काम में लाते समय चित्रकार को यह विचार नहीं रहता कि वह इन अङ्गों को ले रहा है, किन्तु सूक्ष्म रूप से बिना जाने यह काम होता रहता है। कुछ दिनों बाद चित्रकार अपनी कलाशाला में (चित्र खींचने के लिये) पट-लेकर बैठता है। वह एक अद्भुत चित्र खींचने की चेष्टा करता है। परिणाम में एक मनुष्य के मृग-लोचन, दूसरे की सुन्दर नासिका, तीसरे के मनोहर केशों का एक ही चित्र में सम्मेलन हो जाता है, और चित्रकार एक अत्यन्त रमणीय वस्तु तैयार कर देता है, ऐसा चित्र प्रस्तुत कर देता है कि जो अपने सब मूल उदाहरणों से बढ़ कर है। चित्र-कला का यह सुन्दर काम कैसे हुआ था? क्या यह कार्य व्यक्ति विशेष का (personal) किया हुआ था? नहीं, यह कार्य भावात्मक (impersonal) था। "मैं कर रहा हूं" की चित्त-वृत्ति से परे, स्वार्थपरता के दूषण और अहंकार वा अहं-भाव से मुक्त दशा में निरन्तर रहने से यह सब कार्य संपन्न हुआ था। द्वेष या लालसा (cupudity) से, जिसे प्रायः भ्रांति-वश प्रेम कहा जाता है, चित्रकार के कलुषित होते ही उसके चित्त की घड़ी खिच जाती है, काम करने के क्रम से फिर वह रहित हो जाती है; वह अव्यवस्थित हो जाता है, या अस्तव्यस्त हो जाता है। उसकी मनोवृत्ति की भावात्मकता जाती रहती है, वह

स्वार्थपरता से आकर्षित हो जाता है; प्रशान्त अवस्था लुप्त हो जाती है ; सर्व से हमारा संसर्ग बनाये रखने वाली वेदांतिक भावना का स्थान यह परिच्छिन्न करने वाला प्रेम या घृणा ले लेती है, और चित्रकार का मन अब इस या उस मनुष्य की आकृति का सार ले लेने का सूक्ष्म या भावात्मक कार्य नहीं कर सकता। इस प्रकार असली वेदान्त चल देता है और साथ ही उसके कौशल के अनुपम कार्य करने की परम शक्ति भी चल बसती है।

इस प्रकार आप देखते हैं कि आप का कार्य जितना ही अधिक भावात्मक होता है और "मैं कर रहा हूं" से जितना ही अधिक आप ऊपर उठते हैं, स्वामित्व अथवा सर्वाधिकार स्वरक्षित रखने की भावना को जितना ही अधिक आप त्यागते हैं, और सञ्चय करने व कृपापात्र बनने की वृत्ति को जितना ही पीछे छोड़ देते हैं, अपने अवास्तविक (मिथ्या) वा देखने मात्र अहङ्कार का जितना ही अधिक आप त्याग करते हैं, आप का काम उतना ही अधिक अच्छा होता है। वेदान्त चाहता है कि संङ्ग या फल प्राप्ति की इच्छा को त्याग कर आप काम ही के लिये काम करें। कार्य को सफल बनाना हो तो आप परिणाम का विचार त्याग दें, फल या परिणाम की चिंता न करें। साधन और फल को एक साथ कर दें, कार्य ही को परिणाम समझें। वेदान्त चाहता है कि आप की आन्तरिक आत्मा स्वयं निश्चिन्त रहे। अन्तरात्मा तो शांत रहे और शरीर लगातार काम करता रहे। अर्थात् गति-विद्या के नियमों का पालन करता हुआ शरीर काम में लगा रहे; और अन्तरात्मा सदैव सब अवस्थाओं में (स्थित्यात्मक) शान्त रहे। हमारी स्वार्थमय बेचैनी ही हमारे सब काम को बिगाड़ देती है। कार्य से संयुक्त शान्ति या निर्वाण के लिये काम करो।

सफलता का दूसरा सिद्धान्तः—स्वार्थ रहित बलिदान अर्थात् आत्म-त्याग

एक सरोवर (तालाव) और एक सरिता (नदी) में झगड़ा हुआ। तालाव ने नदी से यह कहा "ऐ नदी! तू बड़ी मूर्ख है कि अपना सब जल और सम्पूर्ण वैभव समुद्र को दे देती है, समुद्र पर अपना जल और ऐश्वर्य मत लुटा। महोदधि को इसकी ज़रूरत नहीं, वह अकृतज्ञ है। तू अपनी सकल सञ्चित निधियाँ उसमें भले ही भरती जाय, परन्तु वह उतना ही नमकीन वा उतना ही खारा बना रहेगा, जितना आज है; उसका खारी पानी न बदलेगा। 'Do not throw pearls before swine.' अर्थात् 'सुअर के सामने मोती मत फेंक।' अपनी सब निधियाँ अपने ही पास रख।"

यह लौकिक बुद्धिमता थी। अन्त पर विचार करने, फल की चिन्ता करने और परिणाम पर ध्यान देने को नदी से कहा गया था। किन्तु नदी वेदान्तिनी थी। सांसारिक बुद्धिमता की यह बात सुन कर नदी ने उत्तर दिया, "जी नहीं, परिणाम और फल मेरे लिये कुछ नहीं हैं, सफलता और असफलता मेरे लिये तुच्छ हैं, मैं काम करूँगी क्योंकि मुझे काम प्यारा है, काम के लिये ही मैं काम करूँगी। काम ही मेरा ध्येय है, कर्मशीलता ही मेरा जीवन है। उद्योग ही मेरा प्राण व मेरी वास्तविक आत्मा है। मुझे काम करना ही होगा"। नदी काम करती रही, समुद्र में लाखों घड़ों पर घड़े जल डालती रही। कंजूस व कम ख़र्च तालाव तीन चार महीने में सूख गया। वह दुर्गन्धयुक्त, निश्चेष्ट, सड़े हुए कूड़े से भरपूर हो गया; किन्तु नदी ताज़ी और विशुद्ध बनी रही, उसके अमर सोते नहीं

सूखे। नदी के मूलस्रोतों को परिपूर्ण करने के लिये चुपचाप और धीरे धीरे समुद्र-तल से जल लिया गया। मौसमी हवायें और व्यापारी हवायें (monsoons and trade winds) धीरे धीरे तथा चुपचाप समुद्र से जल को लेकर नदी के मूल को सदा ताज़ा रखती रहीं।

ठीक इसी तरह वेदान्त चाहता है कि आप सरोवर की सत्यानासी नीति (sophistic policy) को न बर्ते। क्षुद्र, व स्वार्थान्ध सरोवर ही परिणाम की चिन्ता करता है, और सोचता है कि "मेरा और मेरे काम का क्या परिणाम होगा"। काम के लिये तुम काम करो, तुम्हें काम करना ही चाहिये। काम ही में तुम्हारा लक्ष्य होना चाहिये। और इस तरह वेदान्त तुम्हें व्याकुलता और सन्ताप देने वाली कामनाओं से मुक्त कर देता है। इच्छाओं से स्वाधीनता का, जिसका वेदान्त प्रचार करता है, यही अर्थ है।

परिणामों के लिये व्याकुल न हो, लोगों से कोई आशा न रक्खो, अपने काम की कटु या अनुकूल आलोचना के लिये हैरान न हो। जो कुछ तुम कर रहे हो वह अंगीकृत होगा या नहीं, इस की चिन्ता न करो; इसका बिलकुल विचार ही न करो। काम को काम ही के लिये करो। इस प्रकार तुम्हें अपने को कामना से मुक्त करना होगा। तुम्हें काम से मुक्त होना नहीं है, तुम्हें मुक्त होना है उत्सुकता की बेचैनी से। इस तरह तुम्हारा काम कितना महान् हो जाता है। सब प्रकार की व्याकुल करने वाली वासनाओं और प्रलोभनों का सब से अच्छा और प्रभावशाली इलाज काम है। किंतु यह तो केवल निषेधात्मक (दोष हटाने वाला) उपदेश हुआ। सच्चे कार्य के साथ जो साक्षात् सुख जुड़ा हुआ है, वह है मुक्ति का

अथवा वेजाने आत्म-अनुभव का एक कण। वह तुम्हें विशुद्ध, निष्कलंक, और परमेश्वर से अभिन्न रखता है। यह आनन्द कार्य का सर्वोच्च और असल इनाम है। हृदय की स्वार्थमय लालसाओं को पूरा करने के अभिप्राय से काम करके इस स्वास्थ्य-जनक स्वर्गीय निधि को भ्रष्ट न करो। मलिन आकांक्षाएँ और तुच्छ उत्सुकताएँ हमारी उन्नति को आगे बढ़ाने के बदले पीछे हटा देती हैं। वाह्य और स्थूल (घनीभूत) प्रलोभन हमारी परिश्रम करने की शक्ति के लिये सहायक होने के बदले हानिकारक होते हैं। जी जान से किये जाने वाले काम के साथ जो तात्कालिक आनन्द लगा हुआ है, उससे बढ़ कर सुखदायक और स्वास्थ्यकर कोई पुरस्कार या प्रशंसा नहीं हो सकती। तो फिर काम में जो वैराग्य, धर्म, या उपासना निहित है, उसे प्राप्त करने के लिये काम करो, न कि बच्चों के खिलौनों के लिये, कि जो फलरूप में मिलने को हैं। किसी तरह की ज़िम्मेदारी न समझो; कोई इनाम न माँगो। "अभी यहाँ"(now here) तुम्हारा लक्ष्य होना चाहिये। लोग कहते हैं, "first deserve and then desire" अर्थात् पहले योग्य बनो, तब इच्छा करो। वेदान्त कहता है, "deserve only and need not desire" अर्थात् केवल योग्य बनो, इच्छा करने की कोई ज़रूरत नहीं। "A stone that is fit for the wall, will never be found in the way" अर्थात् "जो पत्थर दीवार के क़ाबिल है, वह सड़क पर कभी न मिलेगा"। यदि तुम में पात्रता है तो एक अनिवार्य दैवी नियम से सब चीज़ तुम्हारे पास आ जायगी। यदि कोई दीपक जल रहा है, तो वह जलता पड़ा रहे, पतङ्गों को बुला भेजने की उसे कोई ज़रूरत नहीं, पतङ्गे अपनी इच्छा से ही दीपक को आ घेरेंगे। जहाँ कहीं ताज़ा चश्मा है, लोग स्वयं

वहाँ पहुँच जाँयगे; चश्मे को लोगों की दमड़ी भर भी परवाह करने की ज़रूरत नहीं। जब चन्द्रोदय होगा, तो लोग आप ही चाँदनी का आनन्द लूटने के लिये निकल आवेंगे। चढ़े चलो! चढ़े चलो! चोट लगाओ! चोट लगाओ! शरीर की असारता और सच्चे आत्मा की परम वास्तविकता का अनुभव करने के लिये काम करो, काम करो। इस तरह वाह्य कर्मशीलता की चोटी पर तुम्हें निर्वाण और कैवल्य का स्वाद मिलेगा। और इस प्रकार जब अपने व्यक्तित्व तथा अहंभाव को श्रम की सूली पर तुम चढ़ा चुकोगे, तब सफलता तुम्हें ढूँढ़ेगी, और आकर प्रशंसा करने वाले लोगों की कमी न होगी। ईसा जब तक जीते थे लोगों ने उन्हें नहीं माना, पूजे जाने के पहले सूली पर चढ़ना उनका ज़रूरी था, "Truth crushed to earth shall rise again",—"धूल में मिलाया हुआ सत्य फ़िर उठेगा।" अपने रंग रूप को बिना बिगाड़े कोई बीज उगने और वृद्धि करने में समर्थ नहीं हो सकता। इस तरह पर सफ़लता के लिये दूसरी आवश्यकता है बलिदान की, क्षुद्र आत्मा को सूली पर चढ़ाने की, अर्थात् त्याग की। "त्याग" शब्द का अनर्थ न करना। "त्याग" का अर्थ फ़क़ीरी नहीं है।

हरएक आदमी सफ़ेद, ज्योतिर्मान्, चमकदार वा चटकीला होना चाहता है। आप क्यों कर गौरवशाली हो सकते हैं? पदार्थ सफ़ेद क्यों हैं? सफ़ेद पदार्थों की ओर देखिये। उनमें इतनी सफ़ेदी कहाँ से आई? विज्ञान आपको बतलाता है कि सफ़ेदी का रहस्य आत्म-त्याग है, और कुछ नहीं। सूर्य-किरणों के सातों रंग विविध पदार्थों से टकराते या उनपर गिरते हैं। कुछ पदार्थ तो इनमें से अधिकांश को अपने में लीन कर लेते और रख लेते हैं, और केवल एक को फ़िर बाहर निकालते हैं।

ऐसे पदार्थ सिर्फ एक उसी रंग के कहे जाते हैं जिसे वे लौटाते या नहीं ग्रहण करते हैं। तुम उस वस्त्र को गुलाबी रंग का कहते हो, परन्तु यही गुलाबी रंग उस वस्त्र का नहीं है। जो रंग उसने अपना लिये हैं और वास्तव में उसमें हैं, उन रंगों का तुम उसे (वस्त्र को) नहीं कहते। कैसी विचित्र बात है। काले पदार्थ सूर्य-किरणों के सब रंग पचा जाते हैं। वे कोई रंग बाहर नहीं निकालते, वे कुछ नहीं त्यागते, वे कुछ नहीं लौटाते ; इसी से वे काले हैं अर्थात् अंधकारमय हैं। सफ़ेद पदार्थ अपने में कुछ नहीं खपाते, किसी चीज़ को नहीं अपना बनाते, वे सर्वस्व त्याग करते हैं। वे स्वार्थपूर्ण अधिकार रखना नहीं चाहते। स्वामित्व की भावना उनमें नहीं है ; और इसी से वे श्वेत हैं, उज्ज्वल हैं, चमकीले हैं और प्रभापूर्ण हैं।

इसी तरह यदि आप गौरवान्वित और समृद्धिशाली होना चाहते हैं, तो आपको अपने अन्तःकरण को स्वार्थपूर्ण और स्वामित्व की भावना से ऊपर उठाना पड़ेगा। आप को उसके ऊपर उठना चाहिये। हमेशा दाता बनो, स्वतंत्र कार्यकर्ता बनो। अपने दिल को मँगतापन और आशा की दशा में कभी न रक्खो। एकाधिकार करने की आदत से छूटो। आप के फेफड़ों में जो हवा है उस पर एक मात्र आप का ही दावा क्यों हो? वह हवा हरएक व्यक्ति की सम्पत्ति है। इसके विपरीत, अपने फेफड़ों की वायु की अल्प मात्रा का उपयोग करना जब आप छोड़ देते हैं, तब आप समस्त वायुमण्डल का अधिकारी अपने को पाते हैं, आपके साधन असीम हो जाते हैं। विश्व की प्राणप्रद वायु (oxygen) को पान करो। अभिमानी मत बनो, दर्प न करो। कभी मत समझो कि कोई वस्तु आप के परिच्छिन्न आत्मा की है। यह ईश्वर की वा आप के वास्तविक आत्मा की है।

सर आइज़क न्यूटन (Sir Isaac Newton) का उदाहरण लीजिये। संसार की दृष्टि में इतना प्रभाववान, उज्ज्वल, गौरवशाली वह क्योंकर हुआ ? जिस भावना से उसने अपने जीवन में काम किया था वह उसके मरने के समय मालूम हुई थी। संसार का सर्वश्रेष्ठ पुरुष होने की बधाई पाने या प्रशंसित होने पर उसने कहा, "Oh, no : this intellect or this small personality of mine is simply like a little child gathering pebbles on the vast, immense sea-shore of knowledge."–"नहीं जी, यह बुद्धि अथवा मेरा यह क्षुद्र व्यक्तित्व ज्ञान के विराट वा विशाल समुद्र के तट पर पत्थर बटोरने वाले छोटे बच्चे के तुल्य है"। वह अब भी बालू पर पड़ा हुआ पत्थर बटोर रहा था। इस प्रकार हमें उस विनीत भावना के दर्शन होते हैं कि जो किसी वस्तु पर भी अपना अधिकार नहीं जमाती, जो कोई चीज़ भी अपनी नहीं बनाती, जो परिच्छिन्न आत्मा वा अहंकार को नहीं बढ़ाती, जो उसी भावना से कार्य करती है जिस भावना से आपकी सामर्थ्य और आप की कार्यकारिणी शक्तियां परमोत्कर्ष को प्राप्त होती हैं। और यही स्वरूप वेदान्त की भावना का है।

तुम अभिलाषाओं को रखते हो, सब प्रकार की कामनाएँ तुम में हैं, और तुम चाहते हो कि तुम्हारी इच्छाएँ पूरी हों। किन्तु इच्छाओं की पूर्त्ति की कुंजी जानो। खिड़की के परदे को हम कैसे चढ़ाते हैं ? खिड़की के परदे को जब हम चढ़ाना चाहते हैं तब उसे नीचे की ओर एक झिटक देकर छोड़ देते हैं, और खिड़की का परदा चढ़ जाता है। तुम्हारी समस्त कामनाओं की पूर्त्ति के रहस्य का यह दृष्टान्त है। जब भी तुम इच्छा को छोड़ देते हो, तभी वह फलीभूत होती है। तीर

कैसे छोड़े जाते हैं? हम धनुष को लेकर झुकाते हैं। जब तक हम धनुष की ताँत को खींचते रहते हैं, तब तक बाण शत्रु तक नहीं पहुँचता। ताँत को तुम चाहे जितना तानो, बाण तुम्हारे ही पास रहेगा। जब तुम ताँत छोड़ देते हो, तभी तीर तुम्हारे शत्रु की छाती छेदने के लिये सनसनाता हुआ छूट जाता है। इसी तरह से जब तक तुम अपनी कामना को ताने रहोगे, अथवा इच्छा, अभिलाषा या कामना करते रहोगे, तथा उत्सुक रहोगे, तब तक वह दूसरे पक्ष के अन्तःकरण तक न पहुँचेगी। जब तुम उसे छोड़ देते हो, तभी वह इच्छित वस्तु की आत्मा में प्रवेश करती है। "It is only when you leave me and lose me that you find me by your side." "जब तुम मुझे छोड़ देते और खो देते हो, केवल तभी तुम मुझे अपने पास पाते हो"। जब तुम अपने को उस विचित्र अकथनीय भाव में ढालते हो, जो हम तुम दोनों से उच्चतर है, केवल तभी तुम मुझे पाते हो। वेदान्त यही आपको बताता है।

दो साधु एक साथ यात्रा कर रहे थे। उनमें से एक ने व्यवहारतः धन सञ्चय की वृत्ति या भावना को क़ायम रक्खा। दूसरा वैरागी था। नदी-तट पर पहुँचने तक वे ग्रहण और त्याग के विषय पर तर्क-वितर्क करते रहे। कुछ रात बीत चुकी थी। त्याग का उपदेश देनेवाले मनुष्य के पास कौड़ी-पैसा न था, दूसरे के पास था। त्यागी पुरुष ने कहा, "शरीर की हमें क्या चिंता है, मल्लाह को देने को हमारे पास पैसा नहीं है, ईश्वर का नाम भजते हुए इसी तट पर हम रात काट देंगे"। रुपये वाले साधु ने उत्तर दिया, "यदि हम नदी के इसी पार रहे तो कोई गाँव, खेरा, झोपड़ी व साथी हमें न नसीब होंगे; और भेड़िये हमें खा जायँगे, सांप डस लेंगे, सर्दी ठिठुरा

देगी। हमें उस पार उतर चलना चाहिये। केवट को उतराई देने के लिये मेरे पास पैसा है। उस पार एक गाँव है, वहाँ हम आराम से रहेंगे"। नाववाला नाव लाया और दोनों को उसने उस पार उतार दिया। जिस मनुष्य ने उतराई दी थी वह रात को त्यागी मनुष्य से कुछ ताव से बोला :—"पैसा रखने का फायदा तुम्हें समझ पड़ा या नहीं ? मेरे पास पैसा होने से दो जानें बच गईं। आज से तुम कभी त्याग का उपदेश न देना। तुम्हारी तरह मैं भी त्यागी होता तो हम दोनों भूखें मर जाते या ठिठुर जाते और नदी के उस तट पर मर जाते"। त्यागी मनुष्य ने उत्तर दिया, "यदि तुमने रुपया अपने पास ही रक्खा होता, यदि तुम उससे किनारा न कसते, यदि तुमने उसे केवट को न दे दिया होता, तो हम उस किनारे पर मर जाते। इस प्रकार रुपये के त्याग या दान से ही हमारी रक्षा हुई"। "इस के सिवाय," त्यागी पुरुष ने फिर कहा, "जब मैंने अपनी जेब में बिलकुल रुपया नहीं रक्खा था तभी तुम्हारी जेब मेरी जेब हो गई। मेरे विश्वास की बदलौत उस (तुम्हारी) टेंट में रुपया था। मुझे कभी क्लेश नहीं होता। जब कभी मुझे आवश्यकता होती है, वह पूरी हो जाती है"। इस कहानी से सूचित होता है कि जब तक तुम अपनी इच्छाओं को अपनी जेब में रखते हो, तब तक तुम्हारे लिये चैन या रक्षा नहीं है। अपनी इच्छाओं को त्यागो, उनसे ऊपर उठो, और तुम्हें दोहरी शान्ति, तुरन्त चैन, और अन्त में इच्छाओं की पूर्ति प्राप्त होती है। याद रक्खो कि तुम्हारी कामनाएँ तभी पूरी होंगी, जब तुम उनसे ऊपर उठकर परम तत्त्व में पहुँचोगे। जान कर या अन-जाने जब तुम अपने को परमेश्वर में लीन कर दोगे, तभी और केवल तभी तुम्हारी अभिलाषाओं की पूर्त्ति का उपयुक्त समय होगा।

सफलता का तीसरा सिद्धांतः—प्रेम ।

सफलता का तीसरा सिद्धान्त है प्रेम, विश्व से एकता, परिस्थिति के अनुकूल आचरण। प्रेम का क्या अर्थ है? प्रेम का अर्थ है अपने पड़ोसियों और सभी संसर्ग में आनेवालों से असली तौर पर अपनी एकता और अभेदता का अनुभव करना। यदि आप दुकानदार हैं, तो जब तक आप अपने ग्राहकों के लाभ और अपने लाभ को एक न समझेंगे, तब तक आप कोई उन्नति न कर सकेंगे; आप के काम को हानि पहुँचती रहेगी। यदि हाथ अपने व्यक्ति गत स्वार्थ के कारण शरीर के अन्य अंगों से अपनी अभेदता प्रतिपादन करने में इस प्रकार तर्क करे:—"देखो, मैं दहना हाथ सब तरह का परिश्रम करता हूं, मेरी पसीना बहाने वाली कठिन कमाई में सारा शरीर क्यों भाग ले? क्या मेरे श्रम से कमाया हुआ भोजन पेट को और वहाँ से अन्य सब अवयवों को मिलना चाहिये? नहीं नहीं। मैं सब कुछ अपने ही लिये रक्खूँगा"। इस स्वार्थ पूर्ण कल्पना को चरितार्थ करने के निमित्त हाथ के लिये इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं कि भोजन को लेकर पिचकारी अथवा नश्तर द्वारा अपने चमड़े में प्रविष्ट कर ले। क्या यह विधि हाथ के लिये लाभदायक होगी? क्या इस रीति से हाथ को सफलता होगी? असम्भव! कदापि नहीं। हाँ, एक तरह से हाथ खूब मोटा हो सकता है, अकेला ही इतना सम्पत्तिवान हो सकता है कि शरीर के अन्य सब अंग उससे स्पर्धा करें। बरैंया, मधुमाखी, या साँप को पकड़ कर हाथ अपने को कटवा सकता है। इस तरह हाथ बड़ा मोटा अथवा खूब भारी हो जायगा। हाथ

की स्वार्थपरता पूरी होने का केवल यही एक उपाय है, इसी रीति से हाथ का स्वार्थमय शास्त्र चरितार्थ किया जा सकता है। किन्तु कितना अवाँच्छनीय वह (उपाय) है। इस तरह की तृप्ति या इस तरह की सफलता हम नहीं चाहते हैं। यह तो रोग है।

इसी तरह, याद रक्खो कि सम्पूर्ण जगत एक शरीर है। तुम्हारा शरीर हाथ की तरह एक अवयव है, केवल उँगली या नख के तुल्य है। यदि तुम सफल होना चाहते हो, तो तुम्हें अपने आत्मा को अखिल विश्व के आत्मा से भिन्न और पृथक न समझना चाहिये। हाथ के फलने-फूलने के लिये यह आवश्यक है कि वह समग्र शरीर के हितों से अपने हितों की अभेदता का अनुभव करे। दूसरे शब्दों में, हाथ को यह समझना और अनुभव करना होगा कि उसका आत्मा केवल कलाई तक की सीमा से परिच्छिन्न नहीं है, प्रत्युत उसे व्यवहारिक रूप से समग्र शरीर के आत्मा से अपने को एक और अभिन्न समझना पड़ेगा। समग्र शरीर के आत्मा को खिलाना हाथ के आत्मा को खिलाना है। जब तक तुम इस तथ्य का अनुभव और इस सत्य का आचरण न करोगे 'कि तुम और विश्व एक हो' 'कि मैं और ईश्वर एक हूं,' तब तक तुम्हें सफलता नहीं हो सकती। वियोग और भेदता के कीचड़ में जब तुम फँसते हो, तब तुम सुख विहीन और पीड़ा में लीन रहते हो। तुम अपने आप को समग्र और सर्व अनुभव करते ही वास्तव में पूर्ण और सर्व हो जाते हो। इस एकता का बोध होने से तुम वेदान्त का आचरण करते हो। इसी दिव्य और सर्व श्रेष्ठ सत्य का उल्लंघन करते ही अथवा व्यवहार में इस पवित्र नियम को तोड़ते ही मूर्ख व स्वार्थी हाथ की तरह

तुम्हें अपने धर्मोल्लंघन के लिये अवश्य क्लेश भोगना पड़ेगा। "एनशेण्ट मेरीनर" (Ancient Mariner) नामक अपनी पुस्तक में कोलरिज (Coleridge) ने बड़ी सुन्दरता से इस सत्य को प्रकट किया है। "प्रिज़नर आफ़ चिल्लन" (Prisoner of Chillon) नामक पुस्तक में बाइरन (Byron) ने भी ऐसाही किया है। इन पद्यों में यह सिद्ध किया गया है कि जब कभी कोई मनुष्य प्रकृति से बेमेल होजाता है, तब उसे क्लेश होता है। उसी क्षण सम्पूर्ण समृद्धि तुम्हारी होती है, जिस क्षण प्राणिमात्र से तुम अपनी एकता अनुभव करते हो।

> " He prayeth best who loveth best,
> Both man, and bird, and beast.
> He prayeth well who loveth well,
> All things both great and small."

"वही सर्वोत्तम प्रार्थना करता है, जो मनुष्य और पक्षी-पशु दोनों को सब से बढ़कर प्रेम करता है।

वह खूब प्रार्थना करता है जो सब चीज़ों अर्थात् बड़ी और छोटी दोनों को खूब प्यार करता है"।

एक महाराजा एक वन में शिकार खेलने गया। आखेट (शिकार) की उत्तेजना में राजा अपने साथियों से बिछुड़ गया। भयङ्कर सूर्य-ताप के कारण उसे बड़ी प्यास लगी। वन में उसे एक छोटा बगीचा दिखाई पड़ा। वह बाग़ में गया। परन्तु शिकारी पोशाक में होने के कारण माली उसे न पहचान सका। बेचारे गँवई के माली ने सम्राट के दर्शन कभी नहीं किये थे। राजा बड़ा प्यासा था, उसने माली से कुछ पीने को लाने के लिये कहा। माली तुरन्त बगीचे में गया, कुछ अनार लिये, उसका रस निचोड़ा और एक बड़ा कटोरा भर

कर महाराज के पास लाया। महाराजा एक ही बार में सब गटक गया, परन्तु उसकी कण्ठ सुखानेवाली प्यास पूरी नहीं बुझी। महाराजा ने उससे और अनार का रस लाने को कहा। माली लेने गया। माली के चले जाने पर राजा अपने मन में सोचने लगा, "यह बाग़ खूब फला-फूला जान पड़ता है। बात की बात में आदमी ताज़े अनार-रस से भरा हुआ बड़ा कटोरा ले आया। ऐसे समृद्धिशाली सम्पत्ति के मालिक पर भारी आय-कर लगना चाहिये" इत्यादि इत्यादि। दूसरी ओर माली को देर होती गई, वह घण्टे भर में भी महाराजा के पास न लौटा। बादशाह को आश्चर्य होने लगा, "यह क्या बात है कि पहली बार जब मैंने उससे कुछ पीने को माँगा था, तब तो वह एक मिनट से कम में ही अनार का रस ले आया, और इस बार लगभग एक घण्टे से वह अनारों का रस निचोड़ रहा है, किन्तु अभी तक कटोरा नहीं भरा। यह क्या मामला है?" एक घण्टे के बाद कटोरा महाराजा के पास लाया गया, परन्तु लबालब नहीं भरा था। बादशाह ने पूछा कि कटोरा कुछ खाली क्यों है, जब कि पहली बार इतनी जल्दी कटोरा भर गया था? माली महात्मा था। उसने उत्तर दिया:— "जब मैं अनार-रस का पहला कटोरा आपके लिये लाने गया था, तब हमारे भूपति के बड़े साधु विचार थे, और जब मैं आपके लिये दूसरा कटोरा लाने गया, तब हमारे महाराजा का कृपालु तथा उदार स्वभाव अवश्य बदल गया होगा। अपने अनारों के रसीलेपन में इस आकस्मिक परिवर्तन का कोई दूसरा कारण मैं नहीं बता सकता।" राजा ने अपने मन में सोचा और कहा कि देखो तो सही, बात तो बिलकुल ठीक है। जब राजा ने पहले बगीचे में पैर रक्खा था, तब वहाँ के लोगों के लिये उसकी

बड़ी ही उदार और प्रेममय वृत्ति थी, वह अपने मन में विचारता था कि ये लोग बड़े दीन हैं और सहायता के अधिकारी हैं; किन्तु जब बूढ़ा मनुष्य बात की बात में अनार-रस से भरा कटोरा उसके लिये ले आया, तब राजा का मन बदल गया और उसके विचार और के और हो गये। महाराजा का प्रकृति के ताल से बेताल हो जाने का प्रभाव बाग़ के अनारों पर पड़ा। इधर महाराज से प्रेम का नियम भंग हुआ, उधर वृक्षों ने उसे रस पहुँचाना बन्द कर दिया।

कहानी सच्ची हो या झूठी, इससे हमारा कोई प्रयोजन नहीं। किन्तु यह सत्य निर्विवाद है कि जब तक प्रकृति के हम पूरे अनुकूल रहेंगे, अथवा जब तक आप का मन अखिल विश्व से एक स्वर रहेगा, और जब तक आप हर एक से अपनी एकता का भान वा अनुभव करते रहेंगे, तब तक सभी परिस्थितियां और आस-पास की चीज़ें, हवा और लहरें तक, आप के पक्ष में रहेंगी। जिस क्षण आपकी सर्व से भिन्नता होगी उसी क्षण आपके मित्र और सम्बन्धी आपके विरोधी हो जायँगे, उसी क्षण सारे संसार को आप अपने विरुद्ध सशस्त्र खड़ा कर लेंगे। प्रेम के इस दैवी विधान को समझो और बर्तो। प्रेम सफलता का एक सजीव सिद्धान्त है।

सफलता का चौथा सिद्धान्त :—प्रसन्नता।

सफलता का चौथा सिद्धान्त चित्त की स्थिरता अथवा प्रसन्नता है। और स्थिरता या प्रसन्नता कैसे रक्खी जा सकती है? "प्रसन्न हो, शान्त हो अथवा सावधान हो", यह कहना बड़ा सहल है। किन्तु सब अवस्थाओं में प्रसन्न, शान्त और सावधान रहना बड़ा कठिन है। नियमों के केवल बना डालने

से तुम प्रसन्न नहीं हो सकते। कृत्रिम नियमों से आप कुछ भी नहीं कर सकते। तो फिर हम अपने को प्रसन्न क्योंकर रख सकते हैं? आप के भाव किस के आधीन होते हैं? वेदान्त बताता है कि जब हम शरीर या अल्प-आत्मा और प्रबल आकांक्षाओं के स्थल पर उतर आते हैं, तभी हम रुष्ट, प्रसन्नता-रहित, मलिन चित्त, उदास और शोकातुर हो जाते हैं। केवल तभी हमारी स्थिरता जाती रहती है। हमें अपने पेट का ख़याल तभी होता है जब वह रोगी होता है। हमें अपनी नाक का ध्यान तभी होता है जब सर्दी लगती या ज़ुकाम होता है। जब बाँह में पीड़ा होती है, केवल तभी हमें उसका ख़याल होता है। इसी तरह जब हमारी आध्यात्मिक व्यवस्था बिगड़ जाती है, केवल तभी हमें व्यक्तिगत अहंकार, परिच्छिन्न-आत्मा या शरीर का ख़याल उठता है। शरीर निमित्त ध्याना-सक्ति और व्यक्तिगत तुच्छ अहंकार के प्रति चिन्ता-उत्पादक वृत्ति, ये दोनों शोचनीय आध्यात्मिक रोग लाती हैं। हमारी शारीरिक निर्बलता ज्यों ही अपना रङ्ग जमाती है, त्यों ही हम नन्दन कानन से गिर पड़ते हैं। भेद और भिन्नता के वृक्ष के फल को जीभ पर धरते ही हम वैकुंठ से नीचे फेंक दिये जाते हैं। किन्तु देह (शरीर) को सूली पर चढ़ाना अंगीकार करके हम खोये हुये स्वर्ग को वापिस पा सकते हैं। जिस क्षण आप शरीर से तथा क्षुद्र स्वार्थपूर्ण, नीच, तुच्छ और छोटी छोटी आसक्तियों से ऊपर उठते हैं, उसी क्षण अपनी स्थिरता और प्रसन्नता को आप वापिस पा सकते हैं।

इस प्रकार प्रसन्नता, चित्त स्थिरता या धृति पाने के लिये आपको वेदान्त की मुख्य शिक्षा अर्थात् इस नित्य सत्य को अमल में लाना होगा, कि "मेरी सच्ची आत्मा या मेरा वास्त-

विक स्वरूप एक मात्र यथार्थ तत्त्व है"। यथार्थ तत्त्व अर्थात् अपनी सच्ची आत्मा में जब आप पूर्ण अनुरक्त हुये होते हो, तब बाह्य सांसारिक अवस्थायें आपके लिये चंचल, चपल, और लचीली हो जाती हैं। मैं शरीर नहीं हूँ। समस्त शारीरिक लगाव, सम्बन्ध और बन्धन केवल खेल की चीज़ें हैं। वे केवल नाटकाभिनय के नाते अथवा अधिकार हैं। मुझ नट स्वरूप का एक मनुष्य मित्र है और एक शत्रु ; अन्य मनुष्य मेरा पिता है, और कोई दूसरा मेरा पुत्र है ; किन्तु वास्तव में न मैं पिता हूँ और न पुत्र ; शत्रु और मित्र न शत्रु हैं और न मित्र। मैं पूर्ण ब्रह्म हूँ। सांसारिक बन्धनों और सम्बन्धों से मेरा कोई वास्ता वा लगाव नहीं। सब सम्बन्ध माया मात्र हैं। हर एक अभिनेता को खेल में अपने कर्तव्य का निर्वाह भली भाँति करना चाहिये, परन्तु जो कोई प्रीति या अप्रीति के अपने नाटकीय कर्तव्य को हृदय में जकड़ लेता है, और उसका अपने वास्तविक आत्मा से सम्बन्ध जोड़ता है, वह पागल से किसी तरह कम नहीं। और संसार जब नाटक दृश्य मात्र ही है, तो कर्तव्य-कर्म के बाह्य रूपों में अनुचित महत्ता मुझे क्यों देनी चाहिये ? यदि कोई महाराजा है, तो उससे ईर्ष्या क्यों ? और यदि कोई भिक्षुक है तो उससे घृणा किस लिये ?

"Honour and disgrace from no condition rise,
Act well your part, there all the honour lies."

"मान और अपमान की उत्पत्ति किसी दशा से नहीं होती ;
अपना कर्म भली भाँति निबाहो, इसी में सब मान (इज़्ज़त) है।"

वेदान्त सिखाता है कि तुमको अपनी परिस्थितियों और अड़ोस पड़ोस से व्याकुल न होना चाहिये। दैवी विधान

(Law) को जानो और सब भयों को झाड़ दो। मान लो एक न्यायकर्त्ता है। वह अपने न्यायालय में आता है, और अपने आसन पर बैठता है। वह न्याय-प्रार्थियों, लिखने-पढ़ने वालों, वकीलों, चपरासियों और अन्य लोगों को अपनी राह देखते हुये पाता है। न्यायकर्त्ता को गवाहों को बुलवाना नहीं पड़ा, वकीलों को आमंत्रित नहीं करना पड़ा, अथवा वादियों और दूसरों को जाकर पुकारना नहीं पड़ा। उसे कमरे की गर्द नहीं झाड़नी पड़ी, फर्श पर झाड़ू नहीं लगानी पड़ी, चौकी नहीं लगानी पड़ी, इत्यादि। जिस तरह सूर्य के उदय होते ही सब प्रकृति जाग पड़ती है; पौधे, पक्षी, पशु, नदी, और मनुष्य सजग वा प्रोत्साहित हो जाते हैं; ठीक उसी तरह न्यायकर्ता के प्रभाव मात्र से सब चीज़ें यथा स्थान हो जाती हैं। इसी प्रकार जब आप दृढ़ता पूर्वक सत्य में स्थित होते हो, जब आप निष्पक्ष परम न्यायाधीश अर्थात् अपनी ही आत्मा के आसन पर अपने को आरूढ़ करते हो, जब आपका प्रभामय स्वरूप अपनी पूरी दमक से चमकता है; तब सब परिस्थितियाँ अथवा आपका समस्त अड़ोस पड़ोस अपनी चिंता आप कर लेंगे। हर एक चीज़ सजग हो जायगी, और आपकी उपस्थिति के मनोहर प्रकाश में यथा स्थान हो जायगी। भारत के श्रेष्ठतम शूर वीर राम के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि जब वे सीता जी को—जो दिव्य विद्या-रूपिणी है—पुनः प्राप्त करने चले, तब समस्त प्रकृति ने उनको सहायता दी। वानरों, पक्षियों, गिलहरियों और जल, पवन, पत्थरों तक ने उनका पक्ष लेने में एक दूसरे से बढ़ चढ़ कर सहायता देने की चेष्टा की। अधम आसक्ति और पतनकारिणी घृणा से दूर रहकर अपने आत्म-स्वरूप की प्रभा और ऐश्वर्य में प्रकाशमान

हो, फिर यदि नीच ग़ुलामों की तरह देवता और देव-दूत आपकी सेवा न करें तो उनको धिक्कार है। हर एक व्यक्ति बच्चे की ग़ुलामी क्यों करता है? नन्हा उपद्रवी बच्चा परम बलवान कंधों पर चढ़ता और मुकुटधारी शिरों के बाल नोचता है। यह क्या बात है? ऐसा क्यों? इसलिये कि बच्चा परिस्थितियों से परे, अर्थात् परमात्मा में अज्ञात भाव से निवास करता है।

यदि आप अपने कर्त्तव्य को पालते हो, यदि आप अपने धर्म की पालना करते हो, तो बाहरी सहायताओं और मदद़ों की परवाह मत करो। वे अवश्य आपको मिलेंगी। वे आने को बाध्य हैं। जब आप व्यख्यान देते हो और उसमें कोई बात सुरक्षित होने के योग्य है, तो मत उद्विग्न हो कि कौन आकर उसे लिख लेगा या प्रकाशित करेगा, इत्यादि। न्यायाधीश का स्थान ग्रहण करो, अपनी प्राचीन पदवी पर दृढ़ हो जाओ, बाहरी मामलों और बाहरी सहायताओं की आशंकाओं से अपनी प्रसन्नता को कभी नष्ट न करो।

शरीर के किसी भाग में जब खुजली मालूम पड़ती है, तब हाथ आप से आप खुजलाने के लिये उस भाग पर पहुँच जाता है। हाथ के नीचे जो शक्ति या आत्मा है, वह ज़ाहिरा वही शक्ति या आत्मा है जो खुजली के स्थान के नीचे है। याद रक्खो कि ठीक इसी तरह तुम में जो आत्मा है, वह वही आत्मा है जो आसपास में या अग़ल-बग़ल की वस्तुओं में है, और जब तुम्हारा मन इस अन्तर्गत परम आत्मा से तद्रूप होकर लहराता है और तुम्हें समग्र संसार अपना शरीर हो जाता है, तब बाहरी सहायतायें और उपकार स्वभावतः और अनायास उड़ कर उसी तरह तुम्हारे पास आ जावेंगे जिस तरह हाथ खुजली की जगह पर पहुँच जाता है।

जब हम अपनी प्रतिच्छाया को पकड़ने दौड़ते हैं, तो वह कभी हाथ नहीं आती ; छाया हमेशा हम से आगे ही दौड़ेगी। किन्तु यदि प्रतिच्छाया की ओर पीठ फेर कर हम सूर्य की ओर दौड़ें, तो वह हमारा पीछा करेगी। इसी तरह जिस क्षण तुम इन बाहरी पदार्थों की ओर फिर कर इन्हें पकड़ना और रखना चाहोगे, उसी घड़ी ये तुम्हारी पकड़ बचा जायँगे, तुमसे आगे दौड़ेंगे। और ज्यों ही आप उनकी ओर से पीठ फेरेंगे और प्रकाशों के प्रकाश अर्थात् अपने अन्तरात्मा की ओर मुँह करेंगे, त्योंही अनुकूल अवस्थायें आपको ढूँढ़ेंगी। यही दैवी विधान है।

"कर्त्तव्य" के नाम से ही अधिकांश लोग पीले पड़ जाते हैं, अर्थात् ज़िच हो जाते हैं। कर्त्तव्य हव्वे की तरह उन्हें सताता है, उन्हें कूटता रहता है, उन्हें चैन नहीं लेने देता, हर घड़ी सिर पर सवार रहता है। ऐसे जल्दबाज़ ग़ुलाम, बल्कि "कर्त्तव्य" के यन्त्र जल्दी के विचार से जितना लाभ उठाते हैं उतनी ही शक्ति खोते हैं। कर्त्तव्य-बुद्धि आपके पैर न उखाड़ने पाये, अथवा आपके मन को हताश न करने पावे। याद रक्खो कि सम्पूर्ण कर्त्तव्य को अपने ऊपर लादने वाले वास्तव में तुम ही हो। वास्तव में तुम आप ही अपने मालिक हो। तुमने स्वयं अपने पद चुने, सेवा अर्पण की, और अपने हाकिम रचे। अब यदि आप को उनके रुपये-पैसे की ज़रूरत है, तो वे उसी मात्रा में आपकी सेवा चाहते हैं। शर्तें बराबरी की हैं, क्रिया और प्रतिक्रिया समान है। आप अपनी ही इच्छा की सेवा करते हो, किसी और दूसरे की नहीं। आप का वर्तमान अड़ोस पड़ोस आप ही की रचना है, सम्बन्धों की छोटी सी दुनिया आप ही की कारीगरी है, आपका भविष्य आप ही का

बनाया हुआ होगा। अपनी प्रारब्ध के कर्त्ता आप ही हैं। इसे जानिये और प्रसन्न होइये अर्थात् गद्गद होइये।

"We build our future thought by thought
For good or bad and know it not.
Thought is another name for fate;
Choose, then, thy destiny, and wait.
Mind is the master of its sphere;
Be calm, be steadfast and sincere;
Fear is the only foe to fear.
Let the God in thee rise and say
To adverse circumstances—'Obey!'
And thy dear wish shall have its way."

"निरन्तर संकल्पों से हम अपना भविष्य गढ़ते हैं।
बुरा या भला और यह जानते तक नहीं हैं।
कि प्रारब्ध ही का दूसरा नाम संकल्प है;
तो फिर अपना नसीब चुन लो और, उसकी राह देखो।
मन उसके क्षेत्र का स्वामी है;
अतएव शान्त, तत्पर और सच्चे रहो;
भय ही एक मात्र भयंकर शत्रु है।
तुझ में जो ईश्वर है उसे उदय होने और कहने दीजिये।
"ओ विपरीत अवस्था! मेरी आज्ञा मान"
और तेरी प्यारी इच्छा तब पूरी होजायगी"।

किसी प्रकार काल काटने वाले मज़दूर की तरह काम न करो। आनन्द के लिये, उपयोगी कसरत समझ कर, सुख-क्रीड़ा अथवा मनोरञ्जक खेल समझ कर कुलीन राजकुँवर की तरह काम करो। दबे हुये दिल से कदापि किसी काम को हाथ में न लो। सावधान हो जाओ। अनुभव करो कि

महाराजे और राष्ट्र-पति तुम्हारे चाकर मात्र हैं। नक्षत्रों की तरह काम करो—

"Undismayed at all things about them,
Unaffrighted at the things they see,
These demand not that the things *without* them
Yield them love, amusement, sympathy."

"The exquisite reward of song
Was song—the self-same thrill and glow
Which to unfolding flowers belong,
And wrens and thrushes know."

" अपने समीप की सब चीज़ों से बिना भय खाये,
दिखाई पड़ने वाली वस्तुओं से बिना भय भीत हुए,
ये नहीं मांगते कि इनसे 'पृथक' चीज़ें
इन्हें प्रेम, मनोरञ्जन व सहानुभूति अर्पण करें,

गाने का अनोखा पुरस्कार
जो गान था—अपनी ही किलक (किलकारी) और दमक
कि जो (किलक) खिलते हुए फूलों की होती है,
और जिसे बुलबुलें तथा लाल जानते हैं" ।

किसी तरह की ज़िम्मेदारी भान न करो। कोई इनाम न माँगो । सब प्रमाण तुम्हारे अधीन होने चाहियें । अपने लिये प्रमाण तुम आपही हो। किसी भी कर्त्तव्य-बुद्धि या बाहरी प्रमाण को आप अपने ऊपर छाया डालने वाला मेघ न होने दीजिये। बाह्य प्रमाण से दी हुई आज्ञा अधिक से अधिक ठीक ठीक नपी तुली हो सकती है, किन्तु जिस आज्ञा की रचना तुम स्वयं करोगे, वह स्वभाव-सिद्ध या अंगरूप होगी।

सफलता का पाँचवाँ सिद्धान्त—निर्भीकता।

अब हम सफलता के पाँचवें सिद्धान्त 'निर्भीकता' पर आते हैं! निर्भयता क्या वस्तु है? माया में बिलकुल विश्वास न होना और वास्तविक स्वरूप का जीता-जागता ज्ञान और उस पर निष्कपट विश्वास होना। डर हमारे पास तभी आता है, जब हम अपने को भय का आलय या शरीर समझते हैं। शरीर सदा ही चिन्ता-कीटों से भक्षणीय है। सब तरह की पीड़ायें उसे वेध और दाब सकती हैं। जिस क्षण हम क्षुद्र शरीर से ऊपर उठते हैं, उसी क्षण हम भय से छूट जाते हैं। ईश्वर-समान जीवन बिताओ, वेदान्त को आचरण में लाओ, फिर कौन तुम्हें हानि पहुँचा सकता है? कौन तुम्हें चोट लगा सकता है? वेदान्त और निर्भीकता को अलग नहीं किया जा सकता।

निर्भीकता सफलता के लिये बहुत ज़रूरी किस तरह है? इसके लिये अपने अनुभव में आई हुई एक बात का उदाहरण दिया जायगा। हिमालय के बन में एक बार पाँच रीछ एक साथ ही 'राम' के सामने आ गये, परन्तु उन्होंने उसे (राम को) ज़रा भी नहीं सताया। यह क्यों? केवल निर्भयता के कारण। राम में यह भावना भरी हुई थी, मैं शरीर नहीं हूँ, मैं चित्त नहीं हूँ, मैं परब्रह्म हूं, मैं ईश्वर हूँ, अग्नि मुझे जला नहीं सकती, अस्त्र मुझे घायल नहीं कर सकता"। उनसे नज़र मिलाई गई, और वे भाग गये। एक बार जंगली भेड़िया इसी तरह भगाया गया। दूसरी दफ़े एक चीता यों ही चलता हुआ। जब बिल्ली आती है तो कबूतर अपनी आँखें बन्द कर लेते हैं। वे समझते हैं कि हम बिल्ली को नहीं देखते, इस लिये बिल्ली भी हमें नहीं देखती। फिर भी बिल्ली उन्हें खा ही जाती है। यदि तुम

डरोगे तो बिल्ली तुम्हें खा जायगी। क्या आपने यह ख़याल नहीं किया है कि नगर से बाहर के मुहल्लों में गुज़रते हुए जब हम नाम मात्र को भयभीत होने के लक्षण दिखाते हैं, तो कुत्ते हम पर झपट पड़ते हैं और हमें दिक़ करते हैं? यदि हम डरेंगे तो कुत्ते भी हमें नोच डालेंगे। किन्तु यदि हम निडर हैं, तो हम सिंहों और चीतों को भी जीत सकते और हिला सकते हैं। एक पात्र से दूसरे पात्र में द्रव पदार्थ डालते समय यदि हमारे हाथ ज़रा सा भी काँप जाते हैं, तो अवश्य वह वस्तु गिर जाती है। भ्रम रहित होकर, निर्भयता के साथ तथा विश्वासपूर्वक तरल पदार्थ दूसरे बरतन में उलटोगे, तो एक बूँद भी न नष्ट होगी।

भय और सन्देह से ही तुम अपने को मुसीबतों में डालते हो। किसी बात से भी अस्थिर और चकित न हो। तुम सर्वरूप हो। शरीर के साथ भय दिलाने वाली आसक्ति को दूर करो। क्या यह करुणाजनक बात नहीं है कि छोटे से पटाके या छोटे से चूहे या पत्ती की खड़खड़ाहट की आवाज़, बल्कि थर्राती हुई छाया, ऊन पहने हुए पूरे दो मन वज़नी शरीर को चौकन्ना करदे? संकट के भय से बढ़कर कोई संकट नहीं है। मृत्यु के भय को मन में स्थान देने के बदले मर जाना मैं पसन्द करूंगा।

किसी ने कहा है:—"जिसके मन में चलनेवाला पौधा नहीं, उसे कभी भी चलनेवाला पौधा नहीं मिला"। यदि तुम्हारे मन में प्रीति है, तो तुम्हें प्रीति मिलेगी। यदि तुम अप्रीति का पोषण करते हो, तो तुम्हें अप्रीति मिलेगी। यदि तुम्हें धोखा देनेवालों और जासूसों का डर है, तो तुम उनसे नहीं बचोगे। यदि तुम स्वार्थपरता और कपट की आशा करते हो, तो तुम निराश न होगे, चारों ओर से स्वार्थपरता और कपट तुम्हारे सामने

आवेगा। तो फिर डरो मत, अपने में पवित्रता और विशुद्धता को रक्खो ; तुम्हारा कभी किसी अस्वच्छ वस्तु से सामना न पड़ेगा। जीवन-साफल्य और आध्यात्मिक-साफल्य को साथ साथ चलना होगा। वे भ्रम में (deluded) हैं जो एक का दूसरे से विच्छेद करते हैं।

चोर उसी घर में सेंध लगाते हैं जो अरक्षित होता है। यदि घर में बराबर रोशनी रहे तो, वे घुसने की हिम्मत न करेंगे। सत्य का प्रकाश सदा अपने चित्त में प्रज्वलित रक्खो, फिर भय या प्रलोभन का पिशाच तुम्हारे निकट न पहुँचेगा। ईश्वरीय विधान पर विश्वास रक्खो। लौकिक बुद्धि के फेर में पड़ कर अपने जीवन को कृपया कष्टमय न बनाओ। कायर दूरदर्शिता (timid prudence) तुम्हें पूरा पूरा नास्तिक बना देती है। परिस्थितियों के कोहरे और धुन्ध से अपने को मेघाच्छन्न क्यों होने देते हो? क्या तुम सूर्यों के सूर्य नहीं हो? क्या तुम विश्व के स्वामी नहीं हो? परीस्थित्तियों की ऐसी कौन सी चपलता है जिसे तुम हटा नहीं सकते, फाड़ नहीं सकते, अथवा फूंक कर उड़ा नहीं सकते? किसी धमकानेवाली परिस्थिति को नाम मात्र भी असली समझने का विचार तुमसे दूर रहे। निर्भय. निर्भय, निर्भय तुम हो।

सफलता का छठा सिद्धाँतः—स्वावलम्बन

सफलता का छठा सिद्धान्त 'स्वावलम्बन' है। आप जानते हैं कि हाथी सिंह से कहीं बड़ा पशु है। हाथी का शरीर सिंह के शरीर से कहीं अधिक बलवान मालूम पड़ता है। तथापि अकेला एक सिंह हाथियों के समस्त झुण्ड को भगा सकता है। सिंह की शक्ति का रहस्य क्या है? एक मात्र रहस्य यही है कि सिंह अमली वेदान्ती है, और हाथी द्वैतवादी है।

हाथी शरीर पर विश्वास करते हैं। सिंह व्यवहारतः शरीर में विश्वास नहीं करता; वह शरीर से किसी उच्चतर वस्तु अर्थात् आत्मा में विश्वास करता है। यद्यपि सिंह का शरीर अपेक्षाकृत बहुत छोटा है, परन्तु कार्यतः वह अपनी शक्ति असीम मानता है, अर्थात् अपनी आन्तरिक शक्ति अनंत मानता है। हाथी चालीस या पचास और कभी कभी सौ सौ या दो दो सौ का दल बना कर रहते हैं। और जब कभी वे आराम करते हैं, तो सदा एक प्रबल हाथी को पहरेदार बना देते हैं। उन्हें डर बना रहता है कि कहीं शत्रु चढ़ न आवे और खा न जावे। वे यह नहीं जानते कि यदि अपने में विश्वास हो तो, हम में से एक एक हज़ारों सिंहों का संहार कर सकता है। किन्तु विचारे हाथियों में भीतरी आत्मा पर विश्वास नहीं होता, और फलतः साहस का भी अभाव होता है।

इस तरह पर आत्म-विश्वास कल्याण का एक मूल सिद्धांत है। वेदान्त सिखाता है कि तुम अपने आप को अधम, नीच, दुःखी, पापी या अभागा न कहो। वेदान्त चाहता है कि तुम अपनी भीतरी शक्ति पर विश्वास करो। तुम अनन्त हो। तुम सर्वशक्तिमान् परमात्मा हो। अनन्त परमेश्वर तुम स्वयं हो, ऐसा विश्वास करो। कैसा ईश्वर प्रबोधक सत्य है! बाह्य आधार पर विश्वास करते ही तुम असफल होते हो। यही सिद्धान्त या दैवी विधान है।

मुक़दमेबाज़ी में उलझे हुए दो भाई न्यायकर्त्ता के सामने आये। उनमें से एक लक्षाधीश था, दूसरा कंगाल। न्यायकर्त्ता ने लक्षाधीश से पूछा कि वह स्वयं इतना अमीर और उसका भाई इतना ग़रीब कैसे हो गया। उसने कहा, "पाँच वर्ष पूर्व हमें अपने बापदादे की समान समान सम्पत्ति मिली थी। दो लाख

रुपया मेरे हिस्से में आया था और इतना ही मेरे भाई के हिस्से में। मेरा भाई अपने को धनी समझ कर आलसी हो गया (आप जानते हैं कि कुछ धनवान् परिश्रम करना अपनी शान के ख़िलाफ़ समझते हैं) और उस ने सभी काम अपने नौकरों को सौंप दिये। यदि कोई चिट्ठी उसके पास आती थी तो अपने नौक़रों को देकर कहता था, "जाओ, इस काम को करो"। जो कुछ भी काम करने को होता था वह अपने नौकरों से करने को कहता था। इस तरह चैन और आराम में वह अपना समय काटने लगा। "खाना, पीना, और मौज उड़ाना" उसका काम रह गया। वह अपने नौकरों को सदैव आज्ञा देता था, "जाओ, जाओ, यह काम करो या वह काम करो"। अपने सम्बन्ध में उस धनिक पुरुष ने कहा, "मैंने जब अपने दो लाख रुपये पाये, तो मैं अपना काम किसी दूसरे को नहीं देता था। जब कभी कुछ करना होता था, तो सदा मैं स्वयं उसे करने दौड़ता था और नौकरों से कहता था, "आओ, आओ, मेरे पीछे आओ"। मेरी जीभ पर हमेशा 'आओ, आओ,' शब्द रहते थे, और मेरे भाई की जीभ पर 'जाओ, जाओ'। उसके अधिकार की हर एक वस्तु ने उसके तकिया कलाम का पालन किया। उसके नौकर, मित्र, दौलत या सम्पत्ति सब के सब चल दिये, उसे बिलकुल छोड़ दिया। मेरा सिद्धान्त-वाक्य था 'आओ'। मित्र मेरे पास आये, मेरी सम्पत्ति बढ़ी और हर एक चीज़ बढ़ी"।

जब हम दूसरों पर भरोसा करते हैं, तब कहते हैं, "जाओ, जाओ"। इस तरह से हरएक चीज़ चली जायगी। और जब हम अपने पर भरोसा करते हैं और आत्मा के सिवाय किसी पर भी निर्भर नहीं होते हैं, तब सब चीज़ें हमारे पास आकर जमा हो जाती हैं। यदि तुम अपने को ग़रीब, तुच्छ कीट समझते

हो, तो वही हो जाते हो। और यदि तुम अपना सम्मान करते हो और अपने आत्मा पर निर्भर होते हो, तो बड़ाई तुम्हें प्राप्त हो जाती है। जैसा तुम सोचोगे, वैसा ही अवश्य हो जाओगे।

भारत के एक स्कूल में एक निरीक्षक (इंस्पेक्टर) आया। एक शिक्षक ने एक लड़के को दिखला कर कहा कि वह इतना तेज़ है कि अमुक अमुक काव्य, जैसे मिल्टन का 'पाराडाइज़ लास्ट' उसे कंठाग्र है, और उसका कोई भी अंश वह सुना सकता है। विद्यार्थी निरीक्षक के सामने पेश किया गया। किन्तु उसमें वेदान्त का भाव नहीं था। उसने लज्जा और नम्रता धारण की। जब उससे पूछा गया, "तुम्हें अमुक खण्ड कंठाग्र है?" उसने कहा, "जी नहीं, मैं कोई चीज़ नहीं, मैं कुछ भी नहीं जानता"। इन शब्दों को उसने नम्रतासूचक वा लज्जाशीलता का लक्षण समझा। "नहीं जनाब मैं कुछ नहीं जानता, मैंने उसे नहीं रटा था"। निरीक्षक ने फिर पूछा; किन्तु लड़के ने फिर भी कहा, "नहीं महाराज जो! नहीं, मैं तो नहीं जानता"। शिक्षक का मुँह उतर गया। एक और लड़का था। उसे पूरी पुस्तक मुखाग्र नहीं थी। किन्तु उसने कहा, "मैं जानता हूं, मैं समझता हूं कि जो कोई अंश आप चाहेंगे वह सुना सकूंगा"। निरीक्षक ने उससे कुछ प्रश्न किये। लड़के ने सब सवालों का उत्तर फटाफट दे दिया। इस लड़के ने वाक्य पर वाक्य सुना दिये और इनाम पाया। आप जितना मूल्य अपना समझते हैं, उससे अधिक मूल्य का आप को कोई न अन्दाज़ेगा।

कृपा करके अपने को दीन, हीन वा अभागे प्राणी न बनाइये। जैसा सोचोगे, वैसे ही तुम हो जाओगे। अपने को ईश्वर समझो और तुम ईश्वर हो। अपने को तुम स्वतंत्र (मुक्त) समझो, और उसी क्षण तुम स्वतंत्र वा मुक्त हो जाते हो।

एक दिन एक वेदान्ती के घर में एक मनुष्य आया और मकान-मालिक की ग़ैरहाज़िरी में गद्दी पर बैठ गया। जब घर का मालिक कमरे में लौटा आ रहा था, तब घुस आने वाले ने यह सवाल किया, "ऐ वेदान्ती! मुझे बता कि ईश्वर क्या है, और मनुष्य क्या है"। महात्मा ने प्रश्न का सीधा उत्तर तो नहीं दिया, किन्तु वह केवल अपने नौकरों को पुकार कर चिल्लाने और कटु भाषा का प्रयोग करने लगा, और उनसे उस (घुस आने वाले) को घर से निकाल देने को कहा। यह अद्भुत भाषा बुद्धिमान् मनुष्य ने वास्तव में व्यवहार की। जब ऐसी भाषा का प्रयोग किया गया जिसकी कि आशा नहीं थी, तो आगंतुक डर गया और घबड़ा कर गद्दी से हट गया। बुद्धिमान मनुष्य उस पर जा विराजा और शांति भाव से तथा गम्भीरता पूर्वक उससे कहा, "यह (अपने को बताकर) तो ईश्वर है और वह (आगन्तुक को बताकर) मनुष्य है। यदि तुम डर न जाते, यदि तुम अपने स्थान पर डटे रहते, यदि तुम अपनी स्थिरता क़ायम रखते, यदि तुम्हारा चेहरा न उतर जाता, तो तुम भी ईश्वर थे। किन्तु तुम्हारा काँपना, थर्राना, और अपनी ईश्वरता में विश्वास का न रहना ही तुम्हें हीन कीट बनाता है"। अपने आप को ईश्वर समझो, अपने ईश्वरत्व में सजीव विश्वास रक्खो; फिर कोई तुम्हारी हानि न कर सकेगा, कोई भी तुम्हें क्षति न पहुँचा सकेगा।

जब तक तुम बाहरी शक्तियों पर भरोसा और विश्वास करते रहोगे, तब तक परिणाम असफलता ही होगा। अन्तर्गत ईश्वर पर भरोसा करते हुए शरीर को काम में लगाओ, सफलता निश्चित है। यदि पहाड़ मोहम्मद के पास नहीं आता, तो मोहम्मद पहाड़ के पास जायगा। एक आदमी भूखा था।

अपनी भूख बुझाने के लिये वह एक जगह आँखें मीच कर बैठ गया और काल्पनिक भोजन करने लगा। कुछ देर बाद वह मुँह खोले हुए अपनी जली जीभ ठंढी करते देखा गया। किसी ने उससे पूछा, "क्या मामला है"? उसने कहा कि मेरे भोजन में गर्म मिर्चें (chilly) थीं। नाम तो ठण्ढा है, परन्तु चीज़ है बड़ी गर्म *। इस पर एक पास खड़े हुए मनुष्य ने कहा, "अरे ग़रीब प्यारे! यदि मानसिक भोजन पर ही तुझे निर्वाह करना था तो गर्म मिर्च के बदले कोई मीठी वस्तु ही क्यों नहीं चुन ली, जब यह तुम्हारी ही सृष्टि, तुम्हारी ही करतूत और तुम्हारी अपनी ही कल्पना थी, तो कोई अच्छी चीज़ क्यों नहीं पसन्द की?

वेदान्त कहता है, आपका समग्र संसार आप ही की रचना अथवा आप ही का विचार है; अपने आपको नीच, अभागा वा पापी क्यों समझते हो? अपने को ईश्वर का निर्भीक और स्वावलम्बी अवतार क्यों नहीं समझते?

सत्य में सजीव विश्वास रक्खो, इर्द-गिर्द की चीज़ों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करो, अपनी सर्व परिस्थितियों का यथोचित मूल्य जानो, और इस दर्जे तक आत्मानुभव करो कि यह संसार तुम्हें मिथ्या जान पड़ने लगे। क्या तुम्हें पता नहीं कि ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार स्थिर नक्षत्रों का अन्तर गिनने में यह संसार अंकगणित का एक बिन्दु मात्र समझा जाता है, उन नक्षत्रों और ग्रहों की अपेक्षा यह संसार कुछ नहीं अर्थात् शून्य मात्र माना जाता है। यदि ऐसा है, तो सर्वोपरि अनन्तशक्ति रूप आत्मा की तुलना में यह पृथ्वी क्या कोई चीज़ हो सकती है? ऐसा जानो, और अनुभव करो। प्रकाशों के प्रकाश तुम हो; समस्त

* अंग्रेज़ी में लाल मिर्च को "चिली" (chilly) कहते हैं। "चिली" का दूसरा अर्थ ठिठुराने वाला भी है।

महिमा तुम्हारी है। यह समझो और इस दर्जे तक इसे अनुभव करो कि यह पृथ्वी और नाम तथा यश, लौकिक सम्बन्ध, लोकप्रियता और लोक-अप्रियता, सांसारिक मान और अपमान, शत्रुओं की निन्दा और मित्रों की ख़ुशामद, ये सब तुम्हारे लिये निरर्थक चीज़ें हो जाँय। सफलता का यह रहस्य है।

नियगरा नदी की तेज़ धारा दो आदमियों को बहाये लिये जाती थी। उनमें से एक को एक बड़ा लट्ठा मिल गया और जान बचाने की इच्छा से उसने उसे पकड़ा। दूसरे मनुष्य को नन्ही सी रस्सी मिली। जिसे किनारे के आदमियों ने इन दोनों के बचाने के लिये फेंकी थी। सौभाग्य से दूसरे मनुष्य ने यह रस्सी पकड़ ली, जो लकड़ी के लट्ठे के समान भारी नहीं थी। रस्सी यद्यपि ज़ाहिरा बहुत ही डाँवाडोल और भंगुर वा कोमल थी, तथापि वह बच गया। किन्तु जिस आदमी ने लकड़ी का लट्ठा पकड़ा था, वह फुर्ती से लट्ठे के साथ बह कर गरजते हुये (falls) प्रपातों के नीचे तरङ्गायित जल की खुली हुई खोह में पहुँच गया।

इसी तरह, ऐ संसारी लोगो! तुम इन बाहरी नामों, कीर्ति, ऐश्वर्य, वैभव दौलत और समृद्धि पर भरोसा करते हो। ये तुम्हें लकड़ी के लट्ठे की तरह बड़े मालूम होते हैं, किन्तु ये बचाने वाले साधन नहीं हैं। बचानेवाला सिद्धान्त महीन तागे की तरह है। वह भौतिक नहीं है, तुम उसे छू नहीं सकते, तुम उसे हथिया और टटोल नहीं सकते। सूक्ष्म सिद्धान्त, सूक्ष्म सत्य बहुत ही नन्हा है। किन्तु वही तुम्हें बचाने वाली रस्सी है। ये सब संसारी चीज़ें, जिन पर तुम भरोसा करते हो, केवल तुम्हारे नाश का कारण होंगी और राशा, चिन्ता, तथा पीड़ा के गहरे गढ़े में तुम्हें गिरावेंगी।

सावधान, सावधान! सत्य को दृढ़ता से पकड़ो। बाहरी पदार्थों की अपेक्षा सत्य पर अधिक विश्वास रक्खो। दैवी सिद्धान्त अर्थात् प्रकृति का नियम यह है कि जब मनुष्य अमली तौर पर बाहरीपदार्थों और दौलत पर विश्वास करता है, तो उसे असफल होना पड़ता है। यही सिद्धान्त है। ईश्वर पर भरोसा करो और तुम सुरक्षित हो। अपनी इन्द्रियों के बहकाने में न आओ।

अपने पड़ोसियों के उपदेशों और वशीकरण से ऊपर उठो। तुम्हारे सब सांसारिक बन्धन और सम्बन्ध तुम्हें चिन्ता और दुर्भाग्य के वश में डालते हैं। उनसे ऊपर उठो। सत्य में विश्वास करो, ईश्वर से अपनी एकता का अनुभव करो और तुम्हारा निस्तार है, बल्कि तुम स्वयं मोक्ष रूप हो।

नारायण न करे कि वास्तविक आत्मा की अपेक्षा संसार को आप अधिक महत्त्व देने लगें। अपने को परिमित, करुणा पात्र, इन्द्रिय—विशिष्ट व परिच्छिन्नात्मा न बनाये रक्खो। किसी चीज़ से भी न चिढ़ो। काम उसी निर्लिप्त भाव से करो जिस तरह वैद्य लोग अपने रोगियों की चिकित्सा करते हैं, और रोग को अपने पास नहीं फटकने देते। सब उलझनों से मुक्त अथवा अप्रभावित गवाह (साक्षी) की भावनासे काम करो। स्वतंत्र रहो।

सफलता का सातवाँ सिद्धान्तः—पवित्रता।

सफलता को निःसन्देह प्राप्त कराने वाली अन्तिम बात जो महत्ता में किसी से कम नहीं है, वह है पवित्रता। यह सत्य है कि संकल्प या ख़याल प्रारब्ध का दूसरा नाम है, मनुष्य जो कुछ ख़याल करता है वही हो जाता है। किन्तु यदि आप गन्दी बातें विचारने लगें और पतित बनाने वाले दुराचारों का पोषण करने लगें, तो इन स्वार्थमय इच्छाओं की पूर्ति के साथ साथ

हृदय को चूर्ण कर देनेवाली पीड़ा, अति वेदनाकारी कष्ट और व्याकुल कर्त्ता शोक भी बदले में आप को ज़बरदस्ती भुगतने पड़ेंगे। शोक आप की आत्मा पर आक्रमण करेगा। मूर्ख समझता है कि वह इन्द्रियों के सुख लूटता है, किन्तु यह नहीं जानता कि अस्वच्छ विचार या कार्य के बदले में उसकी जीवन-शक्ति ही मोल ले ली जाती है अर्थात् बिक जाती है, अथवा नष्ट हो जाती है। स्वार्थमय उद्देश्यों के लिये जब तुम कर्म का दुरुपयोग करते हो, तब कर्म का क़ानून इसका बदला लेता है, और तुम्हें व्यर्थ कर देता है। ईश्वर पर अपनी मरज़ी मत चलाओ। शारीरिक आवश्यकताओं के संबंध में ईश्वर की इच्छा पूर्ण होने दो। सांसारिक आवश्यकताओं में ईश्वर की मर्ज़ी अपनी मर्ज़ी बनालो। समझो, जानो कि तुम वही परम शक्ति हो जिसकी इच्छा ने परिस्थितियों के वर्तमान रूप की रचना की है। अपनी ग़रीबी को अपनी ही करतूत समझ कर सानन्द भोगो। किन्तु यदि विषयवासना तुम्हें पथभ्रष्ट कर दे और कामुकता के दलदल में तुम अपने को फँसा हुआ पाओ, तो अपनी ईश्वर-भावना अथवा आत्मानुभूति को पाने और बनाये रखने के लिये अपनी प्रबल इच्छा-शक्ति का प्रतिपादन करो और उससे बड़े यत्न से काम लो। इस देश में कामुकता (cupudity) प्रेम के पवित्र नाम से दर्शाई जाती है। कैसा पाखण्ड है ! लोग शुद्ध जीवन व्यतीत नहीं करते। असाधारण स्नेह और असाधारण वासनायें उनके दिनों को खण्ड खण्ड में काट-बाँट देती हैं। शायद ही कभी कोई युवक अपने भाव प्रकट करने में लगी चिपटी न रखता हो। वास्तव में युवक का सदा ही यह अंगभंग अपूर्णाङ्ग, बल्कि अत्यन्त अनुचित, जर्जरित अंश होता है कि जो सर्वसाधारण में प्रकट होता है। एक अंश तो उसका उसकी प्रेयसी के पास रहता है और

दूसरा किसी दूसरे पदार्थ में लगा रहता है। अपने कार्य को प्यार करो, जहाँ तुम्हारा हाथ हो वहीं अपने मन को भी रक्खो। हाथ और पैर तो गरम रहें अथवा काम करते रहें, किन्तु अपना मस्तिष्क शान्त और एकाग्र रक्खो। अपने विचारों को सदा स्वस्थ अर्थात् वास्तविक स्वरूप में केन्द्रित रक्खो, और परिस्थितियों की कुछ परवाह न करो। मानव जाति के हित करने का विचार आप को हैरान न करने पाय। संसार इतना दीन क्यों हो कि वह निरन्तर तुम्हारे ध्यान की भिक्षा करता रहे? शरीर को अपनी ही मुक्ति के लिये काम करते रहने दो। मूर्ख लोग व्यर्थ को प्रकाश के लिये प्रार्थना और कामना करते रहते हैं। तुम्हें प्रकाश चाहने की भी क्या आवश्यकता है? प्रकाश के लिये लालसा तुम्हें अंधकार में रखती है। एक क्षण के लिये सब इच्छाओं को दूर फेंक दो। ॐ (प्रणव) की रट लगाओ। न आसक्ति हो, न घृणा; पूर्ण समता हो, और तब तुम्हारा समग्र शरीर प्रकाश स्वरूप हो जाता है। कार्य के सब सांसारिक उद्देश्यों को दूर कर दो। इच्छारूपी प्रेतों को उतार दो अर्थात् भगा दो। अपने सब काम को पवित्र बना दो। आसक्ति या लगन के रोग से अपने को छुड़ा लो। एक पदार्थ में आसक्ति आप को सर्वव्यापक से पृथक कर देती है। स्वार्थमय पाशविक उद्देश्य ही आप के व्यवसाय और जीवन को लौकिक बना देते हैं। कार्य में अज्ञात रूप से जो त्याग निहित है, उसका मज़ा चखने के लिये तुम परिश्रम करो। शरीर या परिच्छिन्न आत्मा से परे रहते हुए (क्योंकि कार्य तुम्हें ईश्वर के साथ अभेद रखता है) अपना काम करो। निष्काम कर्म परमोच्च त्याग या उपासना का दूसरा नाम है। काम करने में तुम्हारा कोई उद्देश्य क्यों हो? मूर्ख अभागे विश्वास करते हैं कि स्वयं

काम की अपेक्षा उद्देश्य पूरे होकर अधिक सुख देते हैं। अंधे जानते ही नहीं कि स्वयं काम से बढ़कर अधिक सुख किसी भी परिणाम में नहीं मिल सकता। आनन्द कर्म के वस्त्र पहने रहता है। आप अपनी सफलता सदा अपने साथ रख सकते हैं। इस तरह विशाल विश्व तुम्हारा पवित्र देवालय और तुम्हारा समग्र जीवन एक निरन्तर स्तोत्र हो जाता है। फल की तुम्हें क्या चिन्ता है? वेतन या तनख़्वाह के लिये हैरानी तुम्हारे पास न फटके। यदि कोई उच्च पद तुम्हें नहीं मिलता, तो पदवी का व्यर्थ अभिमान तुम्हें सड़कों पर झाड़ू देने से न रोके। तुम्हारे हाथ के सामने जो काम आपड़े उसे करने से न हिचको। परिपाटी के विरुद्ध कार्य को त्याग देना यह कोई आत्म-सम्मान नहीं है। सच्ची आत्म-सम्मानता अपने निज स्वरूप या अभ्यन्तरात्मा का सम्मान है। शारीरिक सम्मान नेकी का प्रतिकूल ध्रुव है, वा नरक का बड़ा सीधा रास्ता है। जब आप किसी भी श्रम के लिये अपना हाथ बढ़ाने को तैयार हैं, तो अति श्रेष्ठ पद और अत्यन्त प्रतिष्ठित व्यवसाय आपका हार्दिक स्वागत करने को अपने हाथ फैलावेंगे। यही प्रकृति का नियम है। परिश्रम में निवास करनेवाले ईश्वर से यदि आप झिझकते और उलटते नहीं, तो ईश्वर से अधिक शिष्टता कौन दिखा सकता है। आपकी इच्छा के विरुद्ध भी प्रकाश आपके द्वारा प्रकाशित होगा। मानवजाति की निन्दा या स्तुति में विश्वास न करो। ये बातें केवल तुम्हें पथ-भ्रष्ट करतीं या धोखे में डालती हैं। तुम्हारा स्वर्ग तुम्हारे अन्दर है। बाह्य में अर्थात् कहने मात्र आनन्द के पदार्थों में सुख लूटने के लिये जब आप झुकते हैं, तब आप अपने को व पदार्थों को अपवित्र या अशुद्ध बनाने वाले होते हैं। बाहरी सुखों से कह दो, "Get behind me, Satan, I'll take nothing at thy

hands." "शैतान, मेरे पीछे हट, मैं तेरे हाथों से कुछ नहीं लेने का"। सम्पूर्ण आनन्द का सोता क्या तुम नहीं हो?

"For him in vain the envious seasons roll,
Who bears eternal summer in his soul."

"बस खोजना आनन्द दायक ऋतु उसे सब व्यर्थ है।
जो आत्मा में स्वर्ग-सुख की प्राप्ति हेत समर्थ है।"

भारतीय कोयल या फ़ाख़ता को देवदारु के वृक्ष पर बैठा दो, स्वभावतः मधुर गीत वह गाने लगेगी। अपने चित्त को स्वगृह में बैठने दो, तो फिर स्वतः, स्वभावतः वा अनायास मीठे से मीठे स्वर उससे निकलने लगेंगे। तुम्हारा ईश्वरत्व ऐसी कोई चीज़ नहीं है जिसे पूरा होना है। आत्मानुभव ऐसी चीज़ नहीं है जो प्राप्त करनी हो, ईश्वर-दर्शन पाने के लिये तुम्हे कुछ करना नहीं है, अपने इर्द-गिर्द इच्छाओं का घटाटोप डाल रखने के रूप में तुमने अब तक जो काम कर रक्खा है उसका निराकरण मात्र करना है। मत डरो, तुम मुक्त हो। तुम्हारे प्रतीत होने वाले बन्धन भी तुम पर अपनी स्वतंत्रता से पड़े हुए हैं। तुम्हारे आमंत्रण के बिना तुम्हे कोई हानि नहीं हो सकती। तुम्हें कोई तलवार नहीं काट सकती जब तक तुम यह न समझो कि वह काटती है। अपनी बेड़ियों और हथकड़ियों को गहनों के समान प्यार करने की कोई आवश्यकता नहीं है। निष्फल अनुरागों को झिटक कर दूर करो, समस्त कुटिलता को जला दो, फिर विश्व में ऐसी कौन सी शक्ति है, जो तुम्हारे जूते खोलने का अधिकार पाकर अपने को धन्य न समझे? अपने ईश्वरत्व का प्रतिपादन करो, परिच्छिन्नात्मा को सोलहों आने भुला दो, मानों उसका कभी अस्तित्व हुआ ही नहीं था। छोटा सा बुलबुला फूटने पर समग्र समुद्र हो जाता है। तुम समग्र रूप हो,

अनन्त रूप हो, सर्वरूप हो। अपनी वास्तविक ज्योति में चमको। ऐ पूर्ण ब्रह्म! तेरे लिये न कोई कर्त्तव्य है, न काम; तुझे कुछ नहीं करना है, सम्पूर्ण प्रकृति दबे सांस से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। तुम्हारी उपासना और पूजा करने का सौभाग्य पाकर संसार अपने ग्रहों को धन्यवाद देता है। प्राकृतिक शक्तियों का प्रणाम और दण्डवंदगी आप स्वीकार करने की कृपा करें।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

Trust, trust the Self Supreme.
The restlessness of Soul is due
To faith in things that seem—
The things that fleet as fog or dew.

The way to keep you fresh and new,
To every secret treasure clue.
Is to assert the real Self
And to deny deluding pelf.

There is no duty to be done
For you, O Every thing, O one!
Why chafe and worry o'er the work,
Feel, feel the Truth, anxiety shirk.

Believe not when the people say;
" Oh, what a fine game you play!"
Believe not, never, in their praise,
No, ne'er can acts degrade or raise.

I never did a personal deed,
Impersonal Lord I am indeed.
In vain the raving critics fought;
The dupes of senses know me not,

I am for each and all the home,
I am the Om! the Om! the Om!

अपने परम स्वरूप पर विश्वास करो, विश्वास करो। मन की अस्थिरता उन पदार्थों में विश्वास रखने के कारण से है कि जो केवल देखने मात्र को हैं और ओस तथा कोहरे के समान उड़ जाते हैं।

अपने आपको ताज़ा और नूतन रखने का मार्ग तथा प्रत्येक गुह्य कोष (ख़ज़ाने) की कुञ्जी अपने असली स्वरूप का प्रतिपादन करना और भ्रम में डालनेवाले धन का त्याग करना है।

ऐ प्रत्येक रूप वा अद्वैत स्वरूप! तेरे लिए कोई कर्तव्य कर्म नहीं। काम पर क्यों व्याकुल और दुःखी होता है।

सत्य को समझो व भान करो और संशय को दूर फेंको।

जब लोग कहें कि तुम बड़ा अच्छा खेल खेलते हो, तो आप उस पर विश्वास मत करो। उनकी प्रशंसा–स्तुति पर कभी भी विश्वास न करो।

नहीं, नहीं; काम न तो तुम्हें गिरा सकते हैं, न उठा सकते हैं।

मैंने व्यक्तिगत काम कभी नहीं किया।
मैं निःसन्देह निराकार प्रभु हूं।
वादी लोग व्यर्थ लड़ते भिड़ते हैं।
इन्द्रियों के अनुचर मुझे नहीं जानते।
मैं प्रत्येक व सबका घर हूं।
मैं ओम् हूं, मैं ओम् हूं मैं ओम् हूं।

O happy, happy, happy Rama !
Serene, and peaceful, tranquil, calm,
My joy can nothing, nothing mar,
My course can nothing nothing bar.

My livery wears gods, men and birds,
My bliss supreme transcendeth words,
Here, there, and every where ;
There, where no more a "where ?"

Now, ever, anon and then ;
Then, when's no more a "when ?"
This, that and which and what ;
That, that's above a "what ?"

First, last and mid and high,
The Arts beyond a "why ?"
One, five and hundred, All,
Transcending number, one and all.

The subject, object, knowledge, sight ;
E'en that description is not right.
Was, is, and e'er shall be,
Confounder of the verb "to be."

The sweetest Self, the truest Me,
No Me, no Thee, no He.

ओ आनन्दमय, प्रसन्न व प्रफुल्लित राम !
    ओ शान्त, स्थिर, निश्चल और स्वस्थ राम ।
मेरे आनन्द को कोई वस्तु बिगाड़ नहीं सकती ।
    मेरे मार्ग में कोई भी बाधक नहीं हो सकती ।
देवता, मनुष्य और पक्षी मेरी चपरास पहने हुये हैं ।
    मेरा असीम आनन्द शब्दातीत है ।
यहां, वहां और सब कहीं ।
    वहां है जहां आगे "कहीं" नहीं ।

—:o—

अब, नित्य, शीघ्र और तब ।
    तब जिस के आगे कोई नहीं "कब" ।
यह वह कौन और क्या ।
    वह जो "क्या" से है ऊपर ।
प्रथम, अन्तिम, बीच का और ऊँचा ।
    वह एक जो "क्यों" से है परे ।
एक, पाँच, सौ और समस्त ।
    एक और सब की गणना से है ऊपर ।

—:o:—

कर्त्ता, कारण, ज्ञान और दृष्टि ।
    यह वर्णन भी ठीक नहीं है ।
था, है और सदा होगा ।
    होने की क्रिया को भ्रान्ति में डालने वाला है ।
सर्वोपरि मधुरात्मा और सत्यस्वरूप ।
    उस में अहं न मैं, न तू, न वह है ।

—:o:—

The Infinite is that, the Infinite this;
And on and on, unchanged is Infinite.
Goes out the Infinite from the Infinite
And there remains unchanged the Infinite.

The outward loss betrays the Infinite
The seeming gain displays the Infinite.
The going, coming, substracting, adding
Are seeming mode and truth the Infinite.

O, what a charm marvellous spreads,
Over every hill and dale,
Wond'rous blue and green my beds
Charming every red and pale.

Glorious, glorious light it sheds
Over every storm and hail.
Beauteous, beauteous one and all,
Heavenly, heavenly blessed call.

——:o:——

अनन्त वह है, अनन्त है यह।

और इसी प्रकार बढ़ाते हुए अनन्त में अनन्त निर्विकार
तथा अनन्त से अनन्त घटा देने पर भी अनन्त रहता है।

परिणाम में अनन्त निर्विकार ही रहता है।

बाह्य हानि अनन्त को उलट दर्शाती है
देखने मात्र लाभ अनन्त का द्योतक है
जाना, आना, घटाना और जोड़ना
सब देखने मात्र दशा है और सत्य केवल अनन्त है।

हरेक पर्वत और घाटी में,
कैसा अद्भुत सौन्दर्य व्याप रहा है।
मेरी शय्या कैसी अद्भुत नीली और हरी है।
प्रत्येक लाल और पीला (दृश्य) कैसा आकर्षक है।

कैसा महोज्ज्वल प्रकाश यह
प्रत्येक घटा और वर्षा में दर्शाता है।
अति सुन्दर, सुन्दर एक और सब
दिव्य, दिव्य और धन्य सब कहलाता है।

——:o:——

ईश्वर-प्रेरणा का स्वरूप।

(ता० २१ फ़रवरी १९०३ को स्वामी राम का दिया हुआ व्याख्यान।)

भारत में एक सभा में बुद्धिमान लोग, बड़े बुद्धिमान लोग उपस्थित थे, और हिन्दू धर्म-ग्रन्थों से पवित्र मंत्र पढ़े जा रहे थे। आचार्यों द्वारा जब उन मंत्रों की व्याख्या हो चुकी और सभा का विसर्जन होनेवाला था, तो एक श्रोता ने एक महात्मा का ज़िक्र किया, जो नगर में पधारा था तथा नदी-तट पर ठहरा था, और उसकी बड़ी ही प्रशंसा की। इस महात्मा का अधिक हाल जानने के लिये लोग स्वभावतः बहुत उत्सुक हुए। एक तोता इस बात-चीत को सुन रहा था, अथवा यह कह लीजिये कि एक ग़ुलाम नगर में आने वाले महात्मा के सम्बन्ध की यहबातचीत सुन रहा था। जो भलामानुस महात्मा की चर्चा कर रहा था उससे पिंजड़े में बन्द तोते या ग़ुलाम ने कहा कि जाइये और मेरे छुटकारे का कोई उपाय उस महात्मा से पूछ आइये। जिस सज्जन की पहले महात्मा से भेंट हुई थी, वह ऐसे समय पर महात्मा के पास पहुँचा, जब वह नदी में स्नान कर रहे थे और यह प्रश्न किया, 'पिंजड़े में बन्द पक्षी, तोते या मान लीजिये, किसी अमुक बंद मनुष्य का छुटकारा कैसे हो सकता है? वह कैसे छूट सकता है"? ज्योंही प्रश्न किया गया, ठीक उसी समय महात्मा जी तेज धारा में बहे जाते दिखाई पड़े। नगर निवासियों ने उन्हें मरे समान देखा। महात्मा जी की

यह दशा देखने वाले लोग चकित होगये और उन्होंने प्रश्नकर्त्ता या तोते अथवा ग़ुलाम का सन्देशा लानेवाले मनुष्य को बहुत डाँटा-डपटा। लोगों ने समझा कि पिंजड़े में क़ैद तोते या बन्द ग़ुलाम की हालत पर रहम खाने के कारण महात्मा जी मूर्छित या बेहोश हो गये हैं। जान यह पड़ा कि महात्मा जी उस दिन सचेत नहीं हुये। दूसरे दिन फिर जब उस स्थान पर सभा हुई जहाँ पिंजड़े में पड़ा पक्षी या बन्द ग़ुलाम था, तब तोते या ग़ुलाम ने महात्मा से भेंट करने वाले भलेमानुस से पूछा, "सन्देशा कहा था"? उस भलेमानुस ने जवाब दिया कि तुम्हारा सन्देश तो कह दिया गया था, परन्तु साथ ही यह कहा कि पिंजड़े में क़ैद तोते जैसे अभागे या बंधे हुए ग़ुलाम सरीखे दुखिया का संदेशा ले जाने के लिये मुझे खेद है। तोते या ग़ुलाम ने पूछा कि यह क्यों? भद्र पुरुष ने कहा कि सन्देश सुनते ही महात्मा जी को मूर्छा आ गई। सब लोगों को आश्चर्य होने लगा। सब चकित हुए कि यह मामला क्या है। किन्तु तोते या ग़ुलाम ने सब भेद पूरा पूरा समझा दिया। तोता या आप कह सकते हैं, ग़ुलाम, बुद्धिमान नहीं था। किन्तु यह बात सुनते ही कि महात्मा जी मूर्छित हो गये, तोते को भी मूर्छा आ गई, और देखने में वह ठीक मृतक सा था। देखने वाले तब चकित होगये कि अद्भुत संदेश था, जिसके कारण दो की मृत्यु हुई। महात्मा के पास सन्देश पहुँचा, तब तो वह मरे, और जब तोते या ग़ुलाम को इसकी ख़बर दी गई, तब ग़ुलाम मरा। क्या आप जानते हैं कि इसके बाद क्या हुआ? जब पास के लोगों ने देखा कि तोता मर गया है, तब उसे पिंजड़े में डाले रखना उन्होंने मुनासिब नहीं समझा। उन्होंने पिंजड़ा खोल दिया, और तुरन्त तोता बाहर निकलते ही उड़ गया और बोला, "पवित्र धर्म-

ग्रन्थों को सुनने के लिये यहाँ नित्य एकत्र होनेवाले ऐ प्यारे लोगो! तुम नहीं जानते कि मुक्ति, अनुभव, ईश्वर-प्रेरणा वा दैव-ज्ञान की प्राप्ति कैसे हो सकती है"। महात्मा से मेरे संदेश का जो उत्तर मिला, उससे मैंने आज वह (मुक्ति का) उपाय सीखा है। महात्मा जी को मूर्छा नहीं आई थी। मूर्छित होकर अर्थात् वेहोश होकर महात्मा जी ने मानो मुझे अनुभव का उपाय बताया था:- मेरे सन्देश का उत्तर दिया था। मुक्ति का मार्ग, अनुभव की विधि ज़ाहिर में मृत्यु है। उसके सिवाय किसी और तरह, अर्थात् बलिदान की अपेक्षा किसी अन्य सरल उपाय से ईश्वरीय ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। आत्मानुभव का उपय है देहाध्यास से ऊपर उठना, आध्यात्मिक रूप से उस अवस्था में प्राप्त होना, आन्तरिक मुक्ति की उस दशा में पहुँच जाना, जहाँ शरीर मानो मृतक है, जहाँ क्षुद्र व्यक्तित्व अचेतन है, बिलकुल बेपता है, बिलकुल पीछे छूट गया है; यही नित्य जीवन का मार्ग है।

संस्कृत में दो शब्द बड़े मार्के के हैं, एक भोग और दूसरा योग। आप लोगों में से अधिकांश योग शब्द से परिचित हैं। शायद आपने योग का प्रतियोगी भोग शब्द भी पढ़ा हो। भोग का शाब्दिक अर्थ है ग्रहण (विषयानन्द), और योग का अर्थ है त्याग। लोग इस संसार में भोग की चर्चा बहुत ही करते हैं। किन्तु सुख-भोग क्या है? सुख-भोग की यदि आप परीक्षा करें अथवा विश्लेषण (analysis) करें, तो आप उसे योग अर्थात् त्याग के सिवाय और कुछ नहीं पावेंगे। बिना त्याग के वास्तविक सुख वा भोग नहीं है, बिना त्याग के दैवी-प्रेरणा वा ज्ञान कहाँ, बिना त्याग के प्रार्थना नहीं। सुख-भोग के समय क्षुद्र व्यक्तित्व अर्थात् भोक्ता को बनाये रखना

ये दोनों बातें साथ साथ ही नहीं निभ सकतीं। जिस क्षण जहाँ सुख-भोग होता है, उसी क्षण वहां भोक्ता स्वयं नहीं होता। जिस क्षण जहाँ ईश्वर-प्रेरित ज्ञान होता है, उसी क्षण वहां "मैं जानता हूं" और "मैं यह करता हूं" का भाव नहीं उपस्थित रह सकता। बड़े बड़े आचार्यों ने इस सम्बन्ध में बतलाया है। "The man who is his own master knocks in vain at the doors of poetry"–"जो मनुष्य अपने आप का स्वामी है, उसका काव्य के द्वार पर खटखटाना व्यर्थ है"। तुम ऐसी दशा में नहीं हो सकते कि कविता भी रचो और उसका मज़ा भी लूटो। ऐसा नहीं हो सकता कि तुम अपने आप के स्वामी भी बनो और साथ ही साथ काव्य-लेखक भी। किसी व्यक्ति को लिखते समय इस बात का ज्ञान नहीं हो सकता कि मैं लिख रहा हूं। जब वह स्वयं ज्ञान का रूप हो जाता है, तभी वह ईश्वरीय ज्ञान तक पहुंचता है। कारीगर को अपनी कारीगरी के भेंट होना ही होगा। जब आप परम कुशल कारीगर का काम निबाहते हैं, तब दूसरों की दृष्टि में आप बड़े भारी कारीगर होते हैं, परन्तु अपने विचार बिन्दु से उस समय आप होते ही नहीं। "मैं कर रहा हूँ" का ज़रा भी विचार आप में मौजूद नहीं होता, आप की सर्व से एकता होगई होती है। आप अपने नुक़ता-ए-ख़याल से कारीगर नहीं हैं, उस समय आप दुभाषिया, लिखना, और लेखक सब एक हुए होते हैं। तब सम्पूर्ण भेद-भाव का विनाश हुआ होता है। यह है ईश्वरीय प्रेरणा का स्वरूप, अथवा प्रेरणा का रहस्य। लोग कहते हैं, "वह आध्यात्मिक पुरुष है"। परन्तु जब वह स्वयं अपने को ईश्वरीय प्रेरणा से युक्त समझता है, तब वह अभिनिवेश में नहीं होता। दूसरे उसे प्रेरणा में समझते हैं। दूसरे लोग इन्द्र-

धनुष की ओर देखते हैं और रंगों की अर्थात् सुन्दर उज्ज्वल रंगों की प्रशंसा करते हैं। वे उन्हें (रंगों को) पसन्द करते हैं, और उनकी प्रशंसा करते हैं। परन्तु जहाँ पर इन्द्र-धनुष दिखाई पड़ता है, वहाँ तो जाइये, परीक्षा कीजिये, सावधानी से देखिये, और आप को कोई भी इन्द्र-धनुष दिखाई न देगा, आपको वहाँ पर इन्द्र-धनुष न दिखाई देगा। इन्द्र-धनुष दूसरों की दृष्टियों में मौजूद है। परन्तु दूसरे (इन्द्र-धनुष के) स्थान की दृष्टि विन्दु से, अथवा जिस स्थान पर दूसरे लोग इन्द्र-धनुष देखते हैं, उस स्थान पर बैठे हुए मनुष्य के दृष्टि विन्दु से वहाँ पर कोई इन्द्र-धनुष नहीं है। इसी प्रकार दूसरों के नुक़ता-ए-ख़याल से एक व्यक्ति ईश्वर-प्रेरणा से प्रेरित, महा-पुरुष, लेखक, विचारशील वा तत्त्ववेत्ता समझा जाता है। परन्तु स्वयं अपने विचार-विन्दु से उस समय उसमें इस तरह का कोई प्रपञ्च नहीं मौजूद होता कि, "मैं लिख रहा हूं" या "मैं प्रेरणा में हूँ"। कारीगर को अपनी कारीगरी की भेंट चढ़ना ही होगा। मक्खियों की भाँति कारीगरों को अपने डंक-प्रहार में अपने प्राण भर देने होंगे। ईश्वरीय प्रेरणा का यही पूरा रहस्य है। मक्खी आप को डंक मारने के बाद मर जाती है। इस प्रकार वही प्रेरित है जो अपने डंक-प्रहार में अपना सम्पूर्ण जीवन भर देता है। यही पूर्ण रहस्य है। यह नहीं हो सकता कि एक ही समय में तुम ईश्वर-प्रेरित भी हो जाओ, और भोग भी करो। किसी वस्तु को भोगने की चेष्टा करते ही तुम प्रेरणा में नहीं रह जाते। जब आप दैवी प्रेरणा में होंगे, तब दूसरे तुम्हें भोग करेंगे, संसार तुम्हें भोग करेगा। परन्तु तुम स्वयं एक ही साथ प्रेरणा-युक्त और भोग करने वाले दोनों नहीं हो सकते। तुम भोगी तो न होगे, परन्तु बढ़कर अर्थात् सुख-स्वरूप होगे।

पतंग दीपक की लौ में जल मरता है, और तब अपना प्रेम प्रमाणित करता है। साधारण मक्खी का पतंगे से भेद करने के लिये यह आवश्यकता होती है कि पतंगा दीपक से दग्ध होकर सिद्ध करदे कि वह पतंगा है। इसी तरह प्रेरणा युक्त मनुष्य ठीक प्रेरणा युक्त मनुष्य समझा जाने के लिये, अथवा उसकी प्रेरणा-शक्ति प्रमाणित और प्रकट होने के लिये यह आवश्यक है कि वह मनुष्य योगी हो; भय से परे वा दूर हो। दूर वह हो जाता है और संसार के लिये सब तरह से मृतकतुल्य होता है।

कभी कोई महान् मेधावी (genious) जीवित प्रकृति को छोड़ कर और कहीं से प्रेरणा नहीं प्राप्त कर सका। प्रकृति से एक उदाहरण लेकर इसका दृष्टान्त दिया जायगा। पानी इस पृथ्वी को जीवन प्रदान करता है। प्रकाश के साथ साथ पानी ही इस संसार में समस्त उपज का कारण होता है। तुम्हारी खेती पानी से पकती है। पानी ईश्वर का बड़ा भारी प्रसाद है। इस देश में लोग वर्षा को नहीं पसन्द करते, परन्तु भारत में और पूर्व के सभी देशों में वृष्टि संसार का सब से बढ़ कर कल्याणकारी पदार्थ है। बड़े बड़े तत्त्वज्ञानी, बड़े बड़े कवि तथा ईश्वर-प्रेरणा के अभिलाषी महापुरुष लोग सदा उस अवसर से लाभ उठाते हैं जब आकाश में मेघ गरजते होते हैं, और ज़ोर से पानी बरसता होता है। सभी कवि और दैवी प्रेरणा पाने के सभी अभिलाषी ऐसे अवसरों को बड़ी उत्सुकता से ढूँढ़ते हैं, और राम स्वयं अपने अनुभव से कह सकता है कि अन्य समयों की अपेक्षा वर्षा होते समय राम के लिये कविता लिखना कहीं सहज होजाता है। जब पानी बरसने वाला होता है, या जब फुहार पड़ती होती है, तब

मन आप से आप उच्चाशय हो जाता है, और मस्तिष्क काव्य-वृत्ति धारण करता है, तथा प्रत्येक वस्तु अत्यन्त भावोन्मेष कारणी (भाव को पैदा करने वाली) बन जाती है। वृष्टि के द्वारा आकाश और पृथ्वी के संयोग के सिवाय और दूसरा ज़ाहिर कारण इस असाधारण अभ्युत्थान का नहीं बताया जा सकता। मेंह के द्वारा पृथ्वी और आकाश का संयोग होता है। भारत में ऐसे अवसरों पर साधारणतः विवाहोत्सव होते हैं। लोग समझते हैं कि पृथ्वी और आकाश का संयोग होता है। इस लिये नर और नारी को भी अपनी विवाह-ग्रन्थि बाँधने दो। अब यहाँ पर यह विचार करना है कि वायुमण्डल हमें ईश्वर-प्रेरणा युक्त किस तरह करता है? और मेंह, ओस तथा पवन के मनोहर झोंके यह क्यों कर देता है? समग्र आकाश मण्डल की प्रेरक कौन सी वस्तु है? विज्ञान हमें बताता है कि आकाश-मण्डल की प्रेरणा का कारण परिपूर्णता है, जिसे तृप्ति (saturation) कहते हैं। अब इस शब्द की व्याख्या होनी चाहिये। एक कटोरा दूध लीजिये, और उस में शक्कर मिलाइये। शक्कर घुल जायगी। थोड़ी और शक्कर डालिये, वह भी घुल जायगी। परन्तु अन्त में एक ऐसी सीमा आवेगी जब शक्कर न घुलेगी। फिर थोड़ी या बहुत आप चाहे जितनी शक्कर छोड़ें, वह घुलेगी नहीं। यह एक स्थिति-बिन्दु है, जहाँ शक्कर की कुछ मात्रा घुली हुई है, और अब दूध अधिक शक्कर नहीं सोक सकता, अब और शक्कर दूध को नहीं स्वीकार है। इस स्थिति बिन्दु को परिपूर्णता का बिन्दु कहते हैं। हम देखते हैं कि पानी किसी सीमा या अंश तक नमक को घुलाता है, परन्तु उस अंश के बाद पानी नमक की और अधिक मात्रा नहीं ग्रहण करता। यदि और नमक छोड़ा जाय तो वह पड़ा रहेगा,

वह तह पर बैठ जायगा, वह घुलेगा नहीं। अब पानी निमक से परिपूर्ण है। पानी मट्टी से भी परिपूर्ण हो सकता है। मट्टी की एक मात्रा हम पानी में छोड़ दें, वह उस में घुल-मिल जायगी। परन्तु थोड़ी और छोड़ें, वह न घुलेगी : और तब पानी को मट्टी से परिपूर्ण समझना चाहिये। हमारा यह वायुमण्डल नत्रजन (नाइट्रोजन=nitrogen), अम्लजन (आक्सिजेन=oxygen), कार्बन डाइओक्साइड (carbon dioxide), सजीव पदार्थ (आरगेनिक मैटर=organic matter) भौतिक कणों (मैटीरियल पार्टिकिल्स=material particles) और जल-वाष्प (ऐक्वीयस वेपर=aqueous vapor) का बना हुआ है। पानी के कण हवा में लटके रहते हैं। एक समय होता है जब वायु-मण्डल जल-वाष्प से परिपूर्ण हो जाता है। ऐसे समय भी होते हैं, जब वायु-मण्डल जल-वाष्प से परिपूर्ण नहीं होता है। परन्तु जब वायु-मण्डल जल-वाष्प से अधिकता के साथ परिपूर्ण होता है, और उसकी थोड़ी सी और मात्रा आजाती है, तब हवा अपने पानी को धारण किये रहने में असमर्थ होजाती है। अतिरिक्त जल, अथवा वायुमंडल में मौजूद वह जल जो वाष्प की उस मात्रा से अधिक होता है जितनी कि वायुमण्डल की परिपूर्णता के लिये यथेष्ट है, वह जल मेंह के रूप में नीचे गिरता है। इस तरह जब वायुमण्डल में उसे परिपूर्ण करनेवाली मात्रा से अधिक जल होता है, तब संसार में वृष्टि होती है, ओस गिरती है, तूफ़ान आते हैं, फुहार वा झींसियाँ पड़ती हैं। ऐसे चमत्कार परिपूर्णता की विन्दु के बाद होते हैं। यह हम पीछे विचारेंगे कि यह परिपूर्णता कैसे संघटित होती है। अभी इतना ही कहना काफ़ी है कि वायुमण्डल को प्रेरणा में आने के लिये, अर्थात् वृष्टि होने के लिये, परिपूर्णता

की सीमा-बिन्दु तक पहुँचना ज़रूरी है, बल्कि उसका अति-क्रमण होना चाहिये, अर्थात् वाष्प को अतिपूर्ण होना चाहिये, बल्कि उसमें जल की और भी अधिकता होनी चाहिये। यह दशा प्राप्त होने पर शुभ फल होते हैं और संसार में महान् परि-णाम होते हैं। इसी तरह यह तुम्हारा मन है, जिसकी तुलना वायुमण्डल या पवन से की जा सकती है। जब मन किसी भावना से परिपूर्ण हो जाता है, और उससे तुम्हारा मन भर जाता है, वह तुम्हारे मन को जीत लेती है अर्थात् तुम्हारे मन को वेध लेती वा ओत प्रोत कर लेती है, और मन में व्याप्त हो जाती है, तुम्हारी समग्र आत्मा में भर जाती है; तब तुम्हें परिपूर्ण कर देती है। अब ध्यान दीजिये। जब तुम्हारा मन किसी भावना से परिपूर्ण हो जाता है, तब आप अपने मनको विचित्र अवस्था में पाते हैं, और उसे आप बेचैनी की हालत कहते हैं। मन की यह हालत उस हालत से ख़ूब ही मिलती-जुलती है जिसे हम निस्तब्धता कहते हैं, जिसे इस भूमि पर हम रुकाव की हालत कहते हैं। और आप जानते हैं कि अति रुकाव (closeness) की हालत में लोग वृष्टि की आशा करते हैं। जब आप अति रुकाव पाते हैं, तब वायुमण्डल में परिपूर्णता होती है, तब परि-पूर्णता के बिन्दु का अतिक्रमण होने पर वृष्टि की आशा करते हैं। इसी प्रकार जब आप का मन किसी भावना से निरानिर परिपूर्ण हो जाता है, तब वह उस हालत में होता है जिसकी उपमा बड़ी ख़ूबी से उस हालत से दी जा सकती है जिसे हम रुकाव या निस्तब्धता की हालत कहते हैं। जब आप का मन आप की प्रिय वस्तु के विचार से परिपूर्ण होता है, तब, आप ने ख़याल किया होगा, एक ऐसा समय आता है कि मन रुकाव, निस्तब्धता या बेचैनी, अथवा अवर्णनीय घबड़ाहट की हालत

में होता है, जिसे लोग अजीब बेचैनी कहते हैं। जब इस दशा का अति क्रमण होता है, जब आप इस दशा को पार कर जाते हैं, तब आप कवि हो जाते हैं, तब कविता आप से टपकने लगती है अर्थात् मधुर पद्यों की वा अति-उत्तम गीतों की वर्षा होने लगती है। यही हालत थी जब आप का चित्त प्रेरणा के बिन्दु को पार कर गया, या उससे आगे बढ़ गया ; तब काले स्थूल अक्षरों में विचार टपक पड़े ; तब ईश्वर-प्रेरणा थी।

यह एक आदमी है। उसके मन में एक विचार बैठता है, एक समस्या हल करने की वह ठानता है। वह उसे फैलाने लगता है, वह हल करने का परिश्रम करता है, और पुनः पुनः परिश्रम करता है ; परन्तु हल नहीं कर पाता। आप में से जिन लोगों ने गणित या तत्त्वज्ञान की भारी समस्याओं को हल करने की चेष्टा की होगी, वे स्वानुभव से राम की बात को पुष्ट कर सकते हैं। हम एक गहरी समस्या को हल करने लगते हैं। प्रारम्भ में जब हम समस्या को हल करने लगते हैं तब हमारा चित्त परिपूर्ण नहीं है, हमारे चित्त में और भी वासनायें व्याप्त हैं। यह पदार्थ प्राप्त करने की इच्छा, अथवा इस वा उस पदार्थ की लगन आप के चित्त में प्रबल है, और साथ ही साथ समस्या हल करने की इच्छा भी आप के चित्त में मौजूद होती है। गम्भीर समस्या हल नहीं हुई। जब आप देखते हैं कि कुछ प्रयत्नों से समस्या हल नहीं हुई, तब आप कुछ बेचैन हो जाते हैं, और दूसरे पदार्थों के प्रति अपनी लगन को दूर कर देते हैं। तब आप अन्य इच्छाओं से अधिक छूट जाते हैं, दूसरे शब्दों में वह विशेष भावना आप के सामने अधिक प्रमुख हो जाती है, आप के चित्त में अधिकाधिक भर जाती है, और दूसरे विचारों को निकाल भगाती है। समस्या अब भी नहीं हल हुई। अन्य

भावों और अनुरागों से तो अधिकतर छुटकारा मिल जाता है, फिर भी आप के चित्त में, संस्कृत की शब्दावली में, अहङ्कार का भाव बना रहता है, कि "मैं यह कर रहा हूं" और "मुझे इसका श्रेय मिलता है"। तब क्या होता है ? समस्या नहीं हल होती। कुछ देर बाद, जब आप उसे हल करने की धुन में लगे ही रहते हैं और उस पर सोचते ही जाते हैं, मैं और तुम का ध्यान बिलकुल दूर हो जाता है, और वही एक भावना आप के चित्त में सर्व प्रधान हो जाती है ; जब मन की यह गति हो जाती है ; तब मैं और तुम, मेरा और तेरा अथवा काल और देश का ध्यान बिलकुल जाता रहता है। आप के चित्त में समग्र स्थान एक ही भावना घेर लेती है, वह आपके दिल में कोई शून्य स्थान नहीं छोड़ती, आपके हृदय में कोई ख़ाली जगह नहीं रखती, और चित्त मानों उस भावना से परिपूर्ण हुआ होता है, तथा उस भावना से आपकी अभिन्नता हुई होती है। अब पतंगा दग्ध होने लगा, मधुमक्खी ने अपना जीवन दे दिया, क्षुद्र अहंकार का कर्त्तापन जाता रहा, भोग का विचार चला गया। जब इस अवस्था में पहुँच हो गई, तब (अहंकार का) बलिदान हो गया, सहसा आप प्रेरणा में आ गये, और आपके अन्दर साधन कौंध जाता है। क्या लोग इस वाक्य का उपयोग नहीं करते, कि "It srikes me", "It struck me", "मुझे यह सूझती है", "मुझे यह सूझी"। बिना इस जीवन में मृत्यु-लाभ के तुम सुख-भोगी और ईश्वर-प्रेरणा में नहीं हो सकते।

कला-कुशल, शिक्षक, तत्त्व-ज्ञानी, और विचार शील लोग अपने अपने क्षेत्र में ईश्वरी प्रेरणा पाते हैं ; परन्तु इस प्रेरणा या आवेश की प्राप्ति केवल परिच्छिन्नात्मा की आहुति या बलि-

दान से होती है। इस संसार में लोग अपने को भोक्ता बनाये रखना चाहते हैं, अपने को कर्त्ता बनाये रखना चाहते हैं, परन्तु वेदान्त प्रकट करता है कि यह प्रकृति के नियमों से संगत नहीं है कि आप किसी चीज़ को भोगें। किसी पदार्थ का भोग करना मनुष्य के लिये नहीं है। भोक्ता (भोग करने वाला) पुरुष झूठा पुरुष है, वह असली पुरुष नहीं है, वह तुम नहीं हो। सब विचारशीलों और तत्त्वज्ञानियों को अपने शरीर, अपने चित्त और अपनी सारी हस्ती का समस्त संसार द्वारा भोग होते देखना होगा। वही रास्ता है। यदि आप भोक्ता होना चाहते हैं तो मुक्ति, आनन्द व भुक्ति का मार्ग आप के लिये बन्द है अर्थात् रुका पड़ा है। आप इस संसार का भोग नहीं कर सकते, नहीं कर सकते। आप के लिये केवल एक ही पथ है। और वह यह है कि आपका देह, मन और सर्वस्व परमात्मा द्वारा भोग किया जाता अथवा परमात्मा द्वारा लीन किया जाता दिखाई दे। जैसा कि हज़रत ईसा प्रभु के भोजन के समय कहता है, " Here eat my flesh, eat it." "Here you will have to drink my blood," "यह, मेरा मांस खालो, खालो।" "मेरा यह रक्त तुम्हें पीना होगा।" "*Very happy is he and blessed is he whose life is a continuous saorifice.*" "वह बड़ा सुखी और भाग्यशाली है जिसका समस्त जीवन निरन्तर बलिदान है।"

परिपूर्णता की उस सीमा पर जब हम पहुँचते हैं, जब मन भावना से भरा हुआ होता है, जब सारी हस्ती उस ख़याल में डूब और लीन हो जाती है; तब महा गवैया (ईश्वर वा ब्रह्म) यंत्र अर्थात् आरगन या बाजे को उठा लेता है, और इस बाजे द्वारा सुन्दर, परम मनोरम, श्रेष्ठ स्वर निकलता है।

तब महान तानें, चमत्कार संगीत इस बाजे से पैदा होते हैं। परन्तु बच्चा जब तक बाजे को अपने ही तक रखना चाहता है, और बड़े बजवैये या गवैये को उस बाजे से काम नहीं लेने देता, तब तक बाजा बेसुरा ही गावेगा। जब तक यह परिच्छिन्नता, यह मिथ्या अहंकार या यह अवास्तविक आत्मा, जो भोक्ता पुरुष है, मौजूद है, और इस शरीर पर अधिकार बनाये रखना चाहता है, तथा इस शरीर को अपने अधिकार से बाहर जाने नहीं देता ; तब तक इस बाजे या देह से बेसुरी तानें ही निकलेंगी। यह यंत्र या शरीर परम देव को दे दो ; इस मिथ्या अहंकार से अपना पीछा छुड़ा लो, इस तुच्छ अहंकार को दूर करो, इस का बलिदान कर दो, और इससे ऊपर उठो। इसके बाद, जब परिपूर्णता के बिन्दु का अतिक्रमण हो जाता है, तब ईश्वर स्वयं इस यंत्र को उठा लेता है, महान् गवैया स्वयं यंत्र को हथियाता है, और इस यंत्र द्वारा फिर संगीत निकलता है, अर्थात् अति सुन्दर स्वर उत्पन्न होते हैं। तब आप ठीक ईश्वरी प्रेरणा में हैं। प्रेरणा ईश्वर की करनी है। जब तुच्छ अहंकार शरीर का क़ब्ज़ा छोड़ देता है, तब मनुष्य निवेशित या प्रेरित होता है।

हमें पता मिलता है कि ईसा मसीह का अपना कर्त्तव्य आरम्भ होने के पूर्व शैतान ने उन्हें बहका कर भोगी बनाने की सर्व प्रकार से ऐसे चेष्टा की थी कि "ये सात लोक हैं, ये सुन्दर सुन्दर सुस्वादु भोजन हैं, ये राज है, अलौकिक चमत्कार करके बड़े नामी होने का यह अवसर है।" ये सभी प्रलोभन और भोग ईसा के सामने रक्खे गये थे। ईसा ने क्या उत्तर दिया था ? "Get behind me, Satan, I will have nothing from thy hands." "शैतान ! मेरे सामने से हट जा, मैं तेरे हाथों से कुछ भी नहीं लूँगा।" ख़ूब, ख़ूब। अमेरिका

और यूरोप के लोगो! ईसा की यह नसीहत अपने सामने रक्खो, "शैतान मेरे सामने से दूर हो, तेरे हाथ से मैं कुछ भी न ग्रहण करूँगा"। वाह्य भौतिक पदार्थों के सब प्रकार के आक्रमण होते हुए भी आप ईसा की इस आज्ञा को अपने मन के आगे रक्खो "ऐ शैतान! मेरे सामने से हट, तेरे हाथ से मैं कुछ नहीं लूँगा"। इस तरह ईसा ने समस्त सांसारिक भोगों को हटा दिया। उसने सूली और वैराग्य ग्रहण किया, और भोग सब त्याग दिये। प्रेरणा का यह रहस्य वा चिन्ह तुम्हारे सामने रक्खा है। जब तक भोक्ता या कर्त्ता के भाव का अनुभव तुम्हारे मन में हो रहा है, तुम निवेशित या प्रेरित नहीं हो सकते, नहीं हो सकते। जब भोक्ता या कर्त्ता का विचार (मैं काम कर रहा हूँ, मैं कर रहा हूँ, मुझे वाह वाही मिलना चाहिये) बिलकुल दूर हो जाता है, केवल तभी आप प्रेरित होते हैं।

एक कहानी से राम इसकी समाप्ति करेगा। हिन्दू धर्म-ग्रन्थों में असुर नाम की तीन व्यक्तियों की अति उत्तम कथा है। इन तीन व्यक्तियों में विलक्षण शक्तियां थीं, वे सूरमा थे, कोई उनसे पार पाने वाला नहीं था। वे विलक्षण पुरुष थे। लोगों ने उनसे युद्ध किया और तुरन्त हार गये। असंख्य शत्रु आये और तुरन्त पराजित हुए। इन तीन पुरुषों से लड़ने वाले हज़ारों की संख्या में आये और हार गये। इस तरह बहुधा पराजित होने पर शत्रुगण एक महात्मा के पास गये, और पूछा कि इन तीन व्यक्तियों को किस तरह नीचा दिखाया जा सकता है। महात्मा ने कहा कि तुम्हें उनकी अजेयता के कारण का पता लगाना चाहिये कि ये तीन असुर अजेय क्यों हैं। बड़े प्रयत्न और श्रम से मालूम हुआ कि

इन तीनों की अजेयता का कारण यह है कि ये तीनों कर्त्ता या भोक्ता होने का विचार अपने मन में कभी नहीं रखते। विजय प्राप्त हो जाने पर वे उसका कुछ भी विचार नहीं करते थे। वे विजय का सुख भोगने की परवाह नहीं करते थे। लड़ते समय यह विचार कि "मैं इस शरीर रूप से लड़ रहा हूँ" अथवा यह विचार कि "मैं लड़ रहा हूं" उनमें बिलकुल नहीं रहता था। इस संसार में सूरमा ऐसे ही होते हैं। जैसे लोग कहते हैं कि "मैं समग्र श्रोत्र वा श्रवण रूप हूं" उसी तरह, आप जानते हैं, कि युद्ध में लड़ते समय प्रत्येक सूरमा समग्र युद्ध या युद्ध मय होता है। "मैं कर रहा हूं" के विचार के लिये कोई स्थान ही नहीं बचा रहता। वहां उसका शरीर मानो यंत्रवत् हो जाता है। वह संग्राममय हो जाता है, वहां पैर हाथ ईश्वरत्व से परिपूर्ण होते हैं। इस तरह ये लोग जब कभी लड़ते थे, तब रणमय हो जाते थे। "मैं लड़ रहा हूं" इस विचार को वे क्षण भर के लिये भी अपने पास नहीं फटकने देते थे। जिस तरह से एक यंत्र काम करता है उसी तरह उनके शरीर काम करते थे। ईश्वर के यंत्र अर्थात् दैवी यंत्र होकर उनके शरीर काम करते थे। उनकी सफलता की यही कुंजी थी; कोई उनसे नहीं जीत पाता था। उनकी अजेयता का भेद मालूम होने पर अब महात्मा ने इन तीन योद्धाओं को जीतने का उपाय शत्रुओं को बताया। उसने उन शत्रुओं से कहा कि जाकर उनसे लड़ाई छेड़ो और फिर भाग खड़े हो, उनके पास जाओ और उन्हें लड़ने में लगा लो, और जब वे आक्रमण शुरू करें तो उन्हें विजयी छोड़ कर चल दो। इस तरह उन्हें रण क्षेत्र में लाकर अपनी अपनी पीठ दिखा दो। उन सूरमाओं के शत्रुओं ने उन्हें उत्तेजित किया और भाग खड़े हुए। इस तरह उन वीरों के

शत्रु कई वार फिर पराजित हुए। इस प्रकार धीरे धीरे वे तीन अजेय शूरवीर अपनी अमोघ स्थिति से हटा लिये गये, अपनी वास्तविक अजेयता से सरका कर अपने शरीरों में ले आये गये, उन्हें यह विश्वास करा दिया कि वे विजयी हैं। उन्हें विश्वास करा दिया गया कि वे महान् हैं, वे विजेता हैं। इन बारम्बार विजयों ने उनके भीतर यह ख़याल जमा दिया कि वे विजयी हैं, वे विजेता हैं। इस प्रकार ये तीन मनुष्य शरीर के पिंजड़े में उतार लिये गये अथवा ये तीन आदमी शरीर के कारागार में डाल दिये गये। "मैं कर रहा हूं" के विचार ने या "मैं महान हूं" की भावना ने उन पर अधिकार जमा लिया और उन्हें इससे क़ैदख़ाने में बन्द कर दिया। उनमें का ईश्वर तो अब स्थानच्युत कर दिया गया, और उसका स्थान तुच्छ अहंकार ने ले लिया, और अब उन पर विजय पाना तथा पकड़ कर क़ैद कर देना कुछ भी कठिन काम नहीं रह गया था। अब यह कठिन काम नहीं था, वे तुरन्त हराये गये और तुरन्त पकड़ लिये गये।

अब इस कहानी के प्रयोग पर ध्यान दीजिये। जब तक कोई काम तुम इस ढंग से करते रहते हो कि मानों तुम्हारा शरीर ईश्वर के हाथ में एक यंत्र होता है, तुम्हारा व्यक्तित्व ईश्वरत्व में लीन हुआ होता है, जब तक तुम्हारी यह स्थिति रहती है, तब तक तुम अजेय हो, और उन तीनों असुरों की भांति तुम "मैं भोग रहा हूं, या मैं कर रहा हूं" की भावना से परे हो और अजेय हो। पर जब लोग आकर तुम्हारी तारीफ़ शुरू करते हैं, तुम्हें (अतिशयोक्तियों से) फुलाने लगते हैं, तुम्हारी ख़ुशामद करते हैं, चारों ओर से तुम्हारी प्रशंसात्मक आलोचना करते हैं, तब तुम्हें विश्वास करा दिया जाता है कि तुम विजयी हो, सूरमा हो, तुम विजेता हो, दूसरे पराजित हैं, तुम्हारे

प्रतिद्वंद्वी तुम्हारे विरुद्ध हैं; तब तुम उन तीनों असुरों के समान हो जाते हो। "मैं यह कर रहा हूं" की भावना ही तथा "मुझे कृति का भोग करना चाहिये" "मैं भोक्ता हूं" का विचार मात्र ही तुमको क़ैद कर लेता है, तुम्हें शरीर के पिंजड़े में उतार लाता है। तुम हो वीते, शक्ति जाती रही, शक्ति लुप्त हो गई। बाइविल में भी क्या आप नहीं देखते कि जब ईसा मसीह पहाड़ पर से ताज़ा ताज़ा आया था, तब उसमें बड़ी शक्ति थी। वह अपने मित्रों के बीच में रहने लगा, उसने बहुत बातचीत की, और उसे कहना पड़ा, "Who is it that touched me? I find my power going out of me." "किसने मुझे छू लिया? मैं देखता हूं कि मेरी शक्ति मुझसे निकली जा रही है।" यह हमें इञ्जील में मिलता है। वहां भी तुम्हें वही बात दिखाई पड़ती है। "मैं कर रहा हूं, मैं भोग रहा हूं" जब आप इस भाव से परे होते हैं, तब ईश्वर आपके द्वारा काम कर रहा है, और आप ईश्वर-प्रेरित हैं; किन्तु जब आप कोई काम करके लोगों की समालोचनायें और अपने अनुकूल आलोचनायें, तथा लोगों की तारीफ़ें, वा लोगों की ख़ुशामदें अंगीकार करते हैं, तब आपकी शक्ति तुरन्त जाती रहती है। वह तुरन्त निकल जाती है, वह शक्ति फिर पिंजड़े में डाल दी गई। पिंजड़े से बाहर निकलो, और तुम ईश्वर-प्रेरित हो। और फिर पिंजड़े में तुम चले जाओ, तो तुम्हारा अन्त हो गया।

कल्पना करो कि यहाँ एक सुन्दर घड़ी है। वह ठीक है और दिन रात चल रही है। वह एक प्रबल चुम्बक के निकट आती है और आकर्षित हो जाती है, लोहे के स्प्रिंग आकर्षित हो जाते हैं। घड़ी अब चल नहीं सकती, अब वह बेकार है, समय नहीं बताती। अब इसके साथ मैं क्या करूँ? घड़ी को ज़मीन

में तोप दो, आकर्षणशील प्रभावों से उसे दूर रक्खो, वह चुम्बक के आकर्षण से छूट जायगी, वह अपनी पहले की कार्य-शक्ति फिर वापिस पा जायगी, और आप फिर उसका उपयोग कर सकते हैं। तुम्हारे मनों के भीतर तुम्हारा निजात्मा स्वर्गीय वा ईश्वरीय है। प्रत्येक बच्चा स्वभाव से ही प्रेरित होता है। प्रत्येक बच्चा स्वभाव से ही कवि होता है। और यदि आप जीना चाहें, तो ईश्वरीय नियमों के अनुसार जीवन निर्वाह करें, यदि आप ईश्वर की ताल से मिले हुए रहते हैं; तो आप सदा प्रेरित हैं। यदि आप अपनी सच्ची आत्मा या स्वरूप से मिले हुये रहते हैं, यदि आप अपने अन्तर्गत ईश्वर से, अपने निज स्वरूप या आत्मा से सदा अपना संसर्ग बनाये रखते हैं, तो आप हर घड़ी प्रेरित हैं। आपमें कसर यही है कि आपका मन सब तरफ़ से संसारी चुम्बकों, लौकिक संगों के संसर्ग में आता है, और वे आपको आकर्षित कर लेते हैं और आपको अव्यवस्थित कर देते हैं, तब आप कार्य-कारिणी अवस्था में नहीं रह जाते बल्कि गड़बड़ा जाते हैं। यदि आज आप प्रेरित नहीं हैं, तो एक मात्र कारण यही है कि आप अपने को यथेष्ट गतसंग या पृथक् स्थित वा विच्छिन्न नहीं रखते। सांसारिक पदार्थों द्वारा आप अपने को आकर्षित होने देते हो, मुग्ध होने देते हो, आप अपने को उनके मनमाने खेल की वस्तु बन जाने देते हो। यदि आप अपनी प्रारम्भिक शक्तियों और प्रेरणा को फेरना चाहते हैं, तो कुछ देर के लिये अपने को गतसंग रखिये, वा पृथक् स्थित रखिये। अपने को वास्तविकता में, दैव में, ईश्वर में अर्थात् सच्ची आत्मा में तोप लीजिये। आत्म-भावना में वा सत्य में अपने को गाड़े रखिये। कुछ काल के लिये अकेले रहिये. वास्तविकता के संस्पर्श में रहने के लिये दिन का कुछ समय

अलग कर लीजिये। ईश्वर में अपने आपको डुबा दीजिये, अर्थात् गाड़ लीजिये। यह कीजिये और आपको खींच लेनेवाली इन सांसारिक पदार्थों की विनाशक आकर्षण-शक्ति और मोह लेनेवाली अशुद्ध सम्मोहन-शक्ति दोनों छोड़ देंगी, आपका मन पुनः कार्य-कारिणी अवस्था में आ जायगा। आप फिर प्रेरित हो जायँगे।

कुछ दिनों तक समुद्र में चलते रहने पर जहाज़ ख़राब हो जाते हैं अर्थात् अव्यवस्थित हो जाते हैं। तब मरम्मत के लिये कुछ दिनों तक उन्हें डाक (जहाज़ी मरम्मतख़ाने) में रखने की ज़रूरत पड़ती है। इसी तरह से बहुत समय तक सांसारिक मामलों में अर्थात् सांसारिक झगड़ों में रहने से, मोहनेवाली परिस्थितियों के बीच में रहने से, बिगाड़ने वाली और थकाने-वाली तथा निर्बलकारिणी हालतों में रहने से आप अपने को बेसिलसिले कर लेते हैं, आप गिर जाते हैं, प्रेरणा की अपनी आन्तरिक स्वाभाविक शक्तियों को आप खो देते हैं। जिस तरह आप अपने जहाज़ों के साथ करते हैं, वैसा ही व्यवहार आप को अपने शरीरों के साथ करना चाहिए। अन्ततः कुछ समय के लिये अपने शरीरों को मरम्मतशाला में रखिये, पूर्वोक्त प्रभावों से दूर रखिये। कम से कम कुछ काल के लिये अपने शरीरों को आत्मवृत्ति में रखिये। ऐसी पुस्तकें पढ़िये जो आप को प्रेरित करें, उन लोगों की संगति में रहिये कि जो निवेशित करें। अपने आप एकाकी रहिये। कुछ समय ध्यान में लगाइये, और आप अपनी प्रेरणा की शक्ति वापस पा लेंगे। क्या तुम्हें अपने शरीर को रोज़ धोने की ज़रूरत नहीं होती, क्या तुम्हें अपने घर को नित्य साफ़ किये जाने तथा झाड़े जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती? इसी तरह से आप के मन की भी सफ़ाई और पोताई

की ज़रूरत है, उसके नित्य धोये और नहलाये जाने की ज़रूरत है। जब तक लौकिक भावनायें, लौकिक संग या सांसारिक भोग के विचार या "मैं यह कर रहा हूं" इत्यादि के विचार आप में वर्तमान हैं, जब तक आप बिलकुल बलिदान नहीं हो जाते, तब तक आप के लिये कोई आशा नहीं है। शरीरोत्सर्ग (crucifixion) के सिवाय कोई दूसरा उपाय प्रेरणा का नहीं है।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

सब इच्छाओं की पूर्ति का मार्ग।

(ता० १२ दिसम्बर १६०२ को हर्मिटिक ब्रदरहुड अर्थात् साधु संग के सामने दिया हुआ स्वामी राम का व्याख्यान।)

आप के इन नाना रूपों में मेरे निजात्मन्,

विषय शुरू करने से पहिले भारत की आर्थिक अधोगति पर कुछ शब्द कहने हैं। शायद एक समय ऐसा था जब भारत आज कल के सम्पूर्ण यूरोप से भी अधिक धनवान् था। आज अमेरिका में जितने रत्न, हीरे, मोती और लाल हैं, उनकी अपेक्षा भारत में अधिक थे ; ऐसा एक समय था। एक दिन भारत वर्ष भी आर्थिक उन्नति के शिखर पर था। समय समय पर राष्ट्र के बाद राष्ट्र ने भारत को धर दबाया। यूनान भारत की बदौलत अमीर हुआ, ईरान भारत की बदौलत अमीर हुआ, अफ़ग़ानिस्तान भारत की बदौलत अमीर हुआ, और आज इँग्लैंड भारत की बदौलत दौलत बटोर रहा है। भारत वास्तव में किसी समय सोने और रत्नों का भांडार था।

हमें पछतावा नहीं है। भौतिक वैभव में आज भारत के पिछड़ जाने का हमें खेद नहीं है। हम जानते हैं कि यह एक दैवी विधान है, यह ईश्वरीय विधान है, अथवा हमारी अपनी प्रकृति का यह नियम है, जो मामलों का नियमन कर रहा है, जिसके अनुसार प्रत्येक बात हो रही है। हम जानते हैं कि दैवी-हाथ हमारे मामलों का सञ्चालन और नेतृत्व कर रहा है, और यह जानकर हम अपनी आर्थिक दरिद्रता पर व्याकुल नहीं होते।

आर्थिक सम्पत्ति की हानि पर हमें सोच नहीं। इन वस्तुओं की, अर्थात् वैभव के इन भौतिक पदार्थों की, अथवा इन सब की परीक्षा हो चुकी है। भारतवासियों से ये तराज़ू में तौले जा चुके हैं और निस्सार पाये गये हैं। अमेरिका अभी बिलकुल बालक है अर्थात् नन्हा बालक है, बल्कि बच्चा है। इसी तरह यूरोप भी बिलकुल बालक है। इन पदार्थों की वे अभी परीक्षा ही कर रहे हैं। भारत ने भौतिक क्षेत्र में इन का पूरा अनुभव कर लिया है, इन सब को तौला है और इन्हें निस्सार पाया है। भारत इन्हें फेन का एक बूँद मात्र समझता है, और कुछ नहीं। ये आपके आनन्द वा सुख के कोई साधन नहीं। ये आपको सचमुच सुखी नहीं बना सकते, कदापि नहीं, कदापि नहीं। लोहा और सोना ख़रीदने के ही लिये लोहा और सोना ठीक हैं, बस। सुख वा आनन्द इन भौतिक पदार्थों की ही जाति की वस्तु नहीं है। इन से आनन्द ख़रीदा नहीं जा सकता। सुख वा सच्चा आनन्द इन चीज़ों से नहीं मोल लिया जा सकता।

सुख का रहस्य कुछ और ही है। रहस्य यह है कि "The more you seek things, the more you lose them." जितना ही तुम चीज़ों को ढूँढ़ते हो, उतना ही तुम उन्हें खोते हो।" जितना ही आप कामना से परे रहते हैं, उतना ही आप अपने को आवश्यकता से भी परे पाते हैं, उतना ही भौतिक पदार्थ आपका पीछा करते हैं। आज-कल के भारतवासी भी अर्थात् सांसारिक बुद्धिवाले भारतवासी भी इस रहस्य को नहीं जानते, और तीक्ष्ण तथा गम्भीर विचार के अभाव के कारण वे किसी अपूर्व घटना को इनका कारण बताते हैं, जो वास्तव में कारण नहीं। भारत का राजनैतिक पतन क्यों

हुआ, अथवा आर्थिक दृष्टि से भारत इतना नीचा क्यों है? कारण यही है कि आज कल के भारतीय उन दिनों के भारतीय हैं जब भारत का पतन शुरू हुआ था। इनमें व्यावहारिक वेदान्त का अभाव है। आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि वही भारत जो वेदान्त और परमार्थनिष्ठा का घर था, एकता का मूलस्रोत था, 'सवएक है' की भावना का मूल-स्थान था; वही भारत अर्थात् वही स्रोत स्थान जिससे दिव्य-ज्ञान, आध्यात्मिक-ज्ञान, आत्म-सम्मान, आत्म-ज्ञान और आत्म-गौरव की गंगा बहती थी, वही भारत आज अमली वेदान्त से हीन है। और यही भारत के पतन का कारण था। आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा; परन्तु अब इस विषय की आलोचना करने के लिये समय नहीं है। यदि समय मिला तो किसी भावी व्याख्यान में इस पर विचार किया जायगा कि राष्ट्र क्यों गिरते और उठते हैं? वाह्य दृश्यों की आड़ में कौन सी ऐसी वस्तु है जो एक क़ौम को गिराती और दूसरी को उठाती है? कौन सा चन्द्र है जो राष्ट्रों के ज्वार-भाटे का कारण होता है?

इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि बिना आध्यात्मिक पतन के किसी राष्ट्र का किसी भी दृष्टि से पतन नहीं हो सकता। और एक भारतीय के मुख से, जिसने भारत तथा अन्य राष्ट्रों का पूरा पूरा अवलोकन किया है, निकले हुये इन शब्दों का आप स्वागत करेंगे। इस कथन में शायद अन्य भारतीय राम से सहमत न हों; किन्तु राम अपने ही प्रमाण पर, गहरे अवलोकन के प्रमाण पर यह बात कहता है। यह क्या बात है कि अमेरिका इस समय तेज़ी से आगे बढ़ रहा है और विलक्षण उन्नति कर रहा है? आर्थिक उन्नति की दृष्टि से अमेरिका इतनी शीघ्रता से क्यों अग्रसर हो रहा है? कारण यही है

कि अमेरिका-निवासी अज्ञाततः इस स्थूल लोक में वेदान्त का जीवन बिता रहे हैं। अमेरिका-वासी क्योंकर व्यावहारिक रूप से वेदान्त की ज़िन्दगी बसर कर रहे हैं, और वेदान्त उनकी भौतिक उन्नति का कारण क्यों है, इस पर कुछ अधिक कहने की ज़रूरत नहीं है ; परन्तु बात है यही। सत्य, सत्य, केवल सत्य ही गौरव पावेगा। वास्तविकता, वास्तविक चरित्र, केवल स्वच्छ चरित्र को गौरव और सफलता प्राप्त होगी। दूसरा कोई इसे न पावेगा।

सब ब्योरे को छोड़कर, और सच्चे परन्तु देखने में विपरीत कथन पर टीका-टिप्पणी करना छोड़कर, जो कौतूहल-जनक बातें हमने अभी कही हैं उन पर और विचार न करके अब हम आज के विषय पर आते हैं।

इंजील में लिखा है कि, "Ask and ye shall find it ; knock and it shall be opened unto you."—"माँगो और तुम उसे पाओगे ; खटखटाओ और दरवाज़ा तुम्हारे लिये खुल जायगा।" उधर हिन्दू कर्म-वाद का उपदेश देते हैं, जिसका अर्थ है कि प्रत्येक कामना मानों अपनी पूर्त्ति अपने साथ लिये रहती है, प्रत्येक अभिलाषा और प्रत्येक संकल्प किसी न किसी समय पूर्ण होने का वचन देता है ; अर्थात् संकल्प अवश्य पूर्ण होगा ही। राम इस विषय पर व्याख्यान न देगा। इस समय केवल इसकी चर्चा ही यथेष्ट होगी। कहा जाता है कि बाग़ में दिखाई पड़नेवाली हर एक कली अपनी आशा पूर्ण हुई देखती है, कभी न कभी खिलती और फूलती है। और पशुओं की सब उम्मेदें भी कार्य में परिणत होती हैं। इस संसार में कोई भी उद्योग, कोई भी शक्ति, अथवा कोई भी पदार्थ व्यर्थ नहीं जाता; कोई भी चीज़ नष्ट नहीं होती। शक्ति के दृढ़

आग्रह (law of persistence of force), उद्यम के संरक्षण (law of conservation of energy), पदार्थ के अविनाशीपन के नियम (law of the indestructibility of matter) हम लिपि-बद्ध पाते हैं; और इसी तरह मानसिक क्रियाशीलता तथा मान-सिक कामनायें, संकल्प और अभिलाषा अर्थात् मानसिक उद्योग-शक्ति है, इसका भी नाश कैसे हो सकता है? इसमें भी फल लगेंगे ही, देर या सवेर इसकी भी पूर्ति होगी। इस तरह सब आकांक्षायें पूर्ण ही होंगी। कर्म-वाद का सार और संकलन यही है। हिन्दू उपदेश देते हैं कि इस नियम के अनुसार "माँगिये और आप उसे पावेंगे, खटखटाओ और दरवाज़ा तुम्हारे लिये खुल जायगा।" किन्तु क्या सचमुच ऐसा ही है? क्या वस्तुतः ऐसा ही है? अपने दैनिक जीवन में क्या हमें ऐसा ही अनुभव होता है? है तो ऐसा ही। परन्तु कर्म-वाद का साधारणतः जो अर्थ लोग लगाते हैं, उसके अनुसार होने वाले अपने अनुभव से यदि आप इसे सिद्ध करना चाहते हैं; अथवा साधारण लोग इन वाक्यों—"माँगिये और आप उसे पावेंगे, खटखटाइये और वह आपके लिये खुल जायगा" से जो अर्थ ग्रहण करते हैं, उस ढंग से यदि आप इस वक्तव्य को प्रमाणित करना चाहते हैं, तो आप भूल करेंगे। आप अपने को अस्थिर या विक्षिप्त पावेंगे। आप देखेंगे कि यह काम नहीं देता; यह सिद्धान्त व्यवहार में नहीं आता। यह कथन पूर्ण सत्य नहीं है, यह सत्य का एक अंश मात्र है। बाइबिल में या हिन्दुओं द्वारा जो यह कहा गया था कि "खटखटाइये और द्वार आपके लिये खुल जायगा, माँगिये और वह तुम्हें मिल जायगा", तब इससे जो अर्थ ग्रहण किया जाता था वह साधारण लोग नहीं समझते या उसकी उपेक्षा करते हैं। मतलब यह था कि आपको उसकी

क़ीमत भी देना होगी । उसका मूल्य भी देना पड़ेगा । यह मत भूलो कि उसका मूल्य भी अत्यन्त ज़रूरी है। मूल्य की भी चर्चा हम इंजील में पाते हैं, "he that would keep his life will lose it" "जो अपना जीवन चाहता है पहले उसे वह खोना होगा।" इसका अर्थ क्या है ? इसमें यह अर्थ गर्भित है कि जो याचना करेगा अर्थात् जो उत्कंठा तथा आकांक्षा करेगा, वह इसे नहीं पावेगा । उत्कंठा, याचना तथा आकांक्षा करने में हम अपने जीवन को बचाना चाहते हैं। "जो इस प्रकार अपने जीवन को बचायगा वह इसे खो देगा।"

"Man shall not live by bread alone." "मनुष्य का जीवन केवल अन्नाधीन नहीं है।" देखिये, प्रभु की प्रार्थना में हम कहते हैं, "आज के दिन हमें हमारी नित्य की रोटी दीजिये", और फिर यह भी कहते हैं कि मनुष्य का जीवन केवल अन्नाधीन नहीं है। इन कथनों की संगति बैठाइये। इन्हें अच्छी तरह समझिये। "हमें हमारा नित्य का भोजन दीजिये", इस ईश-विनय का यह अर्थ नहीं है कि आप माँगते रहें, इसका यह मतलब नहीं कि आप अनुनय-विनय करें, और अभिलाषा अथवा आकांक्षा करें। कदापि नहीं। यह अर्थ नहीं है। इसका अभिप्राय यह था कि एक महाराजा, वा एक सम्राट् को भी, जिसे नित्य का भोजन न मिलने का ज़रा सा भी खटका नहीं है, यह प्रार्थना करनी चाहिये। एक राजकुमार को भी, जिसे नित्य का भोजन अवश्यमेव मिलने का पूरा विश्वास है, यह प्रार्थना करनी ही चाहिये। यदि ऐसा है तो स्पष्ट है कि "हमारा नित्य का भोजन हमें दीजिये" का अर्थ यह नहीं है कि लोग याचना-वृत्ति धारण करें, अथवा वे आर्थिक समृद्धि की अभिलाषा करें। यह अर्थ नहीं है। प्रार्थना का अर्थ यही है कि हर एक को, वह चाहे

राजकुमार हो या महाराजा अथवा साधु, कोई भी क्यों न हो, अपने इर्द-गिर्द की सब वस्तुयें, विपुल धन-राशि, समस्त दौलत, सुन्दर और मनोहर पदार्थ अपने न समझने चाहियें; उसे इन सब (धन-दौलत आदि) को अपनी मिलकियत न माननी चाहिये, बल्कि ऐसा समझना चाहिये कि यह सर्वस्व ईश्वर का है; अर्थात् ईश्वर का है, मेरा नहीं है, मेरा नहीं है। इस प्रार्थना का अर्थ मांगना नहीं है, बल्कि त्यागना है। सुनिये, "हमारा नित्य का भोजन हमें दीजिये" का अर्थ माँगना और चाहना नहीं है, बल्कि इसका अर्थ त्यागना और दे देना है। दे डालना अर्थात् ईश्वरार्पण करना उक्त प्रार्थना का अर्थ था। आप समझ सकते हैं कि किसी बादशाह का "आज के दिन हमें दीजिये इत्यादि" ऐसा प्रार्थना करना कितना अनुचित है; यदि प्रार्थना का साधारण अर्थ ग्रहण किया जाय, तो कितना अयुक्त है! यह प्रार्थना तभी युक्ति संगत होती है जब महाराजा इस भाव से प्रार्थना करे कि अपने कोष के सब रत्न, अपने घर की सारी दौलत, घर तक को, मैं त्याग करता हूँ, मानों यह सब कुछ ईश्वरार्पण करता हूं, या मानों अपने सर्वस्व पर से अपना अधिकार उठाता हूं। यह कहा जा सकता है कि इन सब वस्तुओं से वह अपना सम्बन्ध तोड़ता है, और इनसे दूर खड़ा हो जाता है। वह साधुओं का साधु होता है। वह कहता है, यह ईश्वर का है। मेज़, मेज़ पर रक्खी हुई सब चीज़ें उस (ईश्वर) की हैं, मेरी नहीं; मेरा कुछ भी नहीं है। जो कुछ भी मिलता है, सब प्यारे (ईश्वर) से मिलता है। प्रार्थना द्वारा वह यही अनुभव करता है। "आज मुझे दीजिये इत्यादि" का अर्थ जैसा राम द्वारा अभी समझाया गया है यदि आप ग्रहण करें तो आप इसकी "मनुष्य का जीवन केवल अन्नाधीन नहीं

है" इस कथन से संगति पाइयेगा; तभी तो आप दोनों वचनों में संगति पाइयेगा, अन्यथा असंगति।

इंजील में हम यह भी पाते हैं कि "Seek the kingdom of heaven and all things will be added unto you." "स्वर्ग का साम्राज्य तलाश करो, और अन्य सब चीज़ें तुम्हें मिल जायँगी"। यही कुंजी है। यह प्रार्थना की कुंजी है। यही स्तुति-वाक्य है जो ईसा ने प्रभु-प्रार्थना सम्बन्धी बोला, और वह वाक्य यह है कि "पहले स्वर्ग का साम्राज्य ढूँढ़ो, फिर अन्य सब चीज़ें आप ही मिल जायँगी"।

फिर इंजील में यह भी है कि:—"In sorrow she should bring forth child." "रंज में उसे बच्चे की प्राप्ति होनी चाहिये।" खोई हुई कड़ी अथवा ग़ायब टुकड़ा इस वाक्य में हमें मिलता है। बच्चा तो वह पायेगी, किन्तु रंज उसका मूल्य है। इच्छा फल लावेगी, आप जो कुछ चाहते हैं वह सामने आवेगा, आपकी जो कुछ अभिलाषा है उसकी पूर्ति होगी; परन्तु शोकरूपी मूल्य आपको देना होगा। "रंज में उसे बच्चे की प्राप्ति होनी चाहिये", यह केवल नारी के लिये नहीं कहा गया है। यह हर एक के लिये कहा गया है। इच्छायें फलवती होंगी, परन्तु क़ीमत देने पर। क़ीमत क्या है? रंज। इस रंज शब्द की व्याख्या की भी अपेक्षा है। रंज का अर्थ है सब इच्छाओं का त्याग। कौन अपनी इच्छायें पूर्ण होती देखेगा? कौन? क्या वह जो अपनी इच्छाओं में आसक्त है? क्या वह जो दिल व जान से अपनी इच्छाओं के अधीन हो जाता है? नहीं, नहीं, जो मनुष्य मानों शाहाना ढंग से इच्छा में रमण करता है, जो तटस्थता पूर्वक अथवा उदासीन भाव से

इच्छाओं में रमण करता है, केवल वही अपनी अभिलाषाओं को फलते-फूलते देखेगा।

लोग कहते हैं कि प्रार्थनाएँ सुनी जाती हैं। प्रार्थनायें क्या चीज़ हैं? प्रार्थना शब्द का अर्थ (कुछ लोग प्रार्थना शब्द का अर्थ लगाते हैं) माँगना, याचना करना, इच्छा करना, अभिलाषा और कामना करना है। यदि प्रार्थना का अर्थ इच्छा करना, कामना करना, अभिलाषा करना, माँगना और याचना करना माना जाय तो क्या ऐसी प्रार्थनायें सुनी जाती हैं? यह कथन ग़लत है। यदि प्रार्थना शब्द का अर्थ आप माँगना, याचना करना, इच्छा करना तथा कामना करना समझते हैं, तो ऐसी प्रार्थनाएँ कभी नहीं सुनी जातीं। कोई चीज़ माँगने से कभी नहीं मिलती। याचना करने से कभी वस्तु नहीं हाथ आती। माँगने से आप कुछ न पावेंगे। परन्तु 'प्रार्थना' शब्द से अभिप्राय साधारणतः कुछ और ही बढ़ कर है। वह क्या? प्रार्थना शब्द का अर्थ ठीक उस अवस्था में उठना है कि जिसमें आप कामना से परे हो जायँ, जिसमें "Thy will be done" "तेरी मर्ज़ी पूरी हो" इस वाक्य से आपकी अभेदता वा समानता हो जाय। सावधान! प्रार्थना का अर्थ माँगना, हाथ फैलाना, इच्छा करना तथा निज इच्छा पूर्ण कराना नहीं है। प्रार्थना को लोग अपनी इच्छा पूर्ण होने का उपाय समझते हैं। आत्मा से वे तुच्छ आत्मा, या यह भिखारी आत्मा समझते हैं; किन्तु प्रार्थना का तत्त्वार्थ अर्थात् प्रार्थना का सारांश इस भावना में है कि "तेरी मर्ज़ी पूरी हो"। जब शरीर सब प्रकार के क्लेशों के, सब तरह की पीड़ा और व्यथा के अधीन होता है, तब भी आप के हृदय से अर्थात् हृदयों के हृदय से यह विचार, या इसे भावना कह लीजिये, उत्पन्न होता है, "तेरी इच्छा पूर्ण

हो"। यह बहुत ठीक है। जब शरीर रोगी होता है, जब आपके इर्द-गिर्द की सब परिस्थितियाँ आपके विपरीत होती हैं, अर्थात् आपका विरोध करती हैं, तब आपके भीतर से यह विचार उठ खड़ा होता है, "तेरी इच्छा पूर्ण हो", मेरी नहीं। यही समर्पण है, यही आत्म-त्याग है, यही परिच्छिन्न आत्मा का उत्सर्ग है। प्रार्थनाओं का, अर्थात् हृदय से निकली हुई प्रार्थनाओं का यही मर्म है, यही तत्त्व है, यही सार है। जिन प्रार्थनाओं का अन्त केवल स्वार्थ-पूर्ण कामनाओं में होता है, उन प्रार्थनाओं की सुनवाई कभी नहीं होती, कभी नहीं होती। प्रार्थनायें तभी सुनी जाती हैं जब चित्त ऐसी दशा में पहुँच जाता है जिसमें संसार संसार नहीं रह जाता, जिसमें पूर्ण उत्सर्ग हो जाता है, और शरीर शरीर नहीं रह जाता, चित्त चित्त नहीं रह जाता, सम्बन्धी पीछे छूट जाते हैं, सब सम्पर्क भूल जाते हैं, और जब आपका चित्त ऐसी उच्च ज्ञान-अवस्था में कुछ समय के लिये, अर्थात् एक क्षण के लिये भी, होता है। और उसके बाद अर्थात् उस अवस्था से ठीक जागते ही, नहीं नहीं, उस अवस्था के बाद ठीक सोते ही, या उस दशा से ठीक नीचे उतरते ही यदि आपके सामने कोई अभिलाषा आ खड़ी होती है, तो वह अवश्य पूरी होती है। इस तरह की प्रार्थनायें तभी सुनी जाती हैं जब कोई व्यक्ति एक ख़ास तल पर चढ़ जाता है, पूर्ण देह-विस्मृति, पूर्ण स्वार्थ-त्याग, सब वस्तुओं के पूर्ण त्याग, संसार से पूर्ण वैराग्य, पूर्ण ब्रह्मार्पण, अर्थात् पूर्ण उत्सर्ग की उच्चावस्था पर पहुँच जाता है; परन्तु ये प्रार्थनायें माँगने वाली नहीं कही जानी चाहियें। इन्हें भिक्षाशील प्रार्थनायें नहीं कहना चाहिये।

पुनः कुछ लोग ऐसे हैं जो साधारण रीति से प्रार्थना नहीं

करते, जो किसी बँधे रूप में प्रार्थनायें नहीं करते, फिर भी उन की कामनायें पूर्ण होती हैं, उनकी इच्छायें पूरी होती हैं। क्योंकर? और ये किस तरह के लोग हैं? ये लोग किस तरह के हैं? वे किस के समान हैं? अभी देखिये। आपको कोई इच्छा हुई, और आप उत्कण्ठा, कामना, इच्छा, अभिलाषा, अनुनय-विनय, और याचना करते जाते हैं। जब तक आप उस याचना-वृत्ति में रहते हैं, आपको कुछ नहीं मिलता। आप जानते हैं कि यदि हमको किसी बड़े आदमी के पास जाना होता है, तो हम उसके पास अच्छी पोशाक पहनकर जाते हैं। ईश्वर सब से बड़ा है, अर्थात् सर्वोच्च है, निष्काम है, सब ज़रूरतों से परे है। यदि आप उसके पास जाते हैं, तो सुन्दर वस्त्र धारण करके जाइये, ऐसी पोशाक पहनिये जो उसके अनुरूप हो; जो उस मनुष्य के योग्य होती है कि जिसे ऐसे महापुरुष के पास जाना है जो सकल ज़रूरतों से परे है। तुमको भी ज़रूरतों से अवश्य परे होना चाहिये। तुम्हें भी याचना वृत्ति से दूर होना चाहिये, तुम्हें भी टुटपुंजिये दूकानदार या भिखारी के चिथड़े न लादना चाहिये। कोई भी भिखारी को पसन्द नहीं करता। मँगता दुतकार दिया जाता है। लोग उसकी उपस्थिति से घृणा करते हैं। इस देश में भिखारी और टुकड़मंगे नहीं पूछे जाते, उनके लिये कोई जगह नहीं है। इस लिये तुम्हें यदि ईश्वर के पास पहुँचना है, तो ईश्वरोचित पोशाक में जाइये। ईश्वरोचित पोशाक क्या है? वह पोशाक जिसमें भिखारी की गंध नहीं है, जिससे आवश्यकता या ज़रूरत नहीं टपकती। तुम्हें अपने आपको आवश्यकता या ज़रूरत से ऊपर समझना चाहिये। तब ईश्वर द्वारा आपका स्वागत होगा; केवल तभी।

कहा जाता है कि जो मनुष्य उत्कण्ठा कर रहा है अथवा अभिलाषा कर रहा है, या इच्छा कर रहा है, जो बेचैनी की हालत में है, जो ज़रूरत भान करता है, जो निरानन्द और आवश्यकता की दशा में है, उसके पास सुख नहीं आ सकता। जब तक आप उत्कण्ठित हैं अर्थात् अभिलाषा करते हैं, या इच्छा करते हैं, तब तक आप बेचैनी की हालत में रहते हैं, अर्थात् आप दुःख की दशा में रहते हैं। इस अवस्था में किसी इच्छा की पूर्ति-रूप आनन्द, या यों कह लीजिये, वह इच्छित पदार्थ, जो आपकी दृष्टि में सुख से परिपूर्ण है, आपके पास न फटकेगा। इन दोनों में विरोध है। तुम्हारी चित्त-वृत्ति भिक्षा-शील है, अर्थात् कंगाल है, पर वह काम्य पदार्थ उच्च है, प्रतापी है, और सुखमय है। दोनों में विरोध है। वह पदार्थ तुम्हारे निकट न आवेगा। तुम उस पदार्थ की ओर खिंचोगे, उसे ढूँढ़ते फिरोगे, और वह तुम से हमेशा घृणा करेगा। कुछ काल तक निरुत्साहित किये जाने पर, कुछ काल तक असफलता से व्यथित होने पर, सफलता न पाने के बाद, अर्थात् कुछ समय तक वह पदार्थ न पाने के बाद, जब तुम उस पदार्थ की ओर से मुँह फेर लोगे, जब तुम उस पदार्थ की ओर से हताश हो जाओगे, तब उसे छोड़ दोगे, तब उसका पीछा छोड़ दोगे और मन मारकर बैठ रहोगे। ज्योंही तुम अपना मुख उसकी ओर से फेरते हो अर्थात् उसे छोड़ बैठते हो, त्योंही तुम उससे ऊपर उठ जाते हो, उसी क्षण तुम अपने को उस पदार्थ से ऊँची अवस्था में पहुँचा देते हो। इधर तुम उस पदार्थ से ऊँचे उठे, उधर वह पदार्थ तुम्हें ढूँढ़ने लगेगा। क्या ऐसा नहीं है? हर एक व्यक्ति को यह अनुभव से ज्ञात है। केवल अपने अनुभव की शरण लो, और हर कामना में तुम्हें

इस तरह का अनुभव प्राप्त होगा। जब आप किसी व्यक्ति पर प्रेम करते हैं और उसके लिये विकल होते हैं अर्थात् उसके लिये भूखे अथवा प्यासे रहते हैं, तब आप उसके लिये बहुत उत्सुक होते हैं, ओह, बहुत ही उत्सुक होते हैं। जब आप उसे किसी उच्चतर भाव के लिये (जो भाव मुझ और तुझ से ऊपर उठा हुआ हो) छोड़ देते और भुला देते हैं, तब, केवल तभी, आप उस इच्छित वस्तु को अपनी बग़ल में पावेंगे, तभी वह पदार्थ आपको अपने पास मिलेगा।

यह क्या बात है ? आप देखते हैं कि हर एक वस्तु अपनी सी वस्तु को आकर्षित करती है। यही बात है। सूर्य भी पदार्थ है और भूमि भी पदार्थ है। सूर्य भूमि को और सब ग्रहों को खींचता है। पृथिवी सूर्य को अपनी ओर नहीं खींचती, किन्तु वह सूर्य द्वारा खींची जाती है। सूर्य पृथिवी को अपनी तरफ़ खींचता है। धनात्मक (positive) और ऋणात्मक (negative) बिजलियों में भी यही बात है। उनमें अंशों का भेद है, जाति का भेद नहीं है। विज्ञान इसे सिद्ध करता है। आप एक चुम्बक पत्थर लो और एक लोहे का टुकड़ा लो जो चीज़ भारी है वह हलकी को खींच लेगी, यह विज्ञान का भली भाँति प्रसिद्ध नियम है।

जब तुम इच्छित वस्तु को छोड़ देते हो, तब भी ऐसा ही होता है। अर्थात् तुम जब इच्छित पदार्थ को छोड़ और खो देते हो, तब तुम एक ऐसे भाव या कल्पना में उठ जाते हो जो निरावश्यकता की भावना है, जो आवश्यकता से वा कामना से ऊपर है, जो निष्कामता का भाव है, या जो निष्कामता स्वयं है। तब तुम एक उच्चतर स्थल पर होते हो, तब तुम सूर्य होते हो, और तब वह आनन्द अथवा वह वस्तु पृथिवी या कोई दूसरा

ग्रह मात्र हो जाती है, और तुम उसे अपने पास खींच लेते हो, वह तुम्हारे पास आ जाती है।

जब तुम्हारी कामना का पदार्थ तुम्हारे पास आ जाता है, तब फिर तुम कुछ दर्प से भर जाते हो, पुनः तुम अपने को आवश्यकता में भान करने लगते हो, और पुनः खटपट भी हो जाती है। यही धंधा होता रहता है। यदि तुम राज-सिंहासन पर पहुँच जाओ तो अन्य सब लोग तुम्हारे पास पहुँच जाँय, क्योंकि सब प्रजा, सब दरबारी, सब पदाधिकारी नरेश की ओर खिंच ही जाते हैं। वे महाराजा को ढूँढ़ते हैं, वे उससे मुलाक़ात करना चाहते हैं, वे बिना बुलाये भी उसकी हाज़िरी भरते हैं। जब तुम अपने को कामना, ज़रूरत वा आवश्यकता से ऊपर समझते हो, तब यही होता है। जब तुम राजा के सिंहासन के अधिकारी होते हो, तब ये सब वस्तुयें, ये काम-नायें, दरबारियों और कर्मचारियों के समान होने के रूप में तुम्हें ढूँढती हैं, तुमसे भेंट करना चाहती हैं, तुम्हारे दरबार में हाज़िर हो जाती हैं। तब क्या होता है? इस अवर्णनीय दशा में रहने के बाद, जो दशा केवल परम उत्कृष्ट दशा कही जा सकती है, लोग साधारणतः रुचिर, मनोहर वस्तुओं को अपनी ओर खिंचा हुआ पाते हैं। और जब वे वस्तुयें उनके पास पहुँच जाती हैं, तब वे अपना सिंहासन त्यागकर नीचे उतर आते हैं, और अपने आप को ज़रूरत या आवश्यकता से हैरान पाते हैं। वे फिर अपने को नीच श्रेणी में रख लेते हैं, और इच्छित पदार्थ उन्हें छोड़ देता है। यही होता है। इसकी दूसरी तरह से भी व्याख्या की जा सकती है।

गाड़ी में एक दरवाज़ा है, और एक मनुष्य दरवाज़े में खड़ा है। वह अपने मित्र को बुलाता है, "आ जाओ, चले

आओ"। जब मित्र आता है, तब अति चिन्ता के कारण वह दरवाज़ेवाला मनुष्य दरवाज़ा ख़ाली नहीं करता, वहीं खड़ा रहता है। मित्र आवे तो कहाँ से? वह मित्र के लिये कोई जगह नहीं देता, अतएव मित्र उसके पास नहीं आ सकता। गाड़ी चल देती है, और वह बिना मित्र के रह जाता है। ठीक ऐसा, ठीक ऐसा ही हाल है।

तुम्हारी एक कामना है, अर्थात् अभिलाषा या उत्कंठा है। वह कामना बड़ी प्रबल वा अति गम्भीर है। इच्छा करके तुम काम्य वस्तु को आमंत्रित कर रहे हो। वह आती है और चिन्ता में पड़े हुए तुम उसके द्वार नहीं ख़ाली करते। तुम दरवाज़ा रोके रहते हो, तुम उसको जगह नहीं देते। तुम्हारी हानि होती है, तुम दुःख उठाते हो। तुम तो माँग रहे थे, इसलिये वह तुम्हें नहीं मिली। किन्तु माँगने, हाथ फैलाने और इच्छा करने के बाद तुम्हें दरवाज़ा ख़ाली करना पड़ेगा, तुम्हें वह स्थान छोड़ना पड़ेगा और भीतर जाना पड़ेगा। भीतर लौटो, और तब मित्र भीतर आवेगा। भीतर पधारो, और मित्र को तुम अपने पास पाओगे। यही हाल है।

कल्पना करो कि तुम्हें कोई कामना, अभिलाषा या इच्छा अथवा इस तरह की कोई भी वृत्ति है। तुम इच्छा करते रहते हो। इच्छित वस्तु तुम्हारी ओर खिंच आती है। परन्तु जब तक तुम इच्छा से ऊपर न उठोगे, अपने भीतर न प्रवेश करोगे, तब तक वह तुम्हें कदापि न मिलेगी, क्योंकि मनुष्य (इच्छित वस्तु) को गाड़ी में घुसना है, और तुम्हें अब अपने भीतर निजात्मा में प्रवेश करना है। इस तरह स्थान ख़ाली कर देने अथवा रोके रहने पर इच्छित वस्तु मिलती या नहीं मिलती है।

इस स्थान की हवा जब सूर्य-ताप से गरम होजाती है, तो वह ऊपर चढ़ जाती है। ख़ाली जगह को भरने के लिये बाहर की हवा भीतर धँस आती है। यदि हवा अपनी जगह पर डटी रहे, तो बाहर की हवा आकर उसका स्थान नहीं ले पाती।

ठीक ऐसे ही जब तक आप इच्छाओं को अथवा परिच्छिन्नात्मा, कामना और अभिलाषावाली दशा को बनाये रखते हैं, तब तक चाही हुई वस्तुयें आपकी ओर नहीं झपटतीं। उन इच्छाओं को छोड़ दो। पहले तुम माँगो, चाहे विनती ही करो, पर यह काफ़ी न होगा। बाद को आपको माँगने और इच्छा करने से ऊपर उठना होगा अर्थात् इच्छाओं से पल्ला छुड़ाकर तुम्हें आगे बढ़ना होगा, तब वे पूरी होंगी।

ऐसे भी लोग हैं जिनकी इच्छायें या जिनकी आज्ञायें या आदेश सूर्य को, चन्द्र को तथा (पञ्च) तत्त्वों को पालन करने पड़ते हैं। उनकी शक्ति और महिमा का भेद क्या है? क्या रहस्य है? भेद केवल यही है कि उनकी कामनायें व्यक्तिगत और स्वार्थपूर्ण कामनायें नहीं होती। उनकी इच्छायें एक नरेन्द्र के वचनों के समान होती हैं, जो (नरेन्द्र) समस्त आवश्यकताओं से ऊपर होता है; और ध्यान दीजिये, जिसे वास्तव में किसी चीज़ की भी ज़रूरत नहीं होती है, जो केवल ख़ुशी के लिये एक वाक्य बोल देता है या कुछ कह देता है। यदि उसके कहने के अनुसार काम हुआ तो अच्छा, यदि न हुआ तो अच्छा। वह अभिलाषाओं से परे होता है। एक बादशाह, जिसे कोई इच्छा नहीं, किसी से कुछ नहीं चाहता; परन्तु दरबारी और परिजन उसकी आज्ञा पाकर धन्य होते हैं। उसे स्वयं तो कोई इच्छा नहीं है, परन्तु केवल अपने मित्रों को ख़ुश

करने के अभिप्राय से—अपने खुश करने के लिये नहीं—उनसे अपना कोई काम करने को वह कह देता है। वह अपने भीतर ही भीतर परम प्रसन्न और संतुष्ट है।

राजाओं और राजकुमारों की भाँति जो लोग सब इच्छाओं से परे रहते हैं, केवल उन्हीं की आज्ञायें इस संसार में चन्द्र, सूर्य और तत्त्वों द्वारा पाली जती हैं। वे कामनाओं से परे होते हैं और उनकी कामनायें पूर्ण होती है। इच्छाओं की पूर्त्ति की यही कुंजी है।

इस संसार में सूर्य सब कुछ करता है। परन्तु उसके द्वारा सब कुछ क्योंकर होता है? यह क्या बात है? कारण यही है कि सूर्य साक्षी मात्र है, केवल गवाह है। और महाराजाधिराज के तुल्य अपनी महिमा में साक्षी है। यदि कोई राजा या राजकुमार यहां आ पड़े, तो उसे तुमसे कोई वस्तु मांगनी न पड़ेगी, हरेक व्यक्ति अपनी ही इच्छा से उसके लिये जगह कर देगा, उसे आसन, जल, भोजन अथवा और कोई वस्तु दे देगा, धन और दूसरी चीज़ें उसे अर्पण कर देगा। अपनी ही इच्छा से अर्पण करेगा। ठीक इसी तरह जो कुछ तुम देखते हो सब सूर्य करता है। जो कुछ तुम देखते हो सब सूर्य के द्वारा देखते हो। जो कुछ तुम सुनते हो, सब सूर्य द्वारा सुनते हो।

यदि सूर्य न होता तो हवा में ठिठुरन आ जाती और वह गतिशून्य हो जाती, और कोई शब्द तुम्हारे कानों में न पहुँच सकता। सूर्य के ताप का ही यह परिणाम है कि तुम स्वाद का सुख भोगते हो। सूर्य की ही गरमी शाक-भाजी पैदा करती है। जो कुछ तुम सूंघते हो, उसका भी कारण सूर्य ही है। पृथिवी अपने वर्तमान रूप में सूर्य ही के कारण ठहरी हुई है

सब बातों का कारण सूर्य ही है, फिर भी किसी अदालत में सूर्य के विरुद्ध कोई शिकायत कभी नहीं दायर हुई। सूर्य के कारण चोर सब कुछ चुराता है, परन्तु किसी न्यायालय में सूर्य पर कभी कोई मुक़दमा नहीं चलाया गया।

सूर्य, साक्षी, गवाह, निष्पक्ष गवाह है; सूर्य देव अपनी महिमा में निष्पक्ष साक्षी है। इसीसे पृथ्वी चक्कर पर चक्कर काटती हुई अपने सब भाग सूर्य को दिखाती है। ग्रह उसके इर्द-गिर्द फिरा करते हैं और अपने सब अंग सूर्य को दिखाते रहते हैं। इसी से सूर्य के प्रकट होते ही हिमलियों से पानी बहने लगता है। सूर्य की मौजूदगी में हवा भी चलती रहती है और घास बढ़ती रहती है, इत्यादि। अतएव, सूर्य की उपस्थिति में हरेक चीज़ आती और जाती है। यह क्या बात है? बात यही है कि सूर्य गवाह की अर्थात् निष्पक्ष गवाह की स्थिति में है, वह अपने द्वारा होती रहनेवाली बातों में हिलमिल नहीं जाता, अथवा उन वस्तुओं के साथ भ्रमण नहीं करता, वह अपनी महिमा में साक्षी मात्र रहता है।

वेदान्त कहता है, संसार में घूमते-फिरते समय यदि आप खुद उस स्थिति में अर्थात् अपनी महिमा से युक्त गवाह की स्थिति में अथवा निष्पक्ष लाभ की दशा में हो सकते हो; संसार में कोई व्यक्तिगत स्वार्थ पूर्ण अनुराग नहीं रखते हो; केवल सूर्यवाला स्वार्थ रखते हो, मानों जहाँ कहीं जाते हो वहाँ प्राण (जीवन) और प्रभा फैलाते हो; किसी प्रकार का व्यक्तिगत लाभ नहीं रखते हो; ब्रह्म साक्षात्कार या ईश-भावना अर्थात् "सोऽहं" के सच्चे गौरव में अपने को रखते हो और तुच्छ स्वार्थी तथा अनुरागी अहंकार के दृष्टि बिन्दु से किसी चीज़ की ओर न देखते हुये, सत्य के धाम में अर्थात् वास्तविक निजात्मा में अपने को रखते

हो ; यदि आप ऐसा करते हो, तो आप अपने को वही परम शक्तिवान् पावोगे जिसकी आज्ञायें इस संसार की सब शक्तियाँ अवश्य मानती हैं।

इस संसार की सब मुसीबतों, क्लेशों, सुखों, वैभवों, सम्पत्तियों और विकट ग़रीबी तथा हीनता का प्रभाव अपने ऊपर उतनी ही कोमलता और पूर्णता से पड़ने दीजिये, जैसे किसी मनोहर भू-भाग का प्रभाव आपकी दृष्टि पर पड़ता है भू-भाग का दृश्य जब आपकी दृष्टि गोचर होता है, तब आप प्रत्येक वस्तु साफ़ साफ़ किन्तु अकठिनता पूर्वक देखते हो। उसका आप पर कोई भार नहीं पड़ता, वह आपके नयनों में थकावट नहीं लाता। इस तरह इस दुनिया में रहो, सब ओर भ्रमण करो, जीवन के मार्गों में इस प्रकार निर्लिप्त हुये विचरो, कि साक्षी आत्मा का प्रकाश हर एक चीज़ को स्पष्टता से किन्तु अकठिनता पूर्वक देखे, और किसी बात से अति पीड़ित व दिक़ न हो। यदि यह आप कर सकें, तो आप वह महात्मा हैं जिसके आदेश प्राकृतिक शक्तियों को मान्य होते हैं। तुम वही महात्मा हो।

इच्छाओं से ऊपर उठो, और वे पूरी हो जाँयगी। वे कहते हैं कि कर्मवाद के सिद्धान्त की फिर क्या दशा होगी? कर्मवाद का फिर प्रारब्धवाद या प्राकृतिक शक्तियों से, जो सम्पूर्ण विश्व के द्वारा कार्य कर रही हैं, कैसे समन्वय किया जायगा? दूसरे शब्दों में यह कि भाग्यवाद या दैवाधीनवाद की स्वच्छंद-वा स्वातन्त्र्यवाद से कैसे संगति बैठेगी?

एक सादा उदाहरण दिया जायगा।

कहा जाता है कि जो इच्छायें आपके अन्दर हैं, वे वास्तव में सचमुच अनायास इच्छाएँ नहीं हैं ; परन्तु आपकी इच्छाएँ

प्राकृतिक हैं और वे भविष्य में होनेवाली तथा प्रकृति के नियमित क्रम में घटनेवाली घटनाओं की प्रतिच्छाया मात्र हैं। वे पूर्व से ही आपके चित्त में अपनी छाया डालती हैं और इच्छाओं के रूप में प्रकट होती हैं।

एक महिला की कहानी है कि जो एक प्रथम श्रेणी के चित्रकार के पास अपना छायाचित्र उतरवाने गई थी। तसवीर उतारनेवाले ने अपना यंत्र ठीक करके रक्खा और अत्यन्त कोमल पलेट का प्रयोग किया। जब उसने ख़ाके को जाँचा, तो महिला के चेहरे पर उसे चेचक के चिह्न दिखाई पड़े। वह चकित हो गया। इसका क्या अर्थ? उसका मुखमण्डल तो स्वच्छ है, परन्तु ख़ाके में उस भयंकर रोग के लक्षण अवश्य हैं। उसने अनेक बार महिला का ऐसा छायाचित्र लेने का यत्न किया कि जिससे चेहरे पर शीतला के लक्षण न हों। अन्त में हैरान होकर उसने यत्न त्याग दिया और महिला से कहा, किसी दूसरे दिन आइयेगा, जब अवस्था अनुकूल होगी और आपका निर्दोष चित्र लेने में सफल हो सकूंगा। महिला अपने घर गई और कुछ घण्टों बाद उसके शीतला निकल आई। क्या कारण था? बाद को उसे याद आया कि "मेरी बहन की, जो चेचक से पीड़ित थी, एक चिट्ठी आई थी, जिसके लिफ़ाफ़े को मैं ने अपने ओठों से गीला करके उँगलियों से बन्द किया था"। उसी चिट्ठी को खोलने से उस महिला में रोग प्रवेश कर गया था और यथासमय वह रोगाक्रान्त हो गई थी। तसवीर खींचनेवाले ने जो शोधित पदार्थ बर्ते थे, उनकी कृपा से तसवीर उतारने के यंत्र ने उस (रोग) का पता लगा लिया, परन्तु यंत्र रहित वा खुले नेत्रों को धोखा हुआ, और चमड़े में काम करती हुई चेचक नहीं दिखाई पड़ सकी।

इसी प्रकार इच्छायें भी वास्तव में चेचक के दाग हैं, जो चेहरे पर तो नहीं प्रकट हुए हैं, परन्तु यंत्र से देखे जा सकते हैं। वास्तव में कामनायें अपनी पूर्ति की ज़मानत हैं। इच्छायें अवश्यमेव घटनेवाली घटनाओं की सूची मात्र हैं।

ये सब चीज़ें जो हमारे हिस्से में पड़ती हैं, एक दृष्टि से हमारी परिस्थिति, हमारी अवस्थाओं और बाहरी प्रभावों द्वारा निश्चित होती हैं। दूसरे दृष्टि-बिन्दु से भीतरी सब इच्छायें हमें साधारणतः हमारी स्वच्छंदता की करतूतें मालूम होती हैं, और वे पूरी होकर रहेंगी। हम कहते हैं कि हम स्वच्छंद हैं, और हमारी स्वच्छंदता अवश्य सफल होगी। इस प्रकार स्वच्छंदता और भाग्यवाद का समन्वय हो जाता है। इच्छायें वास्तव में पहले ही से पूर्ण हो चुकी हैं; परन्तु यह यातना क्यों है और कैसी है? इच्छाओं की पूर्ति के लिये हमें यह मूल्य क्यों देना पड़ता है? यह भी ज़रूरी है। एक उदाहरण देकर यह समझाया जायगा।

एक मनुष्य अपने एक मित्र को पत्र लिख रहा था। उसे देखने को वह छटपटा रहा था और बहुत ही उत्सुक था। बहुत दिनों से उसने अपने मित्र को देखा नहीं था। बड़ी लम्बी चौड़ी चिट्ठी वह लिख रहा था, पन्ने पर पन्ने भरते चला जा रहा था। लिखने में वह इतना प्रवृत्त वा लीन था कि एक क्षण के लिये भी वह न रुकता था और न आँख उठाता था। प्रायः पौन घण्टा उसने चिट्ठी लिखने में लगाया और इतने समय तक उसने सिर भी नहीं उठाया। जब पत्र पूरा हुआ और दस्तख़त हो गये, तब उसने मूड़ उठाया और देखा कि उसका प्रिय मित्र उसके सामने खड़ा है। वह उछल पड़ा और अपना स्नेह प्रकट करते हुए मित्र से लिपट गया। बाद को बिगड़कर बोला,

"तुम यहाँ हो?" मित्र ने उत्तर दिया, "मुझे यहां आये आध घण्टे से अधिक हो गया।" तब उस मनुष्य ने कहा, "इतनी देर से यहाँ हो तो मुझसे कहा क्यों नहीं?" मित्र ने कहा, "तुम इतने मग्न थे कि मैंने तुम्हारे काम में विघ्न डालना उचित नहीं समझा।" यही गति है, यही गति है।

तुम्हारी इच्छायें चिट्ठी लिखने के समान हैं। तुम विनती कर रहे हो, इच्छा और अभिलाषा कर रहे हो, भूखे हो रहे हो, प्यासे हो रहे हो और हैरान हो—यह सब चिट्ठी लिखना है, और तुम लिखते ही जाते हो। जिसे तुम चिट्ठी लिख रहे हो, जिन वस्तुओं में तुम्हारी लौ लगी हुई है, वे कर्मवाद के गुप्त नियम के अनुसार तुम्हारे सामने पहले ही से मौजूद हैं; किन्तु तुम्हें उनका पता क्यों नहीं चलता? अपने सामने तुम उन्हें क्यों नहीं पाते? क्योंकि तुम इच्छा कर रहे हो, चिट्ठी लिख रहे हो। यही कारण है। जिस क्षण तुम इच्छा करना छोड़ दोगे अथवा पत्र लिखना बन्द कर दोगे, उसी क्षण सब इच्छित पदार्थों को अपने सामने देखोगे। इसी लिये मूल्य देना नितान्त आवश्यक हो जाता है।

हिन्दू धर्म-ग्रन्थों में इस विषय की दृष्टान्त-स्वरूप सैकड़ों कहानियां हैं। एक राजा के प्रधान मंत्री की कथा है, जिसने लक्ष्मी देवी के प्रत्यक्ष दर्शन करने के लिये सब प्रकार के आवश्यक तप किये। उसने सब आवश्यक मंत्रों, जपों और प्रयोगों की साधना की। लक्ष्मी देवी का प्रत्यक्ष साक्षात्कार कराने वाले गुप्त मंत्रों को उसने दस लाख बार जपा। देवी ने दर्शन नहीं दिये। तीस लाख बार सब प्रयोग उसने किये, फिर भी देवी प्रत्यक्ष नहीं हुई।

इन मंत्र-यंत्रों से उसका विश्वास जाता रहा और संसार

की सब वस्तुओं को त्यागकर उसने संन्यास ले लिया और साधु हो गया। ज्योंही उसने संन्यास (साधु जीवन) लेकर अपना भवन छोड़ा और वन में कुटी बनाई, त्योंही लक्ष्मी देवी उसके सामने आ गई। उसने कहा, "देवी चलो जाओ, अब तुम यहां क्यों आई हो? मुझे अब तुम्हारी ज़रूरत नहीं। मैं साधु हूं। साधु को विलासिता, ऐश्वर्य, दौलत और सांसारिक भोगों से क्या मतलब? जब मुझे तुम्हारी चाह थी, तब तो तुम आई नहीं, अब जब मुझे तुम्हारी चाह नहीं, तुमने कृपा की है"। देवी ने उत्तर दिया, "तुम स्वयं मेरा रास्ता रोके हुए थे। जब तक तुम मेरी इच्छा कर रहे थे, तब तक तुम द्वैत का प्रतिपादन कर रहे थे, तब तक तुम अपने को भिखारी बनाये हुए थे, और ऐसे मनुष्य को कुछ भी नहीं मिल सकता। जिस क्षण तुम कामनाओं से परे हो जाते हो और उनका तिरस्कार कर देते हो, उसी क्षण तुम देवता होते हो, और श्री या लक्ष्मी देवताओं के ही हिस्से की वस्तु है"। यह रहस्य है।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

विजयिनी आध्यात्मिक शक्ति

(ता० ९ फ़रवरी १९०३ को गोलडन गेट हाल में दिया हुआ व्याख्यान।)

प्रश्न—दूसरों की दृष्टि में हम जैसे हैं, वैसे ही अपनी नज़र से अपने को देखना हम कैसे सीख सकते हैं?

उत्तर—दूसरों की दृष्टि में तुम जैसे हो, वैसे ही तुम स्वयं भी यदि अपने को देखना सीख लो, तो तुम्हारी कोई भलाई नहीं हो सकती। दूसरे हमें वैसा देखते हैं, जो वास्तव में हम नहीं हैं। वास्तव में हम जैसे हैं, वैसा वे हमें नहीं देखते। यदि लोग तुम्हें ईश्वर समझें, यदि वे तुम्हारे भीतर ईश्वर देख सकें, यदि तुम्हें वे ब्रह्म समझ सकें; तो तुम्हें वे ठीक ठीक समझे हुए होते। नातेदार, भाई, पिता, माता, मित्र सब के सब तुम्हारे कानों में भनाया करते हैं कि तुम वह वस्तु हो जो वास्तव में तुम नहीं हो। कोई व्यक्ति तुम्हें पुत्र कहता है, दूसरे लोग भाई, शत्रु, मित्र इत्यादि कहते हैं। ये सब तुमको परिच्छिन्न करते हैं। एक मनुष्य तुम्हें सज्जन कहता है, वह तुम्हें परिच्छिन्न करता है। दूसरा मनुष्य तुम्हें दुर्जन कहता है, वह भी तुम्हें परिच्छिन्न करता है। एक दूसरा तुम्हारी ख़ुशामद करता है या स्तुति करके तुम्हें फुला देता है, वह भी तुम्हें सीमाबद्ध करता है। दूसरा तुम्हें और नीचे गिराता है या तुम्हारी निन्दा करता है, वह भी तुम्हारे बेड़ियाँ डालता है, अर्थात् तुम्हें परिमित करता और बाँधता है। भाग्यशाली हैं वह पुरुष जो इन प्रत्येक बन्धन के विरुद्ध खड़ा होकर अपने दैवत्व,

अपने ईश्वरत्व का निरूपण करता है। जो मनुष्य अपने शुद्ध आत्मा का वा अपने शुद्ध स्वरूप का अनुभव कर लेता है, जो मनुष्य सारे संसार के सामने तथा अपने इर्दगिर्द अन्य सब लोगों के सामने निडर खड़ा होकर अपने ईश्वरत्व का निरूपण कर सकता है और ईश्वर से अपनी अभेदता पहचान सकता है, वह इन सब लोगों की अवज्ञा कर सकने के समर्थ है। जिस क्षण तुम अपने ईश्वरत्व को जतलाने के लिए खड़े होने को तैयार हो जाते हो, उसी क्षण सारा संसार तुम्हें ईश्वर मानने को बाधित होता है, सारी सृष्टि तुम्हें परमात्मा अवश्य मानेगी।

प्रश्न—कृपया हमें राजयोग का अर्थ समझाइये।

उत्तर—राजयोग का अर्थ है ध्यान या एकाग्रता का शाही साधन या राजमार्ग। इसका शाब्दिक अर्थ यह है—"राज" का अर्थ है शाही, और "योग" का अर्थ है मार्ग (सड़क)।

प्रश्न—वेदान्त शास्त्र के प्रचार का कोई सर्वोत्तम उपाय या ऐसा तरीक़ा बताइये जिसे सब अंगीकार कर सकें।

उत्तर—वेदान्त शास्त्र के प्रचार का सब से अच्छा ढंग यही है कि उसके अनुसार जीवन बिताया जाय। इससे इतर और कोई राजमार्ग नहीं।

लोग सदा कोई न कोई ठोस या स्थूल पदर्थ पाया चाहते हैं, या ऐसी चीज़ चाहते हैं कि जिस पर उनका हाथ पड़ सके। वे स्थूल भौतिक पदार्थों को हथियाना या पकड़ना चाहते हैं, और वे सर्वदा विफल-मनोरथ होते हैं। तथापि वे उस भौतिकता वा प्रत्यक्ष नाम रूप को नहीं छोड़ना चाहते। वे खरी नगदी के रूप में कोई वस्तु चाहते हैं; वे रूप और रेखा को नहीं छोड़ना चाहते।

ऐ प्रिय बन्धु! ये खरी नंगदी कहे जानेवाले रूप, ये भौतिक तत्त्व इन्द्रियों की भ्रान्ति के सिवाय और कुछ नहीं है। इन नाममात्र तत्त्वों और रूपों पर जो भरोसा करता है, उसे कभी सफलता नहीं होती। रूपों और परिच्छिन्न भावों पर निर्भर रहना कभी सफलता न लायगा। वह सफलता की कुंजी नहीं है। सूक्ष्म सिद्धान्त अर्थात् सत्य पर निर्भर रहना सफलता की कुंजी है। उसे ग्रहण करो, अनुभव करो, ध्यान वा निदिध्यासन् करो और उसका व्यवहार करो। फिर ये नाम, ये तत्त्व, ये रूप और रेखा तुम्हें खोजते फिरेंगे।

इसका दृष्टान्त वह दो मनुष्य हैं, जो एक बड़ी वेगवती नदी में बहे जारहे थे। एक मनुष्य ने तो एक बड़ा भारी लट्ठा पकड़ लिया था और दूसरे ने एक पतला सा डोरा। जिस ने बड़ा लट्ठा पकड़ा था, वह तो डूब गया, और जिसने महीन सूत का सहारा लिया था, वह बच गया। इसी तरह जो लोग बड़े बड़े सहारों पर भरोसा रखते हैं, जो बड़े नामों और दौलत पर आश्रय करते हैं, वे अन्त में विफल होंगे। सत्य के सूक्ष्म तागे पर अर्थात् वास्तविकता के महीन तागे पर आश्रय करो। यदि तुम्हें अपने ईश्वरत्व का बोध हो जाय, यदि तुम्हें अपने ईश्वरत्व का अनुभव हो जाय, तो फिर तुम चाहे सघन वनों में रहो और चाहे भीड़ से भरी गलियों में, कोई परवाह नहीं। वह सत्य का अनुभव हरएक वस्तु का रूपान्तर कर देगा अर्थात् समग्र जगत को बदल देगा।

यह एक मेज़ है। कल्पना करो कि तुम इसे हटाना चाहते हो। यदि तुम किसी कोने से भी ज़ोर लगाओ, यदि मेज़ का कोई भी कोना तुम पकड़ लो, अथवा किसी भी ओर से पकड़ो, तो तुम उसे सरका सकते हो, मेज़ हट जायगी। सारी दुनिया

एक बड़े ठोस पदार्थ के समान है, और तुम्हारा शरीर इस दुनिया रूपी मेज़ का एक कोना या एक बिन्दु है। यदि आप इस अकेले बिन्दु को पकड़ लें, यदि आप इसे उठाकर तान दें, यदि आप इसे ईश्वर कहें, यदि आप इसे परमात्मा समझें, यदि यह अकेला बिन्दु ईश्वर में मानों समा जाय, यदि यह अकेला बिन्दु इस निश्चय-बल से उठा दिया जाय, तो सारी दुनिया खिंच जायगी, सारी दुनिया सरक जायगी, क्योंकि सारा संसार मेज़ की तरह ठोस पदार्थ है। अपने व्यक्तित्व को तान दीजिये और आप सारी दुनिया को तान देंगे। संगठनों में, या बड़ी बड़ी संस्थाओं में, महान् मठ मन्दिरों और उनके प्रचारक दलों में भरोसा करना बड़ी ही मूर्खता है और भयंकर भूल है। यह निःसन्देह भयंकर भूल है, विफलता के सिवाय और इसमें कुछ भी हाथ न आवेगा, और आज नहीं तो कल दुनिया की समझ में यह आ जायगा। इसी प्रकार जो लोग केवल एक शरीर पर भरोसा करते हैं, वल्कि संगठनों और सभाओं पर नहीं, वही लोग सारे संसार को वदल देते हैं। सभाओं और संघों में जिन लोगों का सम्बन्ध है, वे रुपये जमा करते हैं, भवन बनाते हैं, कपड़े ख़रीदते हैं, परन्तु ऐसी विजय तो आध्यात्मिक वृद्धि नहीं है।

जंगलों में सियार हमेशा बड़ी जमात जोड़ते हैं, बड़ी सभायें रचते हैं, सदा बहुत बड़ी संख्याओं में मिलते हैं, एक साथ उठते बैठते हैं और हुआते (चीख़ते) भी एक साथ ही हैं। वे बड़े बड़े झुण्डों में रहते हैं और बड़ा शोर मचाते हैं। इसी भाँति भेड़ें भी अपने झुण्ड पर भरोसा करती हैं, वे इकट्ठी होती और झुण्ड बनाती हैं ; परन्तु सियार या भेड़ियाँ क्या खड़ी होकर शत्रु का सामना कर सकती हैं? नहीं, नहीं।

क्या तुमने कभी सिंहों को दल बाँध कर रहते सुना है? एक बड़ी संख्या में सिंहों का यात्रा करना कभी तुमने पढ़ा है? कभी उनको समाज बनाते या जमात या झुण्ड जोड़ते भी सुना है?

गीध (बाज़) पक्षियों के राजा होते हैं। क्या वे सभायें रखते हैं? कदापि नहीं। नन्हीं और छोटी छोटी चिड़ियाँ ही साथ उड़ती हैं। गीध (बाज़) और सिंह अकेले रहते हैं; परन्तु एक ही बाज़ आपकी छोटी छोटी चिड़ियों के अनेकों समूहों को भगा दे सकता है।

हाथी जमात जोड़ते हैं, वे बड़ी संख्या में भ्रमण करते हैं, क्योंकि उनका स्वभाव मिलने जुलने का होता है। यूथ में रहना उनकी प्रकृति है, वे शरीर तो महान रखते हैं, किन्तु एक ही सिंह आकर हाथियों के समग्र समूह को परास्त करके तितर-बितर कर देता है। संघों या समूहों पर न भरोसा करो। अपने आपको भीतर से शक्तिशाली बनाना हर एक का वा सब का कर्त्तव्य है। अतएव वेदान्त को फैलाने का सब से अच्छा उपाय यही है कि वेदान्त को व्यवहार में लाया जाय, चाहे मनुष्य अकेला हो, चाहे दूसरों के बीच में। वेदान्त पर अमल करो; हवा उस वेदान्त को ग्रहण करने को विवश होगी, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, आकाश सभी उसे ग्रहण करने को बाध्य होंगे, और इस रीति से ठीक उसका प्रचार होगा।

ईसा ने क्या कोई जत्था बनाया था? नहीं, नहीं। बिचारा अकेला ही रहा। शङ्कराचार्य ने कोई जत्था बनाया था? नहीं, बिचारा अकेला ही रहा। प्रत्येक प्राणी को अवश्य अकेले रहना चाहिये, अकेले खड़े होना चाहिये, हर एक को अपने भीतर परमेश्वर का बोध और साक्षात्कार करना चाहिये।

जिस क्षण तुम्हें अभ्यन्तरात्मा का बोध हो जायगा, जिस क्षण तुम्हें उसका अनुभव हो जायगा, और तुम दिव्य जीवन बिताने लगोगे, उसी क्षण वेदान्त तुम्हारे भीतर से वैसे ही फूट निकलेगा जैसे सूर्य्य से प्रकाश।

याद रक्खो, तुम ध्यान रक्खो कि सुधार करने के ये सब उपाय, अर्थात् मानव जाति को सुधारने के ये सब यत्न, जिनका आधार धन पर है, अथवा जो धन या बाहरी सहायता पर आश्रय करते हैं, या जो दूसरों से किसी बात की आकांक्षा करते हैं, ये सब उपाय, जो दूसरों से माँगने के हैं, सब के सब असफलता में समाप्त होते हैं, यही नियम है। केवल भीतरी परम और अनन्त शक्ति का आश्रय करो। और बाहरी सहायता स्वयं जब तुम्हें ढूँढ़ती हुई आवे, तो उसे स्वीकार करने की कृपा करो। यदि बाहरी सहायतायें आपकी रंगरूट वा आपकी चेलियाँ बनने को तैयार हों, तो अस्वीकार न करना, आपकी कृपा होगी। यह ठीक मानिये कि, ज्यों ही आप उनका आश्रय करेंगे वे आपको छोड़ देंगी अर्थात् आपको त्याग देंगी। यही नियम है। बाहरी मदद पर कभी भरोसा न करो। केवल अपने पर, वा अपने अन्तरात्मा पर भरोसा करो। यही आवश्यकता है, और कुछ नहीं। ये जो बड़े बड़े रूप लोगों ने धारण किये हैं, ये जो सब लम्बी दुमदार उपाधियाँ हैं, ये सब विफल हैं। ये असली लक्ष्य खो बैठती हैं। इनसे किसी का भी छुटकारा नहीं होता, ये किसी व्यक्ति को भी स्वतंत्र नहीं बनातीं, उलटा ये कष्ट और पीड़ा पहुँचाती हैं।

एक मुर्दा लाश को लीजिये। बिजली से हम उसे जानदार कर सकते हैं। हम उसके ओठों को हरकतदार कर सकते हैं, हम उसकी भुजाओं को उठवा सकते हैं, हम उसे इस

ओर व उस ओर झुकवा सकते हैं। परन्तु इसका नाम ज़िंदगी नहीं है। इसी प्रकार बाहर से जो मदद मिलती है, अर्थात् जो सम्पूर्ण शक्ति हमें दौलत से, वैभव से, और वस्त्रों से प्राप्त होती है, तथा समाचार पत्रों द्वारा जो ख़ुशामद किसीकी की जाती है, अथवा समाचार पत्रों द्वारा जो हमारी प्रशंसा होती है, इसी प्रकार चेलों और भक्तों से जो आदर हमें प्राप्त होता है, यह सब सहायता वैसी ही सहायता है जैसी बिजली द्वारा मुर्दा लाश में गति का उत्पन्न होना। इससे जीवन नहीं मिलता, इससे पीड़ा नहीं दूर होती, यह मुझे स्वाधीन और स्वतंत्र नहीं बनाती। बिगुल बजाकर ज़िन्दगी नहीं आती। ज़िन्दगी बीज से बढ़ती है; अर्थात् भीतर से, न कि बाहर से। यह एक जीता जागता सजीव बीज है अर्थात् छोटा सा गर्भ पिण्ड है। इसमें जीवन है, यह भीतर से बढ़ेगा। इसमें कुछ देर तो अवश्य लगेगी; परन्तु वह होगा असली जीवन, न कि धोखे की टट्टी।

मुर्दा लाश को गतिशील बनाकर, अर्थात् बिजली से उसका हाथ या सिर आदि उठवा कर हम बिजली के तात्कालिक प्रभाव और बड़े बड़े आश्चर्यमय परिणाम पैदा कर सकते हैं; परन्तु इस विधि में ज़िन्दगी कहाँ। हमें तो ज़िन्दगी चाहिये। इसी तरह राम कहता है, कि बीज बो दो, अपने कानों में सत्य को भर जाने और समा जाने दो? एक बार बीज बो दिया जाने पर हमें उसके लिये हैरान होने की ज़रूरत नहीं। इसी भाँति वेदान्त के प्रचार के लिये अथवा वेदान्त के उपदेश के लिये तुम्हें स्वयं सत्य स्वरूप की अवश्य प्राप्ति करना चाहिये। इस तरह बीजों का बोना हो जायगा, उनकी वृद्धि की चिन्ता मत करो। तुम्हारे बिना हैरान हुये वे बढ़ेंगे।

एक महात्मा था, उसका एक बड़ा श्रद्धालु भक्त था, वह बड़ा श्रद्धालु शिष्य था, जो प्रति दिन महात्मा जी के दर्शन करने जाया करता था। एक बार कुछ दिनों के लिये महात्मा कहीं चले गये और जब स्थान पर फिर लौटे, तो उनका वह परम भक्त चेला किसी दिन भी मिलने न आया। दूसरे लोग आये और चेले की निरन्तर अनुपस्थिति पर उन्होंने आलोचना की, और उस भक्त की शिकायत की जो पहले महात्मा जी के साथ बहुत रहा करता था। महात्मा ने मुस्करा कर कहा, "क्यों शिकायत करते हो, क्यों दोष निकालते हो, मेरे पास उसके आने की ज़रूरत ही क्या है, वह इस शरीर से अनुरक्त क्यों रहे? मैं यह व्यक्तित्व नहीं हूँ, मैं यह शरीर नहीं हूँ। यदि उसने मुझे यह व्यक्ति ही समझा है, यदि उसने मुझे यह देह ही समझा है, तो वह स्वयं आत्म-हत्यारा होगा। केवल उसे इस शुद्ध स्वरूप का जो मैं हूँ, इस सत्य स्वरूप का अर्थात् इस ब्रह्म का वा इस परम शक्ति का, जो मैं हूं, अनुभव करने दो; मेरे उपदेशों के प्रति उसे सच्चा होने दो और वह मुक्त होगा, अर्थात् धन्य धन्य होगा" फिर महात्मा ने कहा, "घोड़ी जब एक बार गाभिन हो जाती है तो उसे फिर घोड़े के पास जाने की ज़रूरत नहीं होती। बीज डाल दिया गया और यथा समय बच्चा पैदा होगा"। महात्माजी ने कहा, "इसी तरह, बीज बोये जा रहे हैं, और मैं नतीजों के लिये परेशान नहीं हूं। बीज नतीजे पैदा करेगा"।

इसी तरह, तुम सभाएँ चाहे करते रहो चाहे नहीं, राम को क्या; राम का नाम चाहे तुम याद रक्खो या पैरों से कुचल डालो, इससे राम को क्या; तुम चाहे सराहो या कोसो, या इस देह की निन्दा करो, इससे राम को क्या। प्रत्येक क्षण

बीज बोया जा रहा है, वह आप नतीजे पैदा करेगा। पुनः यह कि दुनिया या उसमें जो कुछ है, उसके लिए हम हैरान क्यों हों? जिस क्षण हम संसार के सुधारक बन कर खड़े होते हैं, उसी क्षण हम संसार के बिगाड़ने वाले बन जाते हैं।

"Physician heal thyself"="ऐ वैद्य! पहिले तू अपनी चिकित्सा कर"।

वेदान्त के अनुसार सम्पूर्ण संसार ईश्वर से इतर और कुछ नहीं है। समग्र संसार परिपूर्ण है, समग्र संसार ब्रह्म है, मेरा ही अपना आप है, समग्र संसार एक अकेला है। यदि यही बात है और फिर यदि मैं सुधार का कोई उपाय ग्रहण करता हूँ, फिर यदि मुझे यह समझ पड़ता है कि तुम पद-दलित (अत्यन्त पतित) हो, और फिर यदि मुझे ऐसा दिखाई पड़ता है कि तुम तुच्छ अभिलाषाओं के कारण दुःखी और पीड़ित हो, तो मैं तुरन्त तुम्हें बिगाड़ रहा हूँ, क्योंकि (इस रीति से) मैं तुमको अपने से कोई भिन्न वस्तु समझ रहा हूं। इस लिये वेदान्त कहता है कि "ऐ सुधारको! ऐ सुधारकों का पद लेने वालो! तुम दुनिया को पापिनी समझते हो, तुम दुनिया को कुरूपा समझते हो और उसे गाली देते हो। दुनिया इतनी दीन क्यों मानी जाय कि उसको तुम्हारी सहायता की ज़रूरत हो? ईसा मसीह आया और उसने यथा शक्ति लोगों को उठाने वा प्रबुद्ध करने की चेष्टा की, परन्तु दुनिया का सुधार नहीं हुआ। भगवान् कृष्ण आये और जो कुछ कर सके किया। भगवान् बुद्ध आये और अन्य बहुतेरे तत्त्वज्ञानी आये, परन्तु आज भी अभी तक वही पीड़ा, वही दुःख और वही क्लेश है। संसार हम ज्यों का त्यों पाते हैं। आज क्या लोग पहिले से किसी तरह अधिक ख़ुश हैं? क्या तुम्हारी रेलगाड़ियों,

तुम्हारे तारों, तुम्हारे टेलीफ़ूनों, तुम्हारे बड़े बड़े जहाज़ों, अर्थात् तुम्हारी समस्त महान् वैज्ञानिक रचनाओं ने लोगों को पहिले से अधिक सुखी बनाया है? बात ठीक उसी अपूर्णांक अर्थात् कसर (fraction) के समान है जिसके ऊपर और नीचे के अंक (numerator and denominator) दोनों बढ़ा दिये गये हों, अपूर्णांक पहले से भिन्न मालूम पड़ने लगे, वह बढ़ा हुआ प्रतीत हो, परन्तु वस्तुतः वही अपूर्णांक समानता से बढ़ा हुआ होता है। यदि तुम्हारी आमदनी या सम्पत्ति बढ़ गई है, तो (इसके साथ साथ) तुम्हारी अभिलाषाएं भी तो बढ़ गई हैं। यह कुत्ते की दुम की तरह है। जितनी देर तुम उसे सीधी पकड़े रहोगे उतनी देर वह सीधी रहेगी, किन्तु ज्योंही आप उसे हाथ से छोड़ेंगे, त्योंही वह फिर पहले की सी ऐंठी हुई दिखाई देगी। इस तरह पर वह लोग जो सुधार करने की इच्छा से उठते या उद्यत होते हैं, अर्थात् जो लोग इस तरह पर ब्रह्माण्ड में गुल मचाते हैं, वे स्वयं धोखे में हैं। युवको! याद रक्खो, संसार के संबंध में किसी काम को शुरू करके तुम बड़ी भूल करते हो। अपना आकर्षण-केन्द्र (centre of gravity) अपने से बाहर मत जमाओ। निश्चय से जानो और अपने वास्तविक ईश्वरत्व का अनुभव करो और जिस क्षण तुम ईश्वरभाव से परिपूर्ण हो जाओगे, उसी क्षण अनायास सदा के लिए जीवन, शक्ति, और उत्साह की धारा बहने लगेगी। सत्य को फैलाने का यही उपाय है।

आर्कमेडीज़ (Archimedes) कहा करता था, "मैं अखिल विश्व को हिला दे सकता हूं यदि मुझे कोई स्थिर बिन्दु (स्थल) मिल जाय"। परन्तु बेचारे को स्थिर बिन्दु कभी नहीं मिला। वह स्थिर बिन्दु तुम्हारे भीतर है, उसे

पकड़ो, उसे बूझो, उसे निश्चय से जानो, उसे प्राप्त करो, यह अनुभव करो, कि मैं ब्रह्म हूं, मैं प्रभुओं का प्रभु हूं, अखिल न्यायाधीश हूं, अखिल सौन्दर्य हूं, सम्पूर्ण बल और शक्ति की योनि (मूल) हूं"। अनुभव करो कि अखिल विश्व का मैं पति हूं, मैं वही (ब्रह्म) हूं; और अपने वास्तविक स्वरूप का यह अनुभव आप ही समग्र संसार जीत लेगा, संसार को जीवन देगा, और संसार को गतिशील बना देगा।

सूर्य अपना सब काम वेदान्त के अनुसार या वेदान्त के सिद्धान्तों पर किया करता है। वह समग्र संसार के जीवन और उद्योग का उत्पत्ति-स्थान वा मूल है। सूर्य वेदान्ती है। राम ने तुम्हें जो शिक्षा दी है उसी को मान कर सूर्य चलता है। सूर्य ऐसा ही करता है। वह संसार को अखिल जीवन व अखिल उद्योग शक्ति देता है, परन्तु अकर्त्ता-भाव से देता है, उसमें 'अहं' 'मम' भाव नहीं है, उसमें स्वार्थपरता नहीं है, उसमें आत्मश्लाघा नहीं है। वह अपने को उद्यम से परिपूर्ण रखता है; वह समस्त बल, समस्त उद्योग, समस्त तेज और समस्त चेष्टा है। इस लिये जब तुम उठते हो और सूर्योदय होता है, तो क्या वह अपने आगमन की कोई विशेष घोषणा करता है? क्या वह इसके सम्बन्ध में कोई पुस्तक या पोथी लिखता है? क्या वह इस विषय में कोई हल्ला मचाता है? नहीं, परन्तु तुम देखते हो कि (सूर्योदय से) समस्त भूमि अर्थात् आपका यह समग्र संसार सजीवित हो जाता है, आपकी इस भूमि में जान आ जाती है। अहा! कितने धीरे धीरे, कितने क्रमशः, कितनी मन्दगामी से, परन्तु निश्चय पूर्वक प्रकृति जाग उठती है, नदियां जाग उठती हैं। आप जानते हैं रात को नदियां जम जाती हैं, किन्तु सूर्य आकर उन्हें गरमा देता है, उनको

जीवन देता है, और वे बहने लगती हैं। नदियों और झीलों के तटों के गुलाब और अन्य पुष्प सूर्य की उष्ण और प्रिय किरणों से खिल उठते हैं।

फिर मनुष्यों के नेत्र-कमल खिल उठते हैं, अथवा दूसरे शब्दों में मनुष्य भी जाग पड़ते हैं और जीवन तथा उद्योगिता से भर जाते हैं। हवा डोलने लगती है, वायु जीवनमय और उद्योगशील हो जाती है, क्योंकि सूर्य में जीवन और कर्मण्यता है, और उसके द्वारा ही समस्त संसार में प्रकाश और उद्योग प्रवाहित होते हैं। संसार को सजीवित करने में अथवा तुमको जगाने में वा चिड़ियों को गवाने में, और फूलों को खिलाने में सूर्य अपनी वाहवाही (श्लाघा) का विचार भी नहीं करता। हरएक वस्तु उसके द्वारा होती है, क्योंकि वह अपने आप पर निर्भर है, और अपने भीतरी जीवन पर निर्वाह करता है। यही सिद्धान्त है—अपने भीतरी जीवन पर निर्वाह करो, अपने अन्तरात्मा में स्थित हो जाओ, निश्चय से जानो कि "तुम प्रकाशों के प्रकाश हो, प्रभुओं के प्रभु हो, अखिल न्याय, बल, और सौन्दर्य्य के नियन्ता हो, और सम्पूर्ण अस्तित्व तुम ही से है"। ऐसा भान करो, ऐसा निश्चय करो, इन आध्यात्मिक प्रयोगों को परखो और देखो।

छोटे लड़के, अथवा छोटे बच्चे को प्रफुल्लित और खुश रखने के लिए लोग क्या उपाय करते हैं? ये सब मूढ़ माता पिता बच्चों के शागिर्द बन जाते हैं। ये सबके सब बच्चे के पाठ याद करते हैं। माता पिता (बच्चों के) शिष्य क्योंकर हैं? वे बच्चों की भाँति बोलना, बच्चों की तरह नाचना, बच्चों की तरह मुँह बनाना शुरू करते हैं। बच्चा अर्थात् वह नन्हा सा उपद्रवी बालक उनके कंधों पर सवार होता है। बच्चा सरल जीवन

बिताता है, बच्चा स्वतंत्र है, उसे किसी का भय नहीं है। तुम्हारे किसी भी डेमास्थेनीज़ या बर्क (Demosthenes or Burkes) की अपेक्षा बच्चे के फैले हुए ओंठ अधिक आदेशक, अधिक प्रभावशाली, और अधिक प्रवर्तक या प्रबोधक होते हैं। उसकी बात माननी ही पड़ेगी। यह नन्हा सा उपद्रवी, जिसका शरीर अत्यन्त कोमल है, जिसके हाथ और अंग अत्यन्त नन्हें हैं, अपने में विश्वास रखता है, उसकी इच्छा पूरी ही होगी। वह दुर्बल होते हुए भी बलवान् है। अपने में निश्चयात्मा होने के कारण वह अपने को ओछा नहीं होने देता। माता-पिता कभी कभी अपनी सम्पत्ति बेच डालते हैं; बच्चे की अर्थात् उस नन्हे से ज़ालिम की भलाई के लिए सर्वस्व निछावर कर देते हैं; और धिक्कार है उस मनुष्य को जो बच्चे की आज्ञाओं का पालन नहीं करता। बच्चे की शक्ति का रहस्य वेदान्त है। जगत् उसके लिए जगत् नहीं है; चतुरता उसके लिए तुच्छ है; संपूर्ण शक्ति और परमानन्द से इतर उसके लिए कुछ भी नहीं है; सम्पूर्ण शक्ति उस नन्हे, सरल और मधुर बच्चे के भीतर है। यही लड़के की सफलता का रहस्य है।

इसी तरह वेदान्त को व्यवहार में लाओ, निश्चय से समझो और अनुभव करो कि मैं सर्व शक्तिमान् परमेश्वर हूं, विश्व (ब्रह्माण्ड) का शासन-कर्त्ता हूं, प्रभुओं का प्रभु हूं, देवों का देव हूं, और संसार के सर्व भूतों का अध्यक्ष और अधिष्ठाता हूं; निश्चय से बूझो और जानो, कि "मैं परमार्थ तत्त्व हूं"; इसका साक्षात्कार करो और इसे व्यवहार में लाओ; फिर तुम्हें काफ़ी चेले (अनुगामी) मिल जांयगे। बिना विज्ञापन दिये, बिना किसी बड़े आदमी की कृपा-पात्र बने, और बिना समाचार पत्रों की अनुग्रह दृष्टि के बच्चों को शिष्य मिल

जाते हैं। जो कोई बच्चे की तरफ़ देखता है, वही चेला हो जाता है। क्या यह यथार्थ नहीं है ?

वेदान्त को अमल में लाओ, और तुम्हें यथेष्ट मनुष्य तुम्हारी बात सुनने को मिल जाँयगे। जब चन्द्रमा निकलता है, तब उसके सौन्दर्य (शोभा) से आनन्द लेने वालों की कमी नहीं रहती। भारत में दूज के दिन सब लोग घरों से बाहर निकल आते हैं, चन्द्रमा की ओर देखते हैं, और उसके भीतर ब्रह्मदेव की उपासना करते हैं। यह तिथि द्वितीया कहलाती है, जिसका अभिप्राय है "आनन्द का दिन"। उस दिन लोग अच्छा भोजन करते हैं, मित्रों और सम्बन्धियों से मिलते जुलते हैं, और मौज उड़ाते हैं।

अपने हृदयों में चन्द्रोदय होने दो और कार्य सम्पादन विधि के लिए व्यथित मत हो। उपाय और साधन तुम्हें खोज लेंगे, उन्हें तुमको खोजना पड़ेगा। जब गुलाब खिलता है, तब मक्खियों वा भौरों की कमी नहीं रहती। जहाँ शहद (मधु) होगा, वहाँ चींटियां पहुँच ही जाँयगी।

इसी तरह केवल अपने हृदयों में मधु पैदा करने की चिन्ता करो; ज्ञान के पूर्ण खिले हुए गुलाबों को अपने भीतर उत्पन्न करो; तब सब आ जायँगे, तुम्हें किसी की आवश्यकता नहीं रहेगी, तुम्हें किसी प्रकार की ज़रूरत नहीं रहेगी; यदि तुम्हें किसी वस्तु की आवश्यकता भी होगी, तो वह आत्म-साक्षात्कार की, आत्मानुभव की। जब तुम इससे विमुख होगे, तो सब पदार्थ तुम्हें छोड़ जाँयगे। जब तुमने अपने अन्तरात्मा का दृढ़ निश्चय से आश्रय कर लिया, जब तुमने उसे ख़ूब जान लिया, और जब तुम जीवन में उसे व्यवहार में ले आवोगे, तब सारा संसार कुत्ते के समान तुम्हारे पैर चाटने की इच्छा करेगा। संसार के पीछे पीछे मत दौड़ो।

सम्पूर्ण शक्ति की कुंजी (रहस्य) तुम्हारे भीतर है, और अन्यत्र कहीं नहीं है।

यहाँ कैलीफ़ोर्निया में शास्ता झरने (चश्मे) हैं। कहा जाता है कि उनका जल बड़ा ही उत्तम है। हर मनुष्य वहां जाना चाहता है। शास्ता चश्मों को दर्शकों की चिन्ता नहीं होनी चाहिए, उनको किसी प्रकार की घोषणाएँ नहीं जारी करनी चाहिए, उन्हें लोगों के पास कोई विज्ञापन भेजने की ज़रूरत नहीं। लोग स्वयं उन्हें ढूँढ़ लेंगे और ढूँढ़ने को बाध्य होंगे।

इसी तरह जिस घड़ी ज्ञान, जीवन, पवित्रता तथा प्रेम के शुद्ध और ताज़े झरने तुम्हारे हृदय से उमड़ने लगेंगे, उसी घड़ी मानों शास्ता चश्मे तुम्हारे भीतर मौजूद होंगे, तब दर्शक और लोग तुम्हें ढूँढ़ निकालेंगे। यह अपरिवर्तनीय और अटल नियम है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि वे चश्में तुम्हारे अन्दर जारी हों, फिर चाहे तुम एक स्थान पर रहो या भ्रमण करते रहो। अपने भीतर सत्य और परमार्थ की निष्ठा होने के बाद यदि तुम एक स्थान पर रहे, तो लोग तुम्हारे पास वहीं आवेंगे, यदि तुम घूमते रहे तो तुम्हें ढूँढ़ेंगे। बाहरी बर्ताव पर कुछ भी निर्भर नहीं है। उन चश्मों को अपने भीतर जारी करने का एक मात्र उपाय यही है, कि आत्मनिष्ठा की धारा निर्विघ्न और स्वतंत्र तुम्हारे अन्दर बहने लगे।

कैंट (Kant) के बारे में कहा जाता है कि उसे अपनी जन्म-तिथि नहीं मालूम थी, किन्तु सारे संसार में वह विख्यात है। एक स्थान पर रहना ही सफलता का रहस्य नहीं है। आध्यात्मिक शक्ति को प्राप्त करो और फिर चाहे पलँग ही पर पड़े रहो। तब धिक्कार है संसार को यदि वह तुम से सत्य को प्राप्त करने के लिये न आवे।

जब कोई मेजिस्ट्रेट आकर अदालत में अपने आसन पर बैठ जाता है, तब सब वादी, प्रतिवादी, वकील और गवाह आप से आप आ जाते हैं ; मजिस्ट्रेट को उन्हें बुलावाने का कष्ट उठाना नहीं पड़ता ; उसे अदालत के कमरे में कुर्सियों को यथा स्थान रखने की चिन्ता नहीं करनी पड़ती ; उसे अदालत के कमरे के चित्र-पटों को यथास्थान रखने का झंझट करना नहीं पड़ता ; उसे वादियों या प्रतिवादियों या गवाहों को आमंत्रण भेजने के लिये हैरान होना नहीं पड़ता; इन सब बातों का प्रबन्ध दूसरे कर लेते हैं।

राम कहता है, वैकुण्ठ के इस अधिपतित्व को प्राप्त कीजिये। अपने भीतरी दिव्य ऐश्वर्य पर अपना अधिकार जमाइये। हे परम देव! हे परम प्रभु! ऐ मनुष्य! तुम तो चक्रवर्ती हो, और तदनुकूल अपने गौरव में विचरो, अपने दिव्य ऐश्वर्य में चलो फिरो ; तुम तो देव हो, अपने दिव्य भाव में अग्रसर हो। अपने व्यापार विषयक मामलों के लिए, अपनी पोशाक के लिए, अपने रेल-मार्ग, सम्पत्ति और घर के लिये व्यग्र मत हो। इन चीज़ों के लिये चिन्ता मत करो, यह वाह्य प्रपञ्च का कार्य है; यह उनका काम है जो अधिकारापन्न हैं। आओ, अपने दिव्य स्वरूप का अर्थात् अपने ईश्वर-भाव का अनुभव करो। अपने को सूर्यों का भी सूर्य अनुभव करो। और चन्द्रमा, नक्षत्र, तथा देवदूत तुम्हारी टहल करेंगे। उन्हें ऐसा करना पड़ेगा। यही नियम है। यही सत्य है। और वेदान्त इसको सफलता की कुंजी बता कर इसका प्रचार करता है। जिस क्षण तुम अपने दिव्य स्वरूप में स्थित होगे, जिस क्षण तुम अपने असली स्वरूप का अनुभव करोगे, जिस क्षण तुम अपने वास्तविक स्वरूप को जान लोगे, उसी क्षण तुम्हारी शक्ति महान होगी, उसी क्षण संसार

तुम्हारी ढूँढ में लगेगा, उसी क्षण विश्व तुम्हारी कृपा की भीख माँगेगा।

और देखिये, लोगों का यह समझना संसार की बड़ी भारी भूल है कि सफलता नियमों और बनावटी क़ानूनों से प्राप्त की जा सकती है, या सफलता सर्वशक्तिमान धन पर, सहायता, अनुग्रह, रुपए-पैसे, नौकरों, मित्रों और सम्बन्धियों पर निर्भर है। अरे, इसी तरह तो वे अपने को चौपट करते हैं। इस तरह के प्रयत्न वैसे ही हैं जैसे बुलबुल को बनावटी तौर पर गवाने की चेष्टा करना।

फ़ाख़ता (कपोत) को ही ले लीजिये। यदि हिमालय के ऊँचे से ऊँचे सरो वृक्ष पर वह बैठने पावे, तो स्वतः प्रेरित होगी और मधुर ध्वनियां उससे ख़ुदबख़ुद निकलने लगेंगी। हिमालय की मनोरम चोटियों पर और गुलाबों पर बैठी हुई बुलबुल मधुर तान से गाती है, ऊंचे स्वरों में अलापती है। राम कहता है, ठीक इसी तरह जब तुम आत्म-साक्षात्कार की मनोरम चोटियों पर बैठ जाते हो, जब तुम वहां निश्चिन्त रूप से जम जाते हो, जब तुम अपने दिव्य स्वरूप में दृढ़ता से घर कर लेते हो; तब तुम्हारे दिव्य स्वरूप द्वारा तुम्हारे कार्य, तुम्हारा श्रेष्ठ जीवन, तुम्हारा शुद्ध आचरण, तुम्हारे उत्कृष्ट कर्म अवश्य अंकुरित होते हैं, आप से आप फूट निकलते हैं, उगते हैं और पल्लवित होते हैं; यही ढंग है।

सुधारक लोग नियम और क़ानून बनाकर महापुरुष व प्रभावशाली पुरुष पैदा किया चाहते हैं, और वे उनको आदेश दिया चाहते हैं, तथा अपने को दूसरों का परीक्षक बनाते हैं। यह अस्वाभाविक है, इससे काम न चलेगा।

लोग कहते हैं 'अरे! हम तो अभ्यास चाहते हैं,' राम

कहता है, 'भाई! अभ्यास आवेगा कहां से?' देखो, बाहरी कामों के द्वारा यह अभ्यास करना बुलबुल के बनावटी गाने के समान है। बुलबुल का गला पकड़ कर और उससे यह कहकर कि 'बुलबुल मेरे पास आजा और गा' हम बुलबुल के मधुर गीत नहीं निकलवा सकते। जिस क्षण बुलबुल या फ़ाख़ता स्वतंत्र होती है, उसी क्षण बुलबुल गाती है और फ़ाख़ता गुटकती है। इसी प्रकार जिस क्षण तुम अपने केन्द्र में स्थित होते हो, जिस क्षण तुम अपने ब्रह्मत्व में विराजमान होते हो, जिस क्षण तुम अपने (ईश्वरत्व) में घर कर बैठते हो, अथवा जिस क्षण तुम आत्मानुभव के ऊँचे ऊँचे शिखरों पर पहुँच जाते हो; उसी क्षण तुम्हारे द्वारा उत्तम अभ्यास, शूरवीरता के कार्य उसी तरह पर उमगने लगते हैं, जिस प्रकार फ़ाख़ता कूकती है और बुलबुल मधुर मधुर गाती है, जबकि वह ठीक जगह पर बैठी होती है; यही सच्चा सीधा मार्ग है।

कल्पना करो कि यहाँ पर एक लोहे का टुकड़ा है, और हम लोहे के इस छोटे से टुकड़े को चुम्बक बना कर लोहे के दूसरे टुकड़ों को इसके पास घसीटना चाहते हैं। यह हम कैसे कर सकते हैं? केवल लोहे के उस छोटे टुकड़े को आकर्षण-शक्ति-सम्पन्न बनाने से। यही असली उपाय है कि लोहे का यह छोटा टुकड़ा ऐसा बनाया जाय कि लोहे के दूसरे छोटे टुकड़ों को खींच ले और पकड़ ले। अभी यह छोटा लोहे का टुकड़ा लोहे के दूसरे छोटे टुकड़े को पकड़ नहीं सकता; और ऐसा कर सकने की योग्यता उसमें उत्पन्न करने के लिए हमें पहले उसे चुम्बक में बदल देना होगा। अब हम यह कल्पना करते हैं कि यहाँ पर एक चुम्बक है, अब इस चुम्बक के साथ पहले लोहे के टुकड़े को युक्त कीजिये, जिससे पहला लोहे का टुकड़ा भी

चुम्बक हो जाय और दूसरे लोहे के टुकड़े को खींच व पकड़ सके। अब यह पहला टुकड़ा चुम्बक में बदल दिया गया; परन्तु सच्चे चुम्बक से आप इस पहले टुकड़े को अलग कीजिये, तो इस की ताक़त जाती रहेगी, और वह टुकड़ा लोहे के दूसरे टुकड़े को न पकड़ सकेगा। याद रहे, जब तक लोहे का पहला टुकड़ा सच्चे चुम्बक से जुड़ा हुआ या सम्बद्ध है, तब तक वह भी चुम्बक है, अर्थात् तब तक उसमें चुम्बक के सब गुण मौजूद हैं, और लोहे के चाहे जितने टुकड़े हों उनको थाम सकता है। जिस क्षण हम इस पहले लोह-खण्ड का सम्बन्ध असली चुम्बक से तोड़ देते हैं, उसी समय इसकी ताक़त जाती रहती है, और यह लोहे के दूसरे टुकड़ों को पकड़ रखने से असमर्थ हो जाता है।

इसी तरह कल्पना करलो, यहाँ एक शरीर है, हम उसे मानो ईसा कहते हैं। वह बड़ा अच्छा शुद्ध मनुष्य था। वह क्या है? अपने जीवन के पहले तीस वर्षों में वह लोहे के इस छोटे टुकड़े के तुल्य था, कोई उसे नहीं जानता था, वह एक बढ़ई का लड़का था, वह बड़ा गरीब लड़का था, और अज्ञात माता का पुत्र था, वह हेय वा घृणित समझा जाता था, अब इस लोहे के टुकड़े ने अपने वास्तविक स्वरूप आत्मा से अर्थात् आकर्षण-शक्ति के मूल रूप चुम्बक से, अथवा सम्पूर्ण जीवन और शक्ति के केन्द्र से अपना सम्बन्ध जोड़ लिया। उसने परमात्मा से, सत्य स्वरूप से, अर्थात् आत्म-साक्षात्कार वा शक्ति स्वरूप से अपना नाता जोड़ लिया। फिर उसका क्या हुआ? लोहे का वह टुकड़ा भी आकर्षण-शक्ति से सम्पन्न हो गया, वह एक चुम्बक हो गया, और लोग उसकी ओर खिंच आये, चेले और बहुतेरे लोग उसकी ओर आकृष्ट हुए, स्वभा-

वतः वे लोग उसके सामने झुकने लगे। उसके जीवन के अन्तिम दिनों में ऐसा समय आया कि ज्यों ही ईसा का शरीर, जिसे लोहे का टुकड़ा कहा गया है, चुम्बक से अर्थात् आत्मा से वियुक्त होगया, त्यों ही लोहे के जितने टुकड़े इसमें लगे हुए थे, सब के सब गिर गये, उसके सब चेलों ने उसे छोड़ दिया; जेरूसलेम के उन्हीं लोगों ने जो उसे पहले पूजते और प्यार करते थे, जिन्होंने पहले उसका शाही स्वागत किया था, जिन्होंने उसके सम्मान के लिए नगरों को सजाया था, सबने उसे छोड़ दिया। उसकी ताक़त ठीक उसी तरह जाती रही जैसे लोहे के टुकड़े से चुम्बक की ताक़त हटा लेने से लोहे के टुकड़े की ताक़त जाती रहती है; अब उसमें चुम्बक के गुण बाक़ी नहीं रहे। जब उसके चेलों ने उसे छोड़ दिया, जब उन ग्यारहों चेलों ने उसे छोड़ दिया और लोग उससे ऐसे फिर गये कि उन्होंने उससे बदला लेना चाहा, बल्कि उसे सूली देना चाहा; उसी समय ईसा ने कहा था, "O Father! why hast Thou forsaken me" "ऐ पिता, तू ने मुझे क्यों छोड़ दिया है"। इससे स्पष्ट होता है कि सम्बन्ध टूट गया था। देखिये, ईसा की ज़िन्दगी तुम्हें क्या सिखाती है। वह सिखाती है कि ईसा की समग्र शक्ति और नेकी, इस सच्ची आत्मा या चुम्बक से सम्बन्ध या संयोग रखने में थी। जब ईसा का स्थूल शरीर सच्ची आत्मा या चुम्बक से सम्बन्धित था, तब ईसा का शरीर भी चुम्बक था। परन्तु जब ईसा का शरीर सच्ची आत्मा या चुम्बक से अलग हो गया, तब उसकी शक्ति जाती रही, और उसके चेलों ने तथा अनुयायियों ने उसे त्याग दिया। अपनी शारीरिक मृत्यु के पहले ईसा ने आत्मा से पुनः संयोग स्थापित कर लिया था। आप जानते हैं, कि सूली मिलने के

समय ईसा की मृत्यु नहीं हुई थी। यह तथ्य सिद्ध किया जा सकता है। वह समाधि की अवस्था में था, जिस अवस्था में प्राणों की सब गतियें रुक जाती हैं, जब नाड़ी की गति बन्द हो जाती है, जब मानो रक्त नसों को छोड़ जाता है, जब जीवन का कोई भी लक्षण नहीं रह जाता, जब शरीर को मानो सूली दे दी जाती है। ईसा ने तीन दिन तक अपने को इसी हालत में रक्खा और योगी की भाँति पुनः जीवन को प्राप्त किया और भाग कर कश्मीर में फिर आकर रहने लगा। राम कश्मीर गया है, और ईसा के वहाँ रहने के बहुत से चिन्ह उसे मिले हैं। तब तक कश्मीर में ईसाइयों की किसी सम्प्रदाय का कोई दल नहीं था। वहाँ बहुत से स्थान ईसा के नाम से विख्यात हैं, ऐसे स्थान जहाँ ईसाई कभी नहीं आये थे। कुछ नगरों के भी वही नाम हैं जो जरूसलेम के उन अनेक नगरों के हैं जिनमें से होकर ईसा गुज़रा था। वहाँ दो हज़ार वर्ष की पुरानी एक क़ब्र है। यह बड़ी पूज्य मानी ज़ाती है, और ईसा की क़ब्र कहलाती है। हिन्दुस्तानी में क्राइस्ट का नाम ईसा है। ईसा के माने हैं राजकुमार। इस तरह के बहुत से ऐसे प्रमाण हैं जिनसे सिद्ध होता है कि ईसा भारत आया था, जिस भारत में उसने अपने उपदेशों की शिक्षा पाई थी।

इसके सिवाय, भारत में एक प्रकार का छूमंतर जादू की तरह लाभ पहुँचानेवाला मरहम है, जिसे ईसा-मरहम कहा जाता है। जो लोग इस मरहम को बनाते हैं, उनका कहना है कि पुनः संजीवित होने के बाद यही मरहम ईसा के घावों में लगाया जाता था। और यह मरहम सब तरह के घावों को अच्छा करने में जादू का सा काम करता है।

ईसा भारत को लौट कर गया था, इसकी गवाही बहुता-

यत से मिलती है। राम यहाँ उसका व्योरा न देगा। राम तुम से यह कह रहा है कि ईसा ने जब शरीर चुम्बक रूपी ईश्वर से संलग्न कर लिया, तब सारा संसार उसकी ओर खिंच गया। यह सम्बन्ध टूटा कैसे? अनेक कारण थे। बाहरी प्रभाव, लोगों से बहुत मिलना-जुलना, और आध्यात्मिक उत्कर्ष (उन्नति की शिखरों) से बहुत काल तक अलग रहना, इत्यादि। इन्हीं बातों से हम उस परम शक्ति से दूर गिर जाते हैं। आप को मालूम है कि जन-समूह को छोड़ कर ईसा को पहाड़ की कन्दराओं में शरण लेनी पड़ी थी। और अपने एक चेले से ईसा ने कहा था, "I feel the power has been taken away from me, who has touched me?" "मुझे मालूम होता है कि मेरी शक्ति निकल गई, किस ने मुझे छू लिया?"। इस तरह पर लोगों के साथ बहुत काल तक रहने और बहुत दिनों तक अध्यात्मिकता की उन्नति से रहित रहने के कारण यह सम्बन्ध टूटा था। यह बिलकुल स्वाभाविक है, वा बिलकुल मनुष्योचित है। ईसा के दोषों से भी हमारा हित होता है। हर एक व्यक्ति की जीवनी से हमें लाभ पहुँचता है, यदि हम उसका ठीक-ठीक परिशीलन करें। किसी भी मनुष्य की जीवनी के यथार्थ परिशीलन से आप उतनाही लाभ उठा सकते हैं जितना कि ईसा की जीवनी से। राम कहता है कि जिस क्षण तुम अपने को आत्मा से अलग करलेते हो, उसी क्षण तुम कुछ नहीं रह जाते। अपने को परमेश्वर में लीन रक्खो, अपने को परमेश्वर से अभेद रक्खो, उन आध्यात्मिक उन्नति की उच्च शिखरों से नीचे न उतरो अर्थात् सत्य को अनुभव करो, फिर तो तुम वैसेही चुम्बक हो, जैसे लोहे का टुकड़ा चुम्बक है। तुम्हारा शरीर वैसे ही सजीव हो जाता

है जैसे कि एक छोटे बच्चे को उसका माँस सजीव होता है; उसके सारे अश्रु, जिसे उसका तरल शोक कहा जा सकता है, सच्चे अश्रु होते हैं।

इसी तरह यदि परमेश्वर से तुम्हारी अभिन्नता है, तो तुम पवित्र हो, तुम चुम्बकीय शक्ति-सम्पन्न लोहे का टुकड़ा हो, और चुम्बक से संलग्न रहते हुए तुम चुम्बक हो जाते हो। यह बात हमें उसी प्रश्न के दूसरे रूप की ओर ले जाती है। हमने मूल स्रोत को अर्थात् मूल कारण को अथवा शक्ति की वास्तविक कुंजी को बताया है। परन्तु लोग इसे कुछ और ही समझ लेते हैं। जैसे बच्चे में वास्तविक शक्ति सत्य-आत्मा अर्थात् अपने स्वरूप की उपलब्धि से आती है, किन्तु लोग उसके शरीर को महत्त्व प्रदान कर देते हैं, और बच्चे के जीवन में शक्ति के इस वास्तविक स्रोत को उन्नति करने के बदले लोग बच्चे के जीवन को पद-दलित बना लेते हैं।

ईसा की जीवनी पढ़ो, और जैसा ईसा ने किया था वैसा ही तुम भी करो। ईसा के शरीर पर नहीं बल्कि ईसा की आत्मा पर निर्भर करो, अपने भीतर आत्मा पर निर्भर करो। ईसा होने का सच्चा मार्ग यही है।

वेदान्त भारत-वासियों के लिये ही नहीं है। वह ईसाइयों के लिये भी वैसाही है जैसा कि हिन्दुओं के लिए। वेदान्त की दृष्टि से ईसा के नाम से मनुष्य की मुक्ति कैसे होती है? यह समस्या कैसे हल होती है? यह एक कथा से वर्णन किया जा सकता है। एक माता थी, वह बहुत समझदार नहीं थी। उसने अपने बच्चे में विश्वास पैदा कर दिया था कि बैठक से मिली हुई कोठरी में एक प्रेत रहता है, जो बड़ा विकट है अथवा कोई बड़ी भयङ्कर चीज़ है। बच्चा बहुत डर गया

और उस कोठरी में पैर रखते सहमता था। एक दिन शाम को जब लड़के का बाप अपने दफ़्तर से लौट कर आया, तो उसने लड़के से उस कोठरी से एक वस्तु ले आने को कहा। उसे इस समय उस वस्तु की ज़रूरत थी। लड़का डरा हुआ था। अंधेरी कोठरी में पैर रखने की उसकी हिम्मत नहीं पड़ी। और उसने दौड़ कर बाप से कहा, "दादा! मैं उस कोठरी में न जाऊँगा, क्योंकि उसमें एक बड़ा भयंकर प्रेत वा पिशाच है, जिससे मैं डरता हूँ"। बाप को यह बात नहीं पसन्द आई। वह बोला "नहीं, नहीं, बेटा! वहाँ न प्रेत है न पिशाच है, वहाँ ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो तुम्हें हानि पहुँचा सके, इस लिए जाओ और मैं जो चीज़ माँगता हूँ वह ले आओ; किन्तु लड़का न टसका। बाप बड़ा चतुर था, उसने एक उपाय सोचा; इस रोग की, अर्थात् इस अंध विश्वास की, जो लड़के में जम गया था, एक दवा तजवीज़ की। पिता ने नौकर को अपने पास बुलाया और उसके कान में कुछ चुपके से कहा। जिस कमरे में बाप था उससे नौकर चला गया और पीछे के एक दरवाज़े से बगल वाली कोठरी में, जो भूतख़ाना मान लीगई थी, घुस गया। उसने एक तकिया ले लिया और उसके एक कोने पर एक काला कपड़ा डाल दिया। तकिया के जिस कोने पर काला कपड़ा पड़ा हुआ था उस कोने को कोठरी की एक खिड़की की दराज़ से बाहर निकाल दिया, और इस ढंग से बाहर निकाला कि वह विकट जान पड़ने लगा। लड़के का ध्यान उस ओर गया और उसे एक अद्भुत विकट वस्तु दिखाई पड़ी। बाप ने (तकिये के बाहर निकले हुये कोने की ओर दिखा कर) कहा, "यह तो कान सा जान पड़ता है। इस पर लड़के की फ़ुर्तीली कल्पना-शक्ति ने तुरन्त जान लिया

कि यह माने हुए प्रेत का कान है, और वह चीख़ उठा, "दादा, यह तो पिशाच का कान है, मैंने तो तुमसे कहा ही था कि इस घर में प्रेत रहते हैं, अब मेरी बात सच्ची होगई"। पिता ने कहा, "प्यारे पुत्र! तुम्हारी बात ठीक है, पर हिम्मत करो और मर्द बनो, इस छड़ी को ले लो, और हम पिशाच का नाश कर देंगे"। आप जानते हैं, लड़के बड़े वीर हुआ करते हैं, उनमें बड़ा साहस होता है, वे हर काम की हिम्मत कर सकते हैं, और लड़के ने बाप की सुन्दर छड़ी उठा कर एक ज़ोर का हाथ मारा। एक शोर सुनाई पड़ा और कुछ मन्द सा रोना। इस पर अँधेरी कोठरी के भीतर वाले नौकर ने पिशाच के कल्पित कान को फिर कोठरी के भीतर खींच लिया। लड़का इससे प्रसन्न हुआ और दिलेरी से उसने गुल मचाया कि मैं प्रेत पर प्रबल हो रहा हूँ। पिता ने ताली बजा कर उसका हौंसला बढ़ाया, उसे पानी पर चढ़ाया अर्थात् फुला दिया, उसकी तारीफ़ की और कहा, "मेरे प्यारे बेटे! तुम बड़े बहादुर हो, तुम तो बड़े ही दिलेर हो"। किन्तु जब पिता लड़के से इस तरह बात चीत कर रहा था, तब दरार से या कोठरी के दरवाज़े के बीच की झिरी से पिशाच के दोनों कान दिखाई पड़े। लड़का फिर उत्साहित किया गया और उसने पिशाच की तरफ बढ़कर, और उस कल्पित पिशाच के शिर पर, चोट पर चोट जमानी शुरू की। उसने उसे बारम्बार पीटा और भीतर से रोने की आवाज़ आने लगी, और बाप ने कहा, "सुनो, बेटा! पिशाच परेशानी से रो रहा है; तुम जीत गये, तुम्हारी जय हुई"। लड़का कल्पित प्रेत को पीटता ही रहा और बाप ने उस तकिया को बाहर खींच लिया। पिता पुकार उठा, "ऐ बहादुर बेटे! तुमने पीट

कर प्रेत को तकिया बना दिया, तुमने उसे तकिया में बदल दिया"। लड़के को सन्तोष हो गया कि यह बात ठीक है; प्रेत अर्थात् पिशाच, अथवा अन्ध विश्वास चला गया और लड़का बहादुर बन गया, तथा प्रसन्नता से वह उछलने कूदने नाचने और गाने लगा। इसके बाद वह कोठरी में गया और जिस चीज़ की पिता को ज़रूरत थी वह ले आया। किन्तु क्या कोई समझदार बाप सयाने लड़के के लिये ऐसी दवा तजवीज़ करेगा? कभी नहीं। यह दवा छोटे बच्चों के लिए बहुत अच्छी है, परन्तु सयाने के लिए नहीं। उस छोटे लड़के की इस उपाय से भलाई हुई, इससे उसका काम चल गया, परन्तु सयाने लड़कों के लिए ऐसी दवा की ज़रूरत नहीं है। हर छोटे बच्चे की ऐसी कल्पनाओं या स्वप्नों को हम दूर भगा सकते हैं, यदि हम उनके लिए काफ़ी समय दे सकें। अब ध्यान दीजिये, वेदान्त कहता है कि इस प्रेतवाली कोठरी के मामले की तरह असली प्रेत लड़के द्वारा तकिया पीटे जाने से नहीं दूर हुआ। प्रेत के भाग जाने का असली कारण लड़के द्वारा तकिया का पीटा जाना नहीं है, बल्कि लड़के में इस विश्वास का प्रकट हो आना है कि कमरे में प्रेत नहीं है। लड़के को यह विश्वास करा दिया गया कि वहाँ प्रेत नहीं है अथवा वहाँ प्रेत था भी नहीं। लड़के की कल्पना के द्वारा प्रेत कोठरी में आया था, वास्तव में प्रेत वहाँ कभी भी नहीं था। मिथ्या कल्पना ने कोठरी में प्रेत को ला बैठाया था, और इसी मिथ्या कल्पना को ठीक करने की ज़रूरत थी। सयाने लोगों की कल्पनाओं का दूसरा ही इलाज है। लोग पहिले विश्वास करते हैं कि, "हमारा उद्धार नहीं हो सकता, हम स्वभावतः पापी हैं, हम उस भीषण

नरक के किनारे पर हैं जिसमें हमें जाना है, भयंकर पापों का समूह हमें नीचे दबाये देता है, आदम के पाप के कारण हमारी प्रकृति पापिनी होगई है, स्वभाव से ही हम पापी और संसारी हैं, हम दीन, घिसलनेवाले, और निर्बल जन्तु हैं।" कृपा करके राम को साफ़ साफ़ कहने के लिए क्षमा कीजियेगा। इञ्जील का एक भाग लोगों में विश्वास पैदा करता है कि उनकी प्रकृति पापिनी है। (इंजील के) प्राचीन संस्करण (ओल्ड टेस्टामेंट Old Testament) ने इस संसार के विचारे ईसाइयों के अन्तःकरणों में यह बात जमा दी है; उसने तुम्हारे प्रकाशित हृदय-कोष्ठकों में यही बैठा दिया है; उसने तुम्हारे मनों पर, तुम्हारे अखंडनीय आत्मा के कमरे अर्थात् अन्तः करण में पतन का प्रेत (घोस्ट आफदी फ़ाल Ghost of the Fall), पापमय प्रकृति, पददलित, नीच वा दीनात्मा का प्रेत अंकित कर दिया है। ये विचार लोगों के दिलों में बलात भरे गये हैं; ऐसे विचार कि "हम संसार में कुछ भी नहीं हैं, केवल तुच्छ जन्तु हैं, दीन कीट के सिवाय कुछ भी नहीं हैं, सचमुच और कुछ भी नहीं हैं सिवाय दीन-हीन कीड़ों-मकोड़ों के, जो पवन और तूफ़ान की दया पर निर्भर हैं और इस संसार में अशक्त हैं"। पहले संसार के अन्तःकरणों में अंध-विश्वास का भूत बसा दिया गया। तब नया संस्करण (निउ टेस्टामेंट New Testament) आया। राम द्वेष बुद्धि से नहीं कह रहा है। नवीन संस्करण में पिता ने भ्रान्ति भरे अंध विश्वास को हटाने की चेष्टा की जिसे माता (प्राचीन संस्करण) ने लोगों में पैदा कर दिया था। नवीन संस्करण में सेन्ट पाल पिता आया और दुनिया के दिलों से इस भूत को हटाने की उसने पूरी कोशिश की। उसने इस भूत से उनका पीछा छुटाने

की, उन्हें स्वतन्त्र करने की यथा शक्ति चेष्टा की। उसने कौनसा उपाय ग्रहण किया? राम कहता है, सेन्ट पाल ने ऐसा नहीं किया, किन्तु ईश्वर ने सेन्ट पाल के शरीर द्वारा ऐसा किया और लोगों को वतलाया कि यह (छुटकारा उनका) कैसे हो सकता है। जन समाज को वतलाया गया कि, यह पाप अर्थात् यह स्थूल पापी प्रकृति, मन की यह नीचता, अँधेरे में यह भटकना, यह पाप अर्थात् यह पाप व सम्पूर्ण सत्यानाश का प्रेत, एक विशेष तरीक़े से भगाया जा सकता है। इस तरीक़े को उस (सेन्ट पाल) ने शुद्धि या मार्जन (बपतिस्मा Baptism) समझा। ईसाई होने से अर्थात् सम्प्रदाय में शामिल होकर, वा प्रार्थनाओं में उपस्थित होने से, भुने हुए सुअर की भेंट से प्रसाद पाने की प्रार्थना करके, धर्माचार्यों को खूब खिलाने पिलाने से, ईसामसीह की पोशाक (वाना) पहनने से, अर्थात् इन सव कामों के करने से तुम्हारा उद्धार हो जाता है और तुम्हारा नाम जीवन की पुस्तक में लिख लिया जाता है। इस उपाय को ग्रहण करो; इन रीतियों को वरतो, जो तकिया को पीटने के समान हैं; ये काम करो, ईसा का नाम भजो, गिर्जाघर में गीत गाओ, उपासना वा प्रार्थना करो, पादड़ियों को दान दो, उनको खिला खिला कर मोटा करो; इस रीति से तुम्हारा उद्धार हो जाता है। राम कहता है, कि इन कामों को करने से यदि लोगों को सजीव विश्वास की प्राप्ति हो जाय, यदि उनमें सजीव निश्चय पैदा हो जाय कि उनका उद्धार हो गया, तो सचमुच उनका उद्धार हो जाता है। राम कहता है कि यथार्थ में पक्का ईसाई अपने धर्म के नाम में इन कामों को करने के वाद यदि अपना उद्धार हुआ समझता है, तो अवश्य उसका उद्धार होगा, जिस तरह कि

लड़के ने पिशाच को पीट कर तकिया बना देने का श्रम किया और फिर कमरे से भूत का अड्डा उखड़ गया, अर्थात् प्रेत वा पिशाच वहाँ नहीं रह गया।

इसी तरह यदि आप ईसाई हैं, और अपने उद्धार का आप को दृढ़ विश्वास होता है, तो अवश्य आप का उद्धार हो जाता है। राम उन स्वतंत्रानन्दी विचारकों और नास्तिकों से सहमत नहीं है, जो ईसाइयों के जीते जागते विश्वास को भ्रान्ति या गया बीता बताते हैं। ईसाई धर्म की निन्दा करने में राम का मत इन लोगों से नहीं मिलता। यदि आप का निश्चय अर्थात् धर्म-विश्वास आप के मन को साहस देता और आप में यह धारणा दृढ़ करता है कि आप का उद्धार हो गया, तो ठीक आप का उद्धार हो जाता है। परन्तु साथ ही साथ राम कहता है कि दुनिया अब बच्चा नहीं रही, दुनिया अब सयाने लड़के की दशा में है, इस प्रकार के सिद्धान्त ने अब तक कोटियों प्राणियों की रक्षा की है, परन्तु अब ऐसा समय आ गया है कि आप ऐसे अनुभव से भूत को अपने कमरों से हँका देने की चेष्टा करें कि:—"मेरी प्रकृति पापिनी नहीं है; मेरे कमरे में किसी प्रेत का अड्डा नहीं है; मैं अभागा, घिसलने वाला कीड़ा मकोड़ा नहीं हूं; मेरी आत्मा पद-दलित और मलिन नहीं है,"। वेदान्त के अनुसार अनुभव कीजिये कि आप सदा से शुद्ध-पवित्र हैं; आप हमेशा से बे दाग़ हैं; आप सदा से सर्वत्र सम्पूर्ण हैं; अनुभव कीजिये कि हम पवित्रों के परम पवित्र, प्रभुओं के परम प्रभु वा परमेश्वर हैं। यही विचारिये; यही समझिये, यही अनुभव कीजिये, ऐसा ही जीवन व्यतीत कीजिये। जब सामने से हाथ लाकर आप नाक छू सकते हैं, तो मूँड़ के पीछे से हाथ घुमा कर नाक छूने की क्या ज़रूरत है?

उपासनाओं वा प्रार्थनाओं द्वारा मुक्ति (Salvation) में विश्वास करने से कोई लाभ नहीं है।

वेदान्त कहता है कि यदि आप अपना यह विश्वास बना सकते हैं कि "आप सदैव से मुक्त हैं", तो आप विश्व-ब्रह्माण्ड के उद्धारक हो जाते हैं। यदि आप यह निश्चय करें कि "आप शरीर कभी नहीं थे, अथवा आप कभी दासत्व में बँधे नहीं थे"; यदि आप सयाने लड़कों की तरह हो जाँय और अबोध बच्चे न बने रहें; यदि वेदान्त के स्वर में स्वर मिलाकर आप विश्वास करें कि "आप सदैव से मुक्त हैं"; यदि आप वेदान्त के अनुसार अनुभव करें कि आप शक्ति हैं, तो आप अखिल जगत के तारक (मोक्ष-दाता) हो जाते हैं। अनावश्यक, निरर्थक, और अयुक्त रीतियों में आप अपनी शक्तियों का नाश मत करें। अपना उद्धार करने के लिए तकिया को पीटने की बचपन की रीतियों में अपनी शक्तियों का आप अपव्यय न करें। अब बच्चे न बने रहें। अपने आप को मुक्त समझिये, और बस आप मुक्त हैं। इस तरह सम्पूर्ण ईसाई धर्म में उद्धार-तत्त्व वेदान्त है। वेदान्त सूक्ष्मतर उपाय है। यदि इन सब रीतियों के पूरा हो चुकने पर आप में यह निश्चय दृढ़ हो जाय कि "मेरा उद्धार हो गया", दूसरा कोई विचार बाकी न रहे, तो याद रखिये कि आप की ईसाइयत में वेदान्त व्याप्त और फैला हुआ है, और वही आपकी रक्षा करता है। बाहरी नामों और रूपों तथा रीतियों को अनुचित महत्व न दो।

ईसाइयों की धार्मिक चढ़ाइयों वा युद्धों (Crusades) से, जिनमें बेहद ख़ून बहा, जूडिया (यहूदियों के देश) में कलह और संग्राम फैला। एक मैदान में ईसाइयों ने मार और

हार खाई। ईसाई सेना के एक धर्मोन्मत्त ने, जो नाम और कीर्ति का भूखा था, ख़बर उड़ा दी कि "स्वप्न में मुझे एक देवदूत ने दर्शन देकर बताया है कि मेरे पैरों के नीचे एक ऐसा भाला तुपा हुआ है जो एक बार ईसा के शरीर को छू गया था, और वह भाला मिल जाने से ईसाइयों की जीत होगी।" लोगों ने यह ख़बर पाते ही उसे फैलाना शुरु कर दिया और वह ख़बर सारी सेना में फैल गई। बात कहाँ तक सच या झूठ है, इसका विचार किये बिना ही सब के सब लोग वहां भूमि खोदने लग गये, परन्तु भाला न निकला। प्रातःकाल से बहुत रात तक वे खोदते रहे, फिर भी भाला न हाथ लगा। वे बहुत निराश हुए, और खोज बन्द करने ही वाले थे कि वही मनुष्य गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाने लगा कि "मुझे वह स्थान मिल गया, वह मुक़ाम मिल गया"। सब के सब उसके साथ उस स्थान पर गये, जहाँ उसने भाला निकलने को बताया था। वहाँ उन्हें भाला मिला। भाला बहुत पुराना और जीर्ण था, चीटियों और कीड़ों-मकोड़ों ने उसे खा रक्खा था। उस (धर्मोन्मत्त) ने कहा "यह भाला है, इसको मट्टी ने खा लिया है, इसका अवश्य ईसा के शरीर से स्पर्श हुआ होगा।" और उसने भाले को ऐसी जगह पर ऊँचा कर दिया जहाँ पर हर एक व्यक्ति उसे देख सके। ईसाई ख़ुशी से भाले के इर्द-गिर्द उछलने लगे, उनके हर्ष की हद न रही। मट्टी से भरे हुए भाले को पाने के आवेश में बल और उत्साह से परिपूर्ण होकर सब ने एक साथ फिर शत्रु पर धावा किया और विजयी हुए। बाद को जब ईसाई यूरोप को लौटे, तब सब में यही विश्वास जमा हुआ था कि भाले के ही प्रभाव से उन्हें जय वा श्री प्राप्त हुई

थी। परन्तु कुछ दिनों के बाद वही मनुष्य जिसने उक्त कहानी कही थी, बीमार हुआ, और मरण प्राय हो गया। जो धर्माचार्य (priest) उसका कल्याण करने आया था, उससे उसने क़बूला कि भाले की कहानी जाली थी, उसने कहा कि "भाला वास्तव में मेरे परदादा का था, वह भी सैनिक था। परदादा के मरने के समय से भाला चीथड़ों में लपेटा हुआ घर में रक्खा था। केवल मेरे परदादा ने ही इस भाले का व्यवहार नहीं किया था, बल्कि उन्हें भी अपने पूर्व पुरुषों से यह प्राप्त हुआ था। जब ईसाई जेरूसलेम (Jerusalem) को जा रहे थे, तब मैं इस भाले को जैसा का तैसा लपेटा हुआ अपने साथ लेता गया, किन्तु समर-भूमि में वह बेकार जान पड़ा, और भागते समय मुझे यह ख़याल आया कि मैं सर्व-प्रिय और साथ ही साथ नामी भी हो सकता हूं। इस लिए मैंने कथा गढ़ी (रची), और जब लोग मुझ से दूसरी ओर खोद रहे थे, तब मैंने खाई में भाले को फेंक दिया और जब लोगों ने आकर वहां खोदा, तो भाला उनके हाथ लग गया"। ऐतिहासकों ने छिपकर सुननेवालों का काम किया और भेद को पाकर प्रकट कर दिया कि भाले की कोई महिमा नहीं थी, महिमा थी लोगों के पूर्ण विश्वास और उत्साह की। उन्हों ने बतलाया कि जीत का कारण सैनिकों की भीतरी शक्ति थी, न कि भाला। उन्हों ने कहा कि सैनिकों ने अपने भीतर आत्मिक शक्ति उत्पन्न की, और लोगों के उसी सजीव विश्वास ने विजय दिलाई ; भाले ने कुछ नहीं किया। इसी तरह वेदान्त कहता है, "ऐ ईसाइयों! मुसलमानों! वैष्णवों! सम्पूर्ण संसार के विभिन्न विभिन्न धर्मावलम्बियों! यदि तुम यह समझते हो कि ईसा या बुद्ध या कृष्ण अथवा किसी अन्य महात्मा के नाम के कारण तुम्हारा

उद्धार हो जाता है, तो याद रक्खो कि ईसा में, या बुद्ध में, या कृष्ण में, या किसी दूसरे शरीर में कोई करामात नहीं है, असली करामात तुम्हारे अपने निज स्वरूप (आत्मा) में है"। विश्वास (faith) और मत (creed) के भेद को समझो। भाले की कहानी लोगों का मत और जीती जागती शक्ति थी। उससे प्रकट हुआ आवेश लोगों का विश्वास कहा जा सकता है। यह सजीव विश्वास ही लोगों का उद्धार करता है, न कि मत वा पन्थ।

वेदान्त कहता है, यदि यह सजीव विश्वास, यह सजीव शक्ति ही ईसाइयों की विजय का कारण थी, तो उसे आप क्यों नहीं ले लेते, और उस सजीव विश्वास को अपने प्रिय आत्मा में, अर्थात् अपने सच्चे स्वरूप में क्यों नहीं प्रयुक्त करते ? उस सजीव विश्वास को आत्मा में, अर्थात् भीतर के सच्चे स्वरूप में क्यों नहीं लगाते ? सजीव या निर्जीव विश्वास को ईसा, बुद्ध, या कृष्ण अथवा दूसरों में क्यों लगाते हो ? इसको भीतर के आत्मा में, भीतर के ईश्वर में क्यों नहीं लगाते ? कितना सरल उपाय है! सजीव विश्वास का कैसा स्वाभाविक प्रयोग है!!

राम से बारम्बार यह प्रश्न किया जाता है कि "यदि वेदान्त ऐसा है, यदि वेदान्त का सार यह है, और यदि वेदान्त का जन्म भारत में हुआ था, तो भारत इतना पददलित क्यों है ?" भारत की दुर्दशा का कारण यही है कि लोग वेदान्त को व्यवहार में नहीं लाते। अमेरिकावासी भारत के लोगों से अधिक वेदान्त पर अमल करते हैं, और इसी से वे ऐश्वर्यवान् हैं। वेदान्त को भारत के पतन का कारण बतलाने का संसार को कोई हक़ नहीं है। एक सुन्दर कहानी सुना कर

राम इसे सिद्ध करेगा। भारत में एक ग्राम का एक लड़का वड़ा भारी विद्वान हो गया। उसने विश्वविद्यालय में पढ़ा था, और विश्वविद्यालय के नगर में रहने से उसमें कुछ यूरोपीय ढंग आ गये थे। आप जानते हैं कि भारत के लोग वड़े ही स्थिति-पालक (conservative) होते हैं। और बहुत थोड़े दिनों से ही वहाँ अँग्रेज़ी-रीति-नीति का प्रवेश हुआ है।

राम ऐसे बहुतेरे लोगों को जानता है जिन्हों ने अँग्रेज़ी विश्वविद्यालयों में अभ्यास तो किया है, परन्तु वे अँग्रेज़ी पोशाक कभी नहीं पहनते, अँग्रेज़ी भाषा कभी नहीं बोलते। माता-पिता ऐसी गुस्ताख़ी अपने सामने नहीं सह सकते। अस्तु, इस लड़के ने विश्वविद्यालय के नगर में एक घड़ी खरीदी। गर्मी की तीन महीनों की छुट्टी में वह अपनी दादी के यहाँ रहा। वहाँ उसे घड़ी की ज़रूरत जान पड़ी। वह घड़ी को अपनी दादी के यहाँ ले गया। दादी स्वभावतः घर में इस अनाहूत-प्रवेश (intrusion) के विरुद्ध थी। युवक कोई अंग्रेज़ी वस्त्र तो अपने साथ नहीं लाया, परन्तु उसने समझा कि अध्ययन के लिए घड़ी का होना अत्यावश्यक है। उसे अंग्रेज़ी कुर्सी या मेज़ लाने का साहस नहीं हुआ, क्योंकि ये चीज़ें तो वड़ी भीषण समझी जाती थीं ; परन्तु सब आपत्तियों के लिए तैयार होकर वह घड़ी ले आया। सारा परिवार इसके विरुद्ध था, दादी विशेष करके थी। वह इस अनधिकार प्रवेश (intrusion) को नहीं सह सकी। उसके लिये तो यह वड़ी ही भयानक बात थी। उसने कहा, "देखो, यह हर क्षण टिक टिक का अप्रिय शब्द किया करती है, इसे तोड़ डालो, नष्ट कर दो, या वाहर फेंक दो; यह एक अपशकुन है; यह किसी भीषण चीज़ की सृष्टि करेगी, यह किसी भीषण दुर्घटना का

कारण होगी।" दादी किसी तरह से भी नहीं मानी। नवयुवक ने समझाने की यथा शक्ति चेष्टा की, परन्तु वह राज़ी न हुई। दादी के रोष-क्षोभ का ख़्याल छोड़ कर लड़के ने घड़ी को अपने पढ़ने के कमरे में ही रक्खा। संयोग से घर में चोरी हो गई। कुछ गहना और नगदी चोरी गयी। दादी को अपने पक्ष पुष्ट करने के लिए एक और बात हाथ लग गई। उसने चिल्ला कर कहा "क्या मैंने नहीं कहा था कि यह घड़ी आफ़त बरपा करेगी? चोर हमारा गहना और रुपया चुरा ले गये, किन्तु घड़ी नहीं चुराई गई। वे जानते थे कि घड़ी ले जाने से हमारा सत्यानाश हो जायगा। अरे, इस आफ़त की पुतली (घड़ी) को तुम घर में क्यों रक्खे हुए हो?" लड़का बड़ा हठीला था। दादी की सारी हाय हाय व्यर्थ हुई। लड़के ने अपने पढ़ने के कमरे में घड़ी को रक्खा और कुछ ही दिनों बाद लड़के का बाप मर गया। तब तो दादी बहुत ही विकल हुई। उसने हाहाकार किया, "ऐ हठी लड़के! इस भयानक अशकुन को घर से निकाल बाहर कर। अब एक क्षण भी इसे रखने की हिम्मत तुझे कैसे होती है?" लड़के ने इस पर भी घड़ी रहने दी। फिर थोड़े ही समय के बाद लड़के की माता भी मर गई। तब तो दादी किसी तरह भी घड़ी को घर में न रख सकी। अन्य बहुतेरे लोगों की तरह उसने समझा कि घड़ी में कोई कीड़ा है, क्योंकि कभी किसी वस्तु को यंत्र से चलते उन्होंने नहीं देखा था; इस लिये उसने समझा कि घड़ी में कोई कीड़ा अवश्य है, और वही इसे चलाता है। आप से आप घड़ी के टिक टिक करने और चलने की बात उसके मन में बैठ ही नहीं सकी। कुटुम्ब के सब क्लेशों का कारण उसने घड़ी ही को समझा। इस लिए वह घड़ी अपने निजी कमरे में

उठा ले गयी, और एक पत्थर पर उसे रख कर दूसरे पत्थर से चूर चूर कर दिया। घड़ी से उसने अपना बदला चुका लिया। अब कृपा करके ध्यान दीजिये। आप भारतीय दादियों की दशा पर हँस भले ही लें, परन्तु दूसरी बातों में आप भी उन्हीं दादियों की तरह कर रहे हैं। लोग जिस तिस का सम्बन्ध जोड़ कर किसी नतीजे पर जा धमकते हैं, और कहते हैं कि अमुक वस्तु अमुक बात का कारण है। युरोपवासी विशेषतया पक्षपाती होते हैं, और इस नतीजे पर झट फाँद पड़ते हैं कि "वेदान्त ही भारत के पतन का कारण है"। इसी तरह इस संसार की दूसरी बातों में वे अपने तर्क-वितर्क के परिणामों पर फाँद पड़ते हैं।

अमेरिका और यूरोप के उत्थान का कारण ईसा की व्यक्ति नहीं है। अज्ञात रूप से अमल में लाया हुआ वेदान्त ही यथार्थ कारण है। व्यवहार में वेदान्त का न होना ही भारत के अधः-पतन का कारण है।

सम्पूर्ण जगत् को उठाने में मातायें क्या भाग लेती हैं, इस विषय में राम कुछ इस स्थल पर कहेगा। संसार के सब महान् नायक महान् दादियों के बच्चे थे।

माताएँ ही सब संसार को उठा सकती हैं। माताएँ ही देश को उठा या गिरा सकती हैं। माताएँ ही प्रकृति के प्रवाह में ज्वार-भाटा ला सकती हैं। श्रेष्ठ माताओं के पुत्र सदा ही महा शूरवीर हुआ करते हैं। यदि बाल्य-काल में ही बच्चे में ये सच्चाइयाँ भर दी जांय, यदि बचपन में ही बच्चे को सच्चे स्वरूप की प्राप्ति का पाठ पढ़ा दिया जाय, तो वह बड़ा होने पर कृष्ण या ईसा बन सकता है।

माताएं अपने बच्चों की प्रकृति को बिगाड़ सकती हैं, या उत्तम

चा उच्च कर सकती हैं। यह माताओं का कार्य्य है। तुमने स्पार्टा (Spartan) की उस माता की कथा सुनी होगी जिसने रण-क्षेत्र को जाते हुए अपने पुत्र से कहा था:—"ऐ बेटा! या तो ढाल को लिए हुए आना, या ढाल के ऊपर आना; विना ढाल के न आना। अर्थात् मेरे पास या तो ज़िन्दा आना, या मुर्दा; परन्तु पराजित होकर मत आना"।

भारतवर्ष में एक रानी थी। जब उसका पति हार कर रण से भाग आया, तो उसने नगर के फाटक बन्द करवा लिए, और अपने पति को नगर में न घुसने दिया। उसने पति से कहला भेजा, "ऐ विश्वास घाती! दूर हो, तू मेरा पति नहीं है, तूने रण में पीठ दिखाई है; मैं अब तुझे नहीं ग्रहण करूँगी; दूर हो, तू मेरा पति नहीं है"।

एक भारतीय रानी की कथा है, जिसने अपने सब बच्चों को पूर्ण बनाने की प्रतिज्ञा की थी। उसने अपने सब बच्चों को आवागमन से छुटा देने का संकल्प किया था। अपने बच्चों को आवागमन से मुक्त कर देने का भारतीय माताओं का एक मात्र लक्ष्य और उद्देश्य होता है। आत्मज्ञानी पुरुष मुक्त आत्मा होता है और उसका पुनर्जन्म नहीं होता। उस माता ने अपने समस्त राज्य को आत्मानुभवियों और ईश्वर-भक्तों से परिपूर्ण करा देने की भी शपथ ली थी।

उसने अपने सब प्रजा-जनों को भी नर-नारायण बनाना चाहा। यह संकल्प केवल एक माता का था, और उसे सफलता हुई। उसके पुत्र नर-तन धारी नारायण हुए। वे कृष्ण हुए, बुद्ध हुए, तत्त्वज्ञानी हुए, त्यागी हुए, और सम्पूर्ण समाज के शासक हुए थे। उसकी सारी प्रजा बन्धन-मुक्त हो गयी। यह एक नारी ने कर दिखाया। उसका तरीक़ा क्या था? जब

उसके बच्चे बिलकुल छोटे थे, तब ही से वह उन्हें लोरी गा गा कर सुनाया करती थी। जब वह उन्हें दूध पिलाती थी, तब लोरी गाकर सुनाया करती थी; वह अपने दूध के साथ ब्रह्म-ज्ञान उनमें भरा करती थी। पालने को झुलाते समय जब वह उन्हें सुलाने के गीत गाया करती थी, तब वेदान्त का दूध उनमें पैवस्त किया करती थी।

शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निरञ्जनोऽसि।
संसार-माया परिवर्जितोऽसि॥
संसार-स्वप्नः त्यज मोह मिद्रा।
मंदालसा वाक्युमुवाच पुत्रः॥

(उक्त श्लोक के अभिप्राय की जो कविता अँग्रेज़ी में राम से बही थी, उसे हिन्दी अनुवाद के साथ यहाँ नीचे दिया जाता है)

---

(1)

Sleep, baby, sleep.
No sobs, no cries, ne'er weep.
Rest undisturbed, all fears fling,
To praise Thee all the angels sing,
Arbiter of riches, beauty and gifts,
Thy innocent Atma, governs and lifts.

(2)

Soft roses, silvery dew-drops sweet,
Honey, fragrance, zephyrs, genial heat,
Melodious, warbling, notes, so dear,
And all that pleases eye or ear,
Comes from Thy heavenly, blissful home :
Pure, pure Thou art, untainted Om,
Sleep, baby, sleep etc.

ॐ

(१)

सो जा बच्चे ! सो जा, सो जा मुन्ना ! सो जा।
सो जा लल्ला ! सो जा, सो जा, सो जा, सो जा ॥
सिसक चीख़ मत, रो न कभी तू, कर अविघ्न आराम सदा तू।
दूर फेंक सब भय बाधाएँ, गुण गंधर्व सभी तव गाएँ ॥
सुंदरताई संपतियों का, तथा नियामक ऋद्धि-सिद्धि का।
है निर्दोष आत्मा तेरा, शासक उन्नयाक सु-बड़ेरा ॥
सो जा बच्चे ! सो जा, सो जा मुन्ना ! सो जा।

(२)

मृदु गुलाब, सित मधुर ओस-कण, महक, मधु, सुखद ताप, मृदु पवन
मधुरालाप अति प्रिय तानें, कान नयन अच्छा जो जाने ॥
सो तेरे स्वर्गीय भवन से, आता है कल्याण भवन से।
शुद्ध, शुद्ध तू निर्विकार है, निष्कलंक तू ओंकार है ॥
सो जा बच्चे ! सो जा, सो जा लल्ला ! सो जा।

(3)

No foes, no fear, no danger, none,
Can touch Thee, O Eternal one !
Sweet, lovely, tender, gentle, calm
Of sleep, Thy Atman doth embalm,
Thyself doth raise the spangled dome
Of starry heavens, O, darling Om !
Sleep baby, sleep etc.

(4)

The sun and moon Thy playing balls,
The rainbow arch bedecks Thy halls,
The milky ways for Thee to walk,
The clouds, when meet, of Thee they talk ;
The spheres, Thy dolls, sing, dance and roam,
They praise Thee Om, Om, Tat Sat Om !
Sleep, baby, sleep etc.

(5)

In lilies and violets, lakes and brooks,
How sweet Thy sleeping beauty looks,
Let time and space, the blankets warm,
Roll off Thy face by sleeping arm.
Look half askance as baby lies,
Dear naughty boy with laughing eyes,
Sleep, baby, sleep etc.

(३)

शत्रु, भीति, शंका नहिं कोई, अमर! न छू सकता है कोई।
मीठी, प्रिय, मृदु, शांत, अति कलित, निद्रा से आत्मा परिपूरित॥
तू ही तारामय अम्बर को, जटित तथा कमनीय शिखरको।
उठा रहा शिर पर ऐ प्यारे! ओंकार के रूप दुलारे॥
सो जा बच्चे! सो जा, सो जा लल्ला! सो जा।

(४)

सूर्य चन्द्र गेंदें क्रीड़ा की, घर महरावें इन्द्र धनुष की।
राहें तव पय-सरिस उजेरी, मेघ करें मिल बातें तेरी॥
सकल भवन हैं गुड़ियां तेरी, नाचतीं गातीं, करतीं फेरी॥
वे तेरी स्तुति करती हैं, ओं ओं तत्सत करतो हैं॥
सो जा बच्चे! सो जा, सो जा लल्ला! सो जा।

(५)

कुमुद कमल में भील सरोमधि, दिखे मधुर क्या तव शायित छवि।
देश-काल की गरम कंबलें, सुप्त बाहु से तव मुख खोलें॥
करवट में दिखलाई दे तू, बच्चे जैसा सोता है तू।
हँसते हुए नेत्रों वाले! प्यारे सुत नटखट मतवाले!
सो जा बच्चे! सो जा, सो जा लल्ला! सो जा।

(6)

The shrill, sharp echoes of cuckoos,
Are whistles, rattles, Thou doth choose,
The sparrows, winds, and all the stars,
Are beautiful toys and baby's cars,
The world is but Thy playful dream,
It is Thee, tho' outside seem.
Sleep, baby, sleep etc.

(7)

O wakeful home of rest and sleep !
O active source of wisdom deep !
O peaceful spring of life and action !
O lovely cause of strife and faction !
To limiting darkness bid adieu !
Adieu, adieu, adieu, adieu !
Sleep, baby, sleep etc.

(8)

The beauteous object, charming things,
Are fluttering sound of beating wings,
Of Thee, O Eagle blessed King,
Or fleeting shadows of Thy wing,
Bewitching beauty half reveals,
And as a veil it half conceals,
The wearer of this veil. Sweet Om,
The real Self, Om, Tat Sat Om,
Sleep, baby, sleep etc.

(६)

ऊँची कड़ी कूक कोयल की, तेरी प्रिय गुड गुड गुड सीटी।
तारे पवन विहंग पिढुकियाँ, हैं सुखिलौने बाल-गाड़ियाँ॥
यह अपार संसार-प्रसारा, है कौतुकमय स्वप्न तिहारा।
यह सब तेरे भीतर ही है, यद्यपि दीखत बाहर ही है॥
सो जा बच्चे! सो जा, सो जा लल्ला! सो जा।

(७)

ऐ जाग्रत-घर निद्रा-सुख के, सक्रिय स्रोत गंमीर बुद्धि के!
जीवन और कर्म के कैसे, शाँति-भरे चश्मे के ऐसे!
विषम विरोध और संघर्षण के ऐ प्यारे सुंदर कारण!
सीमाकारी अन्धकार के अंतिम नमस्कार तू कर ले।
सो जा मुन्ना! सो जा, सो जा लल्ला! सो जा।

(८)

सुंदर मनहर चीजें सारी, उड़ते हुए परों की न्यारी।
हैं खुशामदी ध्वनियाँ जारी, हेआनंदस्वरूप सम्राट गरुड़जी
तव पँखों की चलती छाया, मोह-युक्त सुंदरता-माया।
आधी कभी प्रकट करती है, अर्द्ध छिपाती घूँघटइव है॥
इस घूँघट के ओढ़न वाले! मधुर ॐ अति आनन्द वाले।
तू सच्चा-स्वरूप है ॐ, ॐ! ॐ! तत्सत् तू ॐ॥
सो जा भैया! सो जा, सो जा बेबी! सो जा।
सो जा लल्ला! सो जा, सो जा, सो जा, सो जा॥

वह रानी अपने सातों लड़कों को जिस तरह की लोरियाँ सुनाती थी उनका यह एक नमूना है। जब लड़कों ने घर छोड़ा, तब वे ईश्वर-भाव से परिपूर्ण हुए विचरने लगे। उनके द्वारा वेदान्त का प्रसार हुआ। आठवें लड़के की शिक्षा ठीक ऐसी नहीं हुई थी, क्योंकि पिता नहीं चाहता था कि वह राज-पाट छोड़ कर चला जाय। पिता ने उसे पूर्ण स्वतंत्र मनुष्य बनाना नहीं चाहा। इस लिए माता ने इस लड़के को ऊपर की लोरी नहीं गा कर सुनाई; परन्तु किसी न किसी तरह उसे अपने इस प्रतिज्ञा की रक्षा करनी थी, कि "लड़के को इस जीवन में किसी तरह का दुःख पीड़ा भोगनी न पड़े"। चूँकि आठवें लड़के से राज पाट छुटाना मंज़ूर नहीं था, इस लिए इसकी शिक्षा अन्य सातों की सी नहीं हुई थी। आठवां लड़का एक धाय को सौंप दिया गया; किन्तु जब माता मरने लगी, तब यह लड़का उसके पास लाया गया, और माता ने उक्त ज्ञान (गीत वा लोरी) लड़के को दे दिया। गीत काग़ज़ पर लिखा था और किसी ऐसी बहुमूल्य वस्तु में लपेटा हुआ था कि जिस पर रत्न लगे हुए थे। माता ने इसको लड़के की भुजा में बाँध दिया, और इस तावीज़ को बहुत ही पवित्र रखने को कह दिया। माता ने लड़के से कहा, "इसके भीतर के काग़ज़ को पढ़ना, उस पर विचार करना, मनन करना, और वह तुम्हें स्वतंत्र बना देगा, तुम्हारे सब दुख हर लेगा"। उसने लड़के से कहा कि "घोर संकट पड़े बिना इस तावीज़ को न खोलना"। माता और पिता दोनों मर गए। लड़का राजा हुआ, और बहुत दिनों तक राज्य करता रहा।

एक दिन लड़के के बड़े भाई अपने पिता की राजधानी में आये। उन्होंने अपने छोटे भाई से, जिसका नाम अलर्क था,

कहला भेजा कि "सिंहासन खाली कर दो; क्योंकि बड़े भाई होने के कारण सिंहासन के हम न्यायसंगत उत्तराधिकारी हैं, और सब से बड़े भाई के लिये तुम्हें राजगद्दी छोड़ देना चाहिए"। जब अलर्क को बड़े भाई ने यह धमकी दी, जब सब से बड़े भाई के उत्तराधिकारी होने की धमकी उसे मिली, तब वह भय से काँपने लगा। वह डर गया और उसे कोई उपाय न सूझा। अपना सब गौरव और वैभव छिन जाने की आशंका से वह रोने लगा। रात को सोने के समय उसका ध्यान अपनी बाँह के यंत्र (तावीज़) पर गया और माता के अन्तिम शब्द उसके मन में बिजली की तरह कौंध गये। उसने यंत्र को खोला और काग़ज़ को पढ़ा। अश्रुपूर्ण नेत्रों से उसने पढ़ा, "तू शुद्ध स्वरूप है, तू निर्विकार है, तू सम्पूर्ण ज्ञान है, सम्पूर्ण शक्ति है, तू सम्पूर्ण शक्ति का नियामक है, तू संसार में सम्पूर्ण सौन्दर्य्य और आनन्द का दाता और प्रतिपालक है। अपने को शरीर मत समझ, सांसारिक पदार्थों पर भरोसा मत कर, उनसे ऊपर हो। इस पर मनन कर, इस पर विचार कर, शत्रु और मित्र तू ही है।" पुत्र (अलर्क) ने इस उपदेश का पूरा पूरा अनुभव किया; उसकी चिन्ता और भय जाता रहा; हर्ष और आनन्द की उसे प्राप्ति हुई। उसने बार बार इसे गाया। गीत के अर्थ और गुण तथा माता की सदेच्छाओं के कारण से वह पुनः संजीवित हुआ और अपने आप में आया। सब भय और चिन्ता भाग गई, शोक सब जाता रहा; सब सांसारिक आशाओं, लौकिक इच्छाओं और तुच्छ कामनाओं को उसने अन्तिम नमस्कार कर दिया। उसे इसका ऐसा पूर्णानुभव हो गया, पवित्रता और बल से वह इतना परिपूर्ण हो गया कि उससे वे (पवित्रता और बल) उमड़े पड़ते थे। वह सोना

भूल गया, और कपड़े पहन कर जिस स्थान पर उसके भाई थे वहाँ पहुँचा। उनसे उसने कहा, "आइये, आइये, और मेरा यह भार उतार दीजिये; शिर की पीड़ा का कारण यह राज-मुकुट, अर्थात् यह भार, आप ले लीजिये; मुझे इससे मुक्त कर दीजिये। मैं जानता हूं कि जो राज-सिंहासन पर बैठने और राज्य पर शासन करने के अभिलाषी हैं, वे सब शरीर में ही हूं। मैं तुम हूँ, और तुम और हम एक ही हैं, इसमें कोई भेद नहीं है।" भाइयों ने जब उसके मुखमण्डल पर इस पवित्रता को देखा, तो वे प्रसन्नता से खिल उठे। उन्होंने कहा, "हम सिंहासन लेने नहीं आये थे, क्योंकि हम तो सम्पूर्ण संसार के शासक हैं, हम तो केवल तेरा वह सच्चा जन्माधिकार तुझे देने आये थे, जो इस शरीर के भीतर है"। उन्होंने कहा, "भाई! तू इन्द्रियों का दास नहीं है; भाई! तू केवल इस लोक का ही राजा नहीं है, बल्कि तू तो सूर्य, नक्षत्र-मण्डल, अखिल विश्व, और समस्त लोकों का राजा तथा स्वामी है। भैया! आ, अनुभव कर कि तू अनन्त है, निर्विकार स्वरूप है, सूर्यों का सूर्य और प्रकाशों का प्रकाश है।" राजा ने इस सत्य का अनुभव किया और राज्य करता रहा; परन्तु अब राज-काज को वह नाट्यशाला में नाटक का अभिनय मात्र समझता था। वह अपने को अभिनेता मात्र समझता था। अस्तु, राजा स्वस्थ हो गया, और फिर किसी बात से भी उसे शोक नहीं होता था। उसने शक्तिशाली राजा की तरह राज्य किया, और जगत् में अत्यन्त प्रबल राजा हुआ। सफलता उसे ढूँढ़ा करती थी।

नित्यानन्द वा निरन्तर शान्ति तुम्हारी है। नहीं, नहीं, तुम ही वह हो, अपने केन्द्र को प्राप्त करो और सदा सर्वदा वहीं टिके रहो। ॐ! ॐ!! ॐ!!!

हज़रत मूसा का डण्डा

(बृहस्पतिवार ता० ५ मार्च १६०२ को तीसरे पहर दिया हुआ व्याख्यान)

ओल्ड फ़ेलोज़ हाल (old fellows hall) में व्याख्यान देने के बाद राम से एक प्रश्न किया गया था। उसका उत्तर उपनिषदों के पाठ से मिल जायगा।

प्रश्न यह था :—"आप वैराग्य की शिक्षा क्यों देते हैं, और वासनाओं को त्याग देने तथा समस्त सांसारिक रागद्वेषों को हटा देने की चर्चा क्यों करते हैं ?" वेदान्त चाहता है कि सारे संसार से हम अपने सब सम्बन्धों को तोड़ डालें और सम्पूर्ण जगत् के प्रति अपने प्रेम को दबा दें। मानव जाति के लिये हमारे हृदयों में जो प्रेम-सरिता बह रही है, उसे वेदान्त खींच कर सुखा देता है।

* उपनिषद् कहते हैं :—"यदा वै सुखं लभतेऽथ करोति। नासुखं लब्ध्वा करोति। सुखमेव लब्ध्वा करोति। सुखं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति। 'सुखं भगवो विजिज्ञास इति' ॥"

अर्थात् "जब कोई सच्चा आनन्द प्राप्त कर लेता है, अथवा आत्म-साक्षात्कार कर लेता है, तब उसके कर्तव्य पुण्य रूप हो जाते हैं, और पुण्य उससे अनायास बह निकलता है। यही नियम है। जो आनन्द नहीं प्राप्त करता, वह मानव-हित नहीं कर सकता। केवल वही जो निजानन्द को प्राप्त होता है, मानव-

---

*छान्दोग्यपनिषद, प्र० ७ के अन्त में जो खण्ड २२, २३ और २४ में गुरु शिष्य सम्वाद है, उसी का यह उल्लेख है।

हित कर सकता है। जब स्वयं आप बड़े ग़रीब हैं, जब आप के पास ही बिलकुल भोजन नहीं है और भूखों मर रहे हैं, तो दूसरों की भूख आप भला कैसे शान्त कर सकते हैं ?"

शिष्य :—महाराज ! कृपया मुझे बताइये कि यह आनन्द क्या वस्तु है ?

गुरु :—"यो वै भूमा तत्सुखं। नाल्पे सुखमस्ति। भूमैव सुखम्। 'भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य इति'। भूमानं भगवो विजिज्ञास इति ॥"

अर्थात्—"अनन्त वस्तु ही आनन्द है। किसी सांत वा परिच्छिन्न वस्तु में आनन्द नहीं है। जब तक आप सान्त वा परिच्छिन्न हैं ; तब तक आप के लिये कोई आनन्द, अर्थात् कोई सुख नहीं है। अनन्त वस्तु आनन्द है। केवल अनन्त ही आनन्द है।"

यह अनन्त, इसे हम कैसे समझें ? इस पर किसी व्याख्या की ज़रूरत नहीं है। परन्तु राम चाहता है इन शब्दों पर आप ध्यान दें, इन पर विचार करें, और अपने मन में निश्चिन्त हो जायँ। फिर वह समय आ जावेगा जब आप इन शब्दों का कि "अनन्त आनन्द है, सान्त में कोई आनन्द नहीं है" स्वयं प्रयोग करेंगे। और इस अनन्त को तुम्हें अवश्य समझना चाहिये।

अँगरेज़ी भाषा में होल (whole=समग्र) शब्द है। "क्या आप समग्र हैं ?" इसका अर्थ होता है—"क्या आप बलिष्ट हैं ? क्या आप स्वस्थ हैं ?" बड़ा सुन्दर शब्द यह है। जब तक आप अपने को एक अंश मात्र, नन्हा सा, साढ़े तीन हाथ (पौने दो गज़) लम्बी और १५० पौण्ड (लगभग पौने दो मन) भारी कोई परिच्छिन्न वस्तु समझते हैं, जब तक आप अपने को केवल रक्त और मांस का पिण्ड समझते हैं, जब तक आप परि-

च्छिन्न (सीमाबद्ध) हैं; तब तक आप विकल वा क्षीन हैं, अवच्छिन्न हैं, विभक्त हैं, अर्थात् समग्र नहीं हैं; तब तक आप केवल एक अंश मात्र हैं, समग्र नहीं हैं, अथवा बलवान् वा स्वस्थ नहीं हैं; तब तक आप अपने को (गति-हीन बना कर) सड़ा रहे हैं। यदि आप पानी की छोटी सी बूँद को समुद्र से अलग कर लें, तो पानी मैला, कुचैला और दुर्गन्धित हो जायगी। इसी तरह से जो मनुष्य, महात्मा या साधु, या कोई भी व्यक्ति अपने को परिच्छिन्न वस्तु समझता है, जो अपने को काल और देश से परिच्छिन्न मानता हुआ परिमित समझता है, जो अपने को छोटे से क्षेत्र में सीमाबद्ध बोध करता है; वह स्वस्थ नहीं है, सुखी नहीं है, समग्र नहीं है, और सुख पर उसका कोई दावा नहीं हो सकता। ज्यों ही आप की दृष्टि की परिच्छिन्नता जाती रहती है, उसी क्षण आप का परिच्छिन्न ज्ञान छिन्न-भिन्न हो जाता है, और आप फिर समझने लगते हैं, "मैं सर्व हूँ, मैं अखिल विश्व हूँ, मैं अनन्त हूँ।" जब आप ऐसा अनुभव करने लगते हैं, तब आप समग्र हो जाते हैं; और शारीरिक रोग, पीड़ा, व्यथा, चिन्ता तब दूर हो जाती है, उड़ जाती हैं, और छिन्न-भिन्न हो जाती हैं।

समस्त चिकित्सा, समस्त आकर्षण (चुम्बकत्व) और समस्त वशीकरण-शास्त्र (Mesmerism) का रहस्य यही है। तू अपने को समग्र निश्चय कर, फिर वास्तव में समग्र तू है। यही तत्त्व है। इसी तत्त्व में तू वास कर, अनुभव कर कि "समग्र हूँ," "मैं सर्व शक्तिमान हूँ," "मैं परमेश्वर हूं।"

शिष्य—इस अनन्त का क्या स्वरूप है?

गुरु—यत्र नान्यत पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजा-

नाति स भूमा। अथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्च्छृणोत्यन्यद् विजोनाति तदल्पम् यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यम् ॥

अर्थात्—परिच्छिन्नता तीन प्रकार की है—काल की परिच्छिन्नता, देश की परिच्छिन्नता और वस्तु की परिच्छिन्नता। समग्र होने का तात्पर्य है उस आत्मा का अनुभव, जो सम्पूर्ण काल में व्याप्त है और सम्पूर्ण देश काल वस्तु की सीमा से पार टपा हुआ भी है। जहाँ (या जिस अवस्था में) एक अपने से अतिरिक्त न कुछ देखता है, न कुछ सुनता है और न कुछ जानता है, वहाँ (या वह अवस्था) अनन्त है, क्योंकि जब तक अपने सिवाय कोई दूसरी वस्तु भान होती है, तव तक आप सीमावद्ध और सान्त हैं।

जहाँ (या जिस अवस्था में) एक अपने से अतिरिक्त अन्य को देखता, सुनता या समझता है, वहाँ (या वह अवस्था) सान्त वा परिच्छिन्न है। प्रेतात्माओं को देखना व सुनना, या पित्र लोक के घण्टे (अनाहद वाणी) सुनना, या जिसे दिव्य दृष्टि कहते हैं, ये सब सान्त व परिच्छिन्न हैं। तुम आत्मानुभव के पथ पर तो हो, परन्तु अभी तक तुम उस अन्तिम लक्ष्य तक नहीं पहुँचे हो, जहाँ अनन्त के अतिरिक्त कुछ और दिखाई नहीं पड़ता, अनन्त के सिवाय कुछ और सुनाई नहीं पड़ता। अनन्त अमृत है, और सान्त मर्त्य (मरने वाला) है।

शिष्य—"स भगवः कस्मिन प्रतिष्ठित इति।"

अर्थात्—हे भगवन्! अनन्त का वास किस देश व काल में है?

गुरू—"स्वे महिम्नि, यदि वा न महिम्नीति।"

अर्थात्—अपनी ही महिमा (विशालता) में, अथवा महिमा में भी नहीं।

तात्पर्य यह है कि अनन्त देश और काल से परे है। तो फिर आप अनन्त को काल और देश के अन्तर्गत कैसे ला सकते हैं ? अनन्त कहाँ रहता है, ऐसा प्रश्न करना इस कथन के समान है, "मुझे तोला भर समुद्र की लहरें ला दो।" समुद्र की लहरों की नाप तोलों और छटङ्कियों से नहीं हुआ करती। इसी तरह, कैसे, कब और क्यों से अनन्त का अन्दाज़ा नहीं लगाया जा सकता। अगर लगाया जा सके, तो वह अनन्त ही नहीं।

राम से जो पूछा गया था वह यह था कि सब आकांक्षाओं और अनुरागों के त्याग का उपदेश देकर वेदान्त घृणा (द्वेष) की शिक्षा देता है। परन्तु यह बात नहीं है। वेदान्त के शब्दों पर ध्यान दीजिये, "लव (love) और अटैचमेंट (attachment) अर्थात् राग और मोह को छोड़ दो।" किंतु आपका कहना है, "अरे, यदि हम लव (love) को छोड़ देते हैं, तो हमने ईश्वर को छोड़ दिया, क्योंकि लव (love) ईश्वर है।" अरे भाइयो ! इस देश में लव (love) का अर्थ है कामुकता (cupidity) अर्थात् मूर्खता (stupidity), न कि शुद्ध प्रेम।

भारत में स्टुपिडिटी (stupidity) के लिये एक उपयुक्त शब्द है, मूढ़ता। लोग कहते हैं, "वह प्रेम (love) में है।" भाई, यह कदापि प्रेम (love) नहीं है, यह तो एक घोर निन्दनीय चीज़ है। राम के लिए सत्य से अधिक आदरणीय और कुछ नहीं। समस्त व्यक्तिगत अथवा शरीरगत अनुराग आपको सान्त कर देता है, और अनुराग-पात्र को भी सान्त

बना देता है। इस तरह दोनों का पतन होता है, तुम्हारा भी और अनुराग-पात्र का भी। वेदान्त आप से कामुकता, मूर्खता और सब आसक्तियाँ छोड़ देने को कहता है, वह यह नहीं चाहता कि तुम सच्चे प्रेम को छोड़ दो। वह सच्चा प्रेम तुम्हें नहीं छोड़ना होगा।

बच्चे की बात ले लीजिये। क्या बच्चा प्रेमी है? नहीं, नहीं। बच्चा प्रेमी नहीं, किन्तु प्रेम स्वयं है। वेदान्त यही कहता है, "प्रेमी न बनो, परन्तु स्वयं प्रेम बनो।" अच्छा, बच्चे को कौन सी वस्तु आकर्षक बनाती है? उसका प्रेमी होना नहीं बल्कि स्वयं प्रेम होना। लड़के को किसी से प्रीति नहीं होती, कोई आसक्ति नहीं होती, कोई व्यक्तिगत स्वार्थपरता उसमें नहीं होती, परन्तु बच्चा स्वयं प्रेम होता है। और यही वेदान्त सिखाता है, "स्वयं प्रेम रूप हो जाओ, तभी तुम आकर्षक बनोगे, समग्र हो जाओगे।"

लोग अपने को स्वस्थ बनाने और दूसरों को चंगा करने के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा करते हैं। किन्तु कृपा करके उन सब स्वार्थमय उपायों और अभिप्रायों को दूर हटा दीजिये जो आपको परिच्छिन्न रखते हैं। सब वासना राग है, सब वासना व्यक्तिगत या शरीरगत प्रेम है, सब वासना आसक्ति है। इसे फेंक दो और स्वयं पवित्रता रूप हो जाओ। अगर आप इसे (पवित्रता को) प्राप्त कर लें, तो आपका शरीर अवश्य स्वस्थ होगा। आपकी बुद्धि अवश्य पूर्ण स्वरूप होगी, यदि आप उस पवित्रता को प्राप्त कर लें जिसकी शिक्षा वेदान्त देता है। यह पवित्रता ही वास्तविक वैराग्य है, जिसकी शिक्षा बार-बार वेदान्त से मिलती है।

इस पवित्रता को प्राप्त करो। क्या बच्चा पवित्र नहीं

है। वह किसी वस्तु से भी कोई मतलब नहीं रखता ? उस नन्हें से उपद्रवी पर ध्यान दो। वह बलिष्टतम कन्धों पर चढ़ता है और विजय-माल-भूषित शिरों के बाल नोचता है। वह कैसा ज़बरदस्त चुम्बक है। कारण क्या है ? पवित्रता। यही पवित्रता बच्चे को चुम्बक बनाती है और यही उसे (बच्चे को) इतना सुन्दर बनाती है। इसीलिये वेदान्त कहता है, "इस त्याग को प्राप्त करो, और तुम स्वयं प्रेम-रूप हो जाओगे।" और तब आप से आप स्वभावतः तुम से सम्पूर्ण मानव जाति के हित की धारा बहेगी। यदि हम लोक-हित करना चाहें तो हम तभी कर सकते हैं, जब हम स्वयं हित-स्वरूप बन जाते हैं। इसके बिना हम से स्वाभाविक रूप में वैसा अनायास प्रकाश नहीं वह निकलता, जैसा जलते हुए दीपक से प्रकाश निकलता है।

ध्यान दो। साँप के नेत्र मोहन वा आकर्षक (charming) हैं, वे चुम्बक हैं; और छोटी-छोटी चिड़ियाँ आपही उड़कर साँप के मुख में चली जाती हैं। सर्प की आँखों में यह मोहनी शक्ति क्या है ? उन नेत्रों से तो तटस्थता (बेपरवाही) प्रकट होती है। उनमें किसी वस्तु के प्रति आसक्ति नहीं है। और आप कहावत जानते ही हैं कि "साँप के से बुद्धिमान बनो"।

चुम्बकता, शक्ति, स्वस्थता, और हर एक बात की पूरी कुञ्जी यही है। यह सही है कि देखने में सर्प कभी कभी अपने ही बच्चों को उनकी रक्षा के लिये निगल जाता है, या दूसरे शब्दों में साँप अपने बच्चों को उनकी रक्षा के लिये अपने मुख में रख लेता है, किन्तु वह प्रायः अपने बच्चों को खा लेता है। साँप सैकड़ों बच्चे पैदा करता है। यदि वे सब बच्चे जीते रहें, तो संसार रहने के योग्य न रह जाय। किन्तु प्रकृति

ने संसार की रक्षा की व्यवस्था कर रक्खी है, और साँप अपने बच्चों को खा लेता है। साँप एक ऐसा जन्तु है जिस में किसी प्रकार का मोह नहीं है। साँप अपनी केंचुल उतार देता है। उसे अपनी खाल का भी मोह नहीं है। ऐसे ही राम कहता है, यदि तुम मन से वेदान्तिक भावना का अनुभव कर सको और देह भावना को यथार्थ में दूर कर सको, मानो वह कभी थी ही नहीं; यदि तुम उसे दूर फेंक सको और अनुभव कर सको कि "मैं दिव्य हूँ, सर्वरूप हूँ, वा परमात्म-देव हूँ"; यदि तुम अनुभव कर सको कि "मेरा इन्द्रियों से अथवा व्यक्तित्व से कोई भी वास्ता नहीं है; तो तुम अनन्त वस्तु हो जाते हो; तब तुम चुम्बक हो जाते हो। वेदान्त कहता है, यदि तुम यह अनुभव करो, यदि तुम पूर्ण पवित्र हो जाओ, तो तुम चुम्बक हो जाते हो। और यह चुम्बक है क्या? तुम प्रेम का केन्द्र-रूप तत्त्व हो जाते हो, और फिर आपही आप तुम से कल्याण (लोक-हित) वहने लग जाता है।

पुनः क्या तुम अपनी सब आसक्तियों (मोह माया) में यह नहीं देखते कि यह इनकार नहीं किया जा सकता, कि तुम अपने इन अनुरागों और भावों (अभ्यासों) को उलटा पढ़ रहे हो, अर्थात् इनका उलटा अभिप्राय निकाल रहे हो, और जब तुम अपने को रागासक्त बताते हो, तब तुम वास्तव में द्वेषासक्त हुये होते हो। इसलिये वेदान्त जब कहता है, "राग को त्याग दो", तब उससे यह समझना चाहिये कि "द्वेष को त्याग दो"। यह बात ख़ूब समझ लेने की है। जब कभी तुम किसी एक से लगन लगाते हो, तब तुम एक वस्तु से तो संयुक्त हो जाते हो, और सम्पूर्ण विश्व से वियुक्त। ऐसा है या नहीं? जब तक बच्चा प्रेम वा मोह करना नहीं सीखता,

तब तक वह प्रेम स्वरूप बना रहता है, तब तक वह मानो सब से अभेद हुआ होता है। एक मास के बच्चे को चाहे कोई उठा ले, चाहे कोई चूमे चाटे, वह अत्यन्त भला लगता है। बच्चा उस समय साक्षात् प्रेम रूप हुआ होता है, किन्तु कुछ काल के बाद वह समय आता है, जब बच्चे की लगन किसी एक से लग जाती है। फिर इसका क्या परिणाम होता है? माता-पिता भार हो जाते हैं, बहिन और संगी नहीं भाते, पुराने मित्रों से नाता टूट जाता है, सारा संसार छूट जाता है। सयाना बच्चा कार्य के लिये जाता है, परन्तु वह विकल है; समुद्र-तट पर जाता है, पर उसके लिये वह भी दुःखदायी होता है, क्योंकि उसकी प्रिया वहाँ मौजूद नहीं है। उस प्रिया की तुलना में सभी चीज़ें फीकी हो जाती हैं। जब आप कहते हैं कि अमुक मनुष्य राग वा प्रेम कर रहा है, तब यथार्थ में वह सारे संसार से द्वेष कर रहा है। जब आप किसी विशेष वस्तु से स्नेह करते हैं, तब अपने को अखिल विश्व से आप अलग कर लेते हैं। इसी से वेदान्त कहता है कि व्यक्तिगत आसक्ति मात्र का अर्थ है असंसक्ति अर्थात् वियोग; उसका अर्थ है (बन्धन के कारण) निश्चलता। ऐसी आत्म-हत्या न करो।

वेदान्त कहता है, एक ओर तो यह कामुकता (cupidity) है, और दूसरी ओर यह बच्चे की दशा। बच्चा तो साक्षात् प्रेम था और यह पहली दशा तो कामुकता मात्र थी, इससे अधिक कुछ भी नहीं थी। इसलिये जब वेदान्त कहता है, "अपनी वासनाओं से ऊपर उठो", तब वह तुम्हें मानव-जाति के कल्याण की वस्तु बनाना चाहता है। वेदान्त तुम्हारी शक्तियों को ठीक मार्ग पर लगाता है और तुम्हें मानव जाति से संयुक्त कराता है।

क्या यह तथ्य नहीं है कि सभी उपकार करने वालों का जीवन शुद्ध था और व्यक्तिगत आसक्ति से रहित था? ईसा ने क्या गाँठ जोड़ी थी अर्थात् कोई विवाह किया था? नहीं। साधुओं और महात्माओं ने क्या विवाह किया था? नहीं। राम विवाह का विरोध नहीं कर रहा है, किन्तु उसका अभिप्राय इससे यह है कि मन की परमात्मा से एकता बनी रहे, अखिल विश्व से आत्मा जुड़ी रहे। कुछ महात्माओं ने विवाह किया था; किन्तु उनके सम्बन्ध पर ध्यान दीजिये। उनका मन बिलकुल निरासक्त और पूर्ण पवित्र था, यद्यपि वे परिवार में रहे और बाल-बच्चेदार थे। जहाँ हमारे शरीर रहते हैं, वहाँ हम नहीं रहते। हम तो वहाँ रहते हैं जहाँ हमारे मन रहते हैं। यथार्थ में हम वहीं रहते हैं, जहाँ हमारे मन रहते हैं। इसलिये हमारे महात्मा देखने में तो गृहस्थाश्रमी होते हैं, पर वास्तव में एक मात्र सत्य से युक्त हुए होते हैं, और प्रकाश में रहते हैं। "मैं सर्वरूप हूँ," इस तरह सब स्नेहों वा आसक्तियों को धीरे धीरे छोड़ने को कहकर वेदान्त तुम्हें समस्त मानव जाति का हितैषी बनाना चाहता है।

अमेरिका के छापेखानों से प्रकाशित बहुत सा साहित्य अधिकांश चुम्बक शक्ति (Magnetism), मसमर-विद्या वा वशीकरण-शास्त्र (Mesmerism), सम्मोहन-विद्या (Hypnotism), दिव्य-दृष्टि (Clairvoyance) सरीखे अनेक विषयों की लम्बी चौड़ी बातें बघारता है। और इस साहित्य का बहुत बड़ा भाग शरीर को स्वस्थ और बलिष्ट रखने तथा रोग-निवारण के विभिन्न उपाय और ढङ्ग को प्रकाशित करता तथा सिखाता है। यह सब बहुत अच्छा है। आशय प्रशंसनीय है। किन्तु कुछ प्रसिद्ध अपवादों को छोड़ कर इन

विषयों के बहुत से लेखक सत्य से सर्वथा प्रतिकूल सिद्धान्त का स्वाद लेते हैं, ऐसे सिद्धान्त का कि जो स्वार्थता से युक्त और कलङ्कित होता है, और जो (लेख या प्रकाशन के) अधिकार, अनुग्रह वा आदर प्राप्ति की आकांक्षा लिये, और अपने बड़प्पन अर्थात् आत्मश्लाघा वा आत्म-प्रसिद्धि की भावना से एकस्वर होता है। और याद रहे, कि यद्यपि ये लोग यथाशक्ति अपनी ओर से कोई कसर बाक़ी नहीं रखते, और एक महान् तथा श्रेष्ठ कार्य करते होते हैं, तथापि आप यदि उनकी दुर्बलताओं से साफ़ बचना चाहते हैं, यदि आप असली शक्ति का स्वामी अपने को बनाये रखना चाहते हैं, और सफलता के अभिलाषी हैं, तो आपको पता लगा जायगा कि सत्य सर्वथा उनके विरुद्ध है। किसी वस्तु को पाने का रास्ता यही है कि उससे मुँह मोड़ लो। बात यही है, और हम कुछ नहीं कर सकते हैं। राम तुम्हारे सामने यथार्थ तत्त्व रखता है। तुम आप अपने अनुभव से इसे जाँच सकते हो। पहले चाहे आप अन्य सब तरीक़ों को जाँच लें, और बाद को राम की बातों को जाँचिये, और समय पाकर उनका प्रयोग कीजिये।

किसी वस्तु को पाने का उपाय उसे खो देना है। जो अपने जीवन को पाना चाहता है, उसे पहले उससे हाथ धोना पड़ेगा। राम देखता है कि अधिकांश लेखक इस सत्य को असत्य बताते हैं। यदि आप सफलता चाहते हैं तो अपने को चुम्बक बनाइये; क्योंकि लोहे के कण चारों ओर से चुम्बक की तरफ़ खिंच जाते हैं, और अभिलाषा भी चुम्बक के तुल्य है।

कृतकार्य मनुष्य चुम्बक हो जाता है। यदि तुम्हें चुम्बक बनना है, तो तुम्हें अपने को चुम्बक बनाने की क्रिया करनी पड़ेगी। वह क्रिया क्या है?

यह एक वस्तु है। इसमें एक धन (positive) तत्त्व है, और एक ऋण (negative) तत्त्व भी है। दोनों ही एक में जमा हैं। दोनों ही इसमें हैं। परन्तु चुम्बक में इनका क्या हाल है? जहाँ दोनों तत्त्वों का समावेश है, वहाँ आकर्षण-शक्ति नहीं है। ऋण-तत्त्व से रहित धन तत्त्व-चुम्बक में हैं। धन-तत्त्व इस ओर बटोरता है, और ऋण तत्त्व दूसरी ओर। और तब शक्ति, हज़रत मूसा* के डण्डे की तरह, जिससे कि उन्होंने लाल समुद्र (Red Sea) के जल को विभक्त कर दिया था, पूर्ण (बलिष्ठ) हो जाती है। ऐसे ही जहाँ भिन्न भिन्न तत्त्व अर्थात् परस्पर विभक्त तत्त्व हैं, चुम्बक तैयार करने के लिये उन्हें ध्रुवों में स्थित करना होगा। इसी भाँति तुम्हें ध्रुवों में स्थित होना है, और तब तुम चुम्बक हो जाओगे। अब वेदान्त क्या है? त्याग या वैराग्य का उपदेशक वेदान्त केवल मूसा के डण्डे अर्थात् मूसा के सुन्दर डण्डे के समान है। वह अनाज को भूसी से अलग कर देता है। वह नीच प्रकृति को उच्च प्रकृति से पृथक कर देता है। वह (नीर क्षीर का) विवेक करता है। वह आप को इस योग्य बनाता है कि आप अपने ईश्वर को अपनी पशु-प्रकृति से अलग कर सकें। ध्यान दीजिये। सब आसक्ति पूर्ण अनुरागों का कारण आप में परिच्छिन्न प्रकृति

---

* नोट—हज़रत मूसा ईसाईमत में एक पैग़म्बर का नाम है जिसे परमात्मा का अनुभव तूर पर्वत की शिखर पर एक प्रकाश की झलक के रूप में हुआ था, और उसे यह आकाशवाणी हुई थी कि तू इस अनुभव रूपी डण्डे को हाथ में ले। इस डण्डे को यदि तू समुद्र को भी मारेगा तो समुद्र दो टुकड़े होकर तुझे रास्ता दे देगा। जहाँ भी इसका वर्ताव करेगा, वहाँ सफलता प्राप्त होगी।

है। अपरिच्छिन्न को किस वस्तु की कामना हो सकती है? सब अभिलाषाओं में परिच्छिन्नता वा परिमित्तता गर्भित है। अपरिच्छिन्न को आकांक्षा नहीं हो सकती। अपरिच्छिन्न के लिए अपने सिवाय कुछ और है ही नहीं, क्योंकि जो कुछ भी है वह सब वही है। तो अपरिच्छिन्न फिर कामना कैसे कर सकता है? केवल परिच्छिन्न जीव ही कोई अभिलाषा कर सकता है। इस तरह आप समझ सकते हैं कि आपकी सब इच्छाओं और अनुरागों की उत्पत्ति आपकी परिच्छिन्न प्रकृति अर्थात् आपके माया-तत्त्व से होती है। आपका अनंत स्वरूप इच्छाओं से परे है। अब आपको मालूम होगया होगा कि आप में जो यह इच्छा करने वाला तत्व, जो यह क्षुद्र मिथ्या अहङ्कार है, वह आप में पशु-प्रकृति है अर्थात् नीच प्रकृति है। और आप में जो परमात्मदेव या अनन्त है, वह सब कामनाओं से परे है। इस पर अब वेदान्त क्या करता है? वेदान्त चाहता है कि आप इन दोनों को अलग-अलग कर दें। हर एक चीज़ मिली हुई है। और आप अपने को यह क्षुद्र, स्वार्थी और परिच्छिन्न-आत्मा बता रहे हैं। और शुद्ध आत्मा या राम अथवा ईश्वर को आप मिथ्या, देखने मात्र, मायावी और परिच्छिन्न प्रकृति से एक कर रहे हैं।

वेदान्त कहता है:—कि "Render unto Caesar the things which are Caesar's, and so render unto Rama or Divinity the things which belong to Divinity." "जिस पर कैसर की मुहर है, वह कैसर बादशाह को दे दीजिये, और जिस पर भगवान् की मुहर है, वह भगवदर्पण कर दीजिये; अर्थात् मनुष्य का भाग मनुष्य को दे दीजिये, और तद्वत् ईश्वर-भाग को राम या ईश्वर के

अर्पण कर दीजिये। इन इच्छाओं की, वा इस असत्यात्मा की यथोचित क़द्र होनी चाहिए, और समझ लिया जाना चाहिये कि ये कुछ भी नहीं हैं। अपनी ब्रह्म-सत्ता का प्रतिपादन करो। अपने को देवों का देव, प्रभुओं का प्रभु और अनन्त समझो। तब फिर मुझे कौन सी अभिलाषा हो सकती है? मैं तो सब कुछ हूं। वही इच्छा कर सकता है जो सब समयों में नहीं है। मुद्दतों के बाद होने वाली बातों ही की इच्छा हुआ करती है। सच्चे आत्मा के लिए चाहने को कुछ भी नहीं है, क्योंकि वास्तव स्वरूप आप ही प्रत्येक वस्तु हैं। हर एक वस्तु आप के भीतर है, सचमुच सब वस्तुएँ, सब आनन्द, वैभव अर्थात् हर एक चीज़ जो मनुष्य के लिये काम्य हो सकती है, मैं ही हूं। यही निश्चय करो, और ॐ (प्रणव) का उच्चारण करो; अर्थात् प्रणव जाप करो, और फिर उसे अनुभव करने का यत्न करो। तुम्हें अवश्य यह अनुभव करना चाहिए। तुमने आज तक सदा अपने को जड़ देह समझा है, और वैसेही जड़ देह तुम होगये हो। ब्रह्म का विचार करो, ब्रह्म में रमो, और तब कामना के लिए जगह कहाँ? यह वेदान्त तुमको चुम्बक बना देता है; धन और ऋण के ध्रुव पृथक किये जाते हैं और शरीर आकर्षण शक्ति सम्पन्न हो जाता है।

अब कुछ अति महत्त्वपूर्ण विषय है। लोग भूल से कहा करते हैं कि अमुक-अमुक वक्ता में व्यक्तिगत आर्कर्षणशक्ति बहुत अधिक है। केवल उसी आर्कर्षणशक्ति की आपको आवश्यकता नहीं है। एक मनुष्य विचार रूप चुम्बक बनना चाहता है, दूसरा दौलत बटोरने का चुम्बक बनने की इच्छा रखता है, तीसरा सौन्दर्य वा शारीरिक कांति का चुम्बक होने का अभिलाषी है, अन्य पुरुष और प्रकार का चुम्बक होना चाहते हैं;

किन्तु इन सब आकर्षणशक्तियों का रहस्य त्याग है। इन शब्दों पर ध्यान दो। सच्चे त्याग के सिवाय दूसरा कोई रहस्य नहीं है। पूर्ण स्वास्थ्य की शिक्षा देने के लिए तुम्हें पुस्तकें छपाने में अपना समय न गंवाना चाहिए। यदि तुम इन शब्दों को मन में रख सको और इनके अनुसार कार्य कर सको, तो तुम बड़े भारी चुम्बक हो सकते हो। ये बातें राम तुम्हें स्वानुभव से बता रहा है। आप इनकी परीक्षा करें। विचार का चुम्क बनने के लिये, जिस से हम सब विद्यायें अपनी ओर खींच सकें, क्या ईश्वर-प्रार्थना से काम चलेगा? "ऐ सर्वशक्तिमान प्रभु! मुझे प्रकाश दो; हे भगवन्! तू प्रकाश स्वरूप है, मुझे प्रकाश दे"। अरे! क्या यह कहने से तुम प्रकाश स्वरूप बन जाओगे? नहीं, इससे काम नहीं चलेगा। "मुझे प्रकाश चाहिए," यह कहने से काम नहीं चलेगा। याद रक्खो जैसा हम विचारते हैं, वैसे ही हो जाते हैं। यदि आपका विचार इस प्रकार का है, "मुझे प्रकाश पाना है"; तो क्या नतीजा होगा? आप में इस विचार की पूर्णता का फल यह होगा कि आप उस स्थिति में पहुँच जायेंगे जहाँ से प्रकाश सदा दूर रहता है। "मुझे प्रकाश दो", इस प्रकार प्रकाश पाने का विचार प्रकाश माँगने और चाहने में आपको प्रकाश से दूर कर देता है, और नतीजा यह होगा कि प्रकाश आपके पास कभी न आवेगा; वह सदा दूर रहेगा।

राम कहता है, धनी माँ-बाप के लड़के पर ध्यान दीजिये। आप कहते हैं उसका जन्म-अधिकार एक करोड़ है। परन्तु वह अपना पैदायशी हक़ कब पाता है? बहुत दिन उसे ठहरना पड़ेगा। वह हर घड़ी अपनी माता की मृत्यु की कामना किया करता है, ताकि वह अपना जन्मस्वत्त्व पावे। इसी तरह जब

परमेश्वर से प्रार्थना करें और कहें, "ऐ प्रभु! मैं तुम्हारा शिष्य वा सेवक हूं, और सेवक होने के कारण, ऐ भगवन्! मुझे यह दे और वह दे" तो हमें परमेश्वर की मृत्यु तक ठहरना पड़ेगा। परन्तु परमेश्वर कभी मरता नहीं, और तुम (ऐसी दशा में) कभी अपना जन्म-स्वत्व न पाओगे। अपने आस पास से प्रकाश और विज्ञान पाने का यह ढंग नहीं है। प्रार्थना करने, माँगने, चाहने, या ढूँढ़ने से कभी किसी को कुछ नहीं मिला।

यह बड़ा आश्चर्य जनक कथन है। दर्शन-शास्त्र इसे सिद्ध करता है। शक्ति क्या है? प्रकाश पाने की इच्छा को भी त्याग देना ही शक्ति है। जब तक तुम प्रकाश की इच्छा किया करते हो, तब तक वह तुम्हारे चुंगल से चम्पत होता रहता है। क्या मुझे ज्योति या प्रकाश को अपने पास बुलाना चाहिये? माँगने और चाहने से मैं ज्योति को रोक देता हूँ। माँगने और चाहने की क्रिया ही ज्योति मात्र को तुमसे दूर कर देती है।

राम एक बड़ी मनोरञ्जक कहानी कहेगा। भारत में एक मनुष्य अपनी प्रिया को पाने के लिये एक मन्त्र सिद्ध कर रहा था। किन्तु मन्त्र जपने को जिस साधु ने उसे बताया था उसने कह दिया था कि एक बात से सावधान रहना। किस बात से? साधु ने कह दिया था कि मन्त्र जपते समय बन्दर का ध्यान या विचार कभी न मन में लाना। उस मनुष्य ने मन्त्र जपना शुरू किया, और बड़ा यत्न करने लगा कि बन्दर का ध्यान न आवे। परन्तु जब जब वह साधना करता था, तब तब बन्दर का ध्यान उसे आ ही जाता था। बन्दर का ख़याल वह दूर न कर सका। बन्दर हर क्षण उसके सामने ही बना रहा। बन्दर का ख़याल लाये बिना वह एक क्षण भी मन्त्र न जप सका। वह साधु के पास गया और बोला, "महाराज!

महाराज!! आपने मुझें यदि बन्दर का विचार न करने को चिता न दिया होता; तो मैं मन्त्र जप सकता और बन्दर का विचार कभी न करता होता। किन्तु जब आपने रोका कि मुझे बन्दर का ख़याल न आये, तब से वह अब मुझे धर दबाता है, बल्कि घेरे रहता है। इसी तरह अज्ञान को दूर रखने के यत्न से ही अर्थात् मूर्खता और दुर्बलता को पास न फटकने देने की चेष्टा से ही आप दुर्बलता और अज्ञान को ला बैठाते हैं।

प्रकाश उसी तरह आता है जिस तरह सूर्य या नक्षत्रों से प्रकाश आता है। वेदान्त कहता है; प्रकाश (ज्ञान) को माँगना और चाहना छोड़ दो, प्रकाश की यह कामना अपने से निकाल दो, इसे त्याग दो, वा हटा दो, और तब देखो कैसा आनन्द है। तत्त्व का अनुभव करो; प्रकाश चाहे आवे या न आवे, मुझे इस विचार से कोई मतलब नहीं है; "अरे, मैं तो सृष्टि का सूर्य हूँ, मैं तो विश्व का प्रकाश हूँ", ऐसा अनुभव करो। इस विचार में तुम अपने को प्रेमी नहीं किन्तु स्वयं प्रेम-मूर्ति पाते हो। इस विचार में तुम प्रकाश की कामना या भिक्षा नहीं कर रहे हो, क्योंकि तुम स्वयं प्रकाश हुए होते हो। मैं शरीर या मन नहीं हूँ। प्रकाश तो क्षुद्र व्यक्ति अर्थात् केवल तुच्छ अहंकार को चाहिये। तुम अहं-कार नहीं हो, तुम तो यथार्थ में स्वयं प्रकाश हो। ऐसा मनन करो, ऐसा अनुभव करो, और तुम कामनाओं से ऊपर उठ जाओगे।

हिन्दुस्तानी भाषा में एक सुन्दर पद्य है, जिसका अर्थ है, "तुम शहद (मधु) हो, शहद; कोई इच्छायें (तुम में) नहीं हैं, किन्तु सम्पूर्ण इच्छाओं से परे हो"।

यह निजी अनुभव की बात है, कि राम ने जब कभी

किसी भी विषय को विचारने की चेष्टा की, चाहे जितना भी मन लगाया, लाख चेष्टा करने पर भी राम सफल नहीं हुआ। अन्त में जब अनायास मन उपराम हो गया और राम ने कहा, "हटाओ भी झगड़ा, मैं इस लेख (विषय) का नाम भी न लूँगा, मेरी बला से लिखा जाय या न लिखा जाय" तभी यकायक यह विचार आ गया, "अरे क्यों, किस लिये प्रकाश के निमित्त छटपटाता है? इच्छा को छोड़, उसे दूर फेंक, और आकांक्षा न कर"। तब प्रकाश आ गया, अर्थात् ज्ञान प्राप्त हो गया।

विश्व-विद्यालय की उच्च कक्षाओं में पढ़ते समय राम ने सब काम अध्यापकों की सहायता बिना ही करने की शपथ ली थी। यह बड़ी कठिन बात थी, क्योंकि टीकाओं या अध्यापकों की सहायता बिना गणित के कठिन सवाल हल करने का भार स्वयं अपने ऊपर लाद लिया था। कठिन कठिन सवाल हल करने में राम भारी परिश्रम करता था। किसी किसी में वह सफल होता था, परन्तु अधिकांश में असफलता ही हाथ लगती थी। संध्या के पाँच बजे से लेकर सवेरे के पाँच बजे तक राम ने श्रम किया, फिर भी सवाल हल नहीं हुए। उपराम होकर ताज़ी हवा खाने के लिये राम धुरकोठे पर चला गया, और चाकू से आत्म-हत्या कर डालने की बात सोच रहा था, क्योंकि जिन सवालों को उसे हल करना था उनको अभी तक नहीं हल कर सका था। ऐसे समयों पर, ज़ब राम शरीर को भूल जाता था, वे सवाल आप से आप हल हो जाते थे। इस तरह हम देखते हैं कि कठिन मामलों में जब हम विचार से ऊपर उठ जाते हैं, तब हम अपने को विचार का चुम्बक बना लेते हैं। आज कल राम

क्या करता है? पहली बात तो यह कि ऐसा वैसा करने के समग्र विचार को दूर हटाता है। "मैं कुछ नहीं लिखना चाहता ; दुर, दुर, मुझे इससे मतलब ही क्या है ; मैं प्रकाश हूँ और अपनी ही महिमा को भोग रहा हूँ ; मेरी अपनी ही महिमा का भोगना सफलता है, बल्कि असली सफलता है, और अन्य सब बातें धोखे की टट्टी हैं ; यदि सांसारिक सफलता मुझे प्राप्त भी हो, तो मैं उसे कभी न भोगूंगा ; ब्रह्म ही मेरा सब तरह का आनन्द है"। यही मार्ग वा विधि है। ब्रह्म-ज्ञान के अधिकारी बनने की चेष्टा करो, और सब बातें आप ही आ जायँगी। पहले अपने भेद को पहचानो, अन्य सब बातें पीछे पीछे आ जायँगी। विचार ऐसा करो कि "मुझे इससे या उससे कोई प्रयोज़न नहीं है, किसी ज़िम्मेवारी या भय से मेरा कोई सरोकार नहीं है, मैं किसी के प्रति उत्तरदाता नहीं हूँ, मुझे किसी का कुछ देना नहीं है, मैं आप ही स्वयं हूँ, मैं प्रकाश हूँ"।

संसार तुम्हें क्या आनन्द दे सकता है? सम्पूर्ण आनन्द, वा सम्पूर्ण सुख आपके भीतर से आता है। शुद्धात्मा (शुद्ध-स्वरूप) ही सम्पूर्ण आनन्द, सम्पूर्ण महिमा और सम्पूर्ण सुख है। मैं सदा उसका भोग करूँगा। यदि मैं ये (लौकिक) वस्तुयें पाऊँ, और उन्हें न भोगूं, तो क्या होगा? नतीजा यह होगा कि मेरा मन विचारों और भावनाओं से परिपूर्ण हो जायगा। भावनायें तुम्हें तलाश करेंगी। यही नियम है। इस तरह से हम देखते हैं कि विचार का चुम्बक बनने के लिये प्रकाश वा ज्ञान की कामना से ऊपर उठने की ज़रूरत है ; और प्रकाश की आकांक्षा से ऊपर उठना ही इस समस्या का ऋण (negative) पहलू है, और उसका धन (positive)

पहलू है ऐसा ध्यान करना कि "मैं प्रकाश हूँ, मैं अपनी ही महिमा को भोग रहा हूँ"।

अब दूसरा रहस्य सुनिये। अगर आप चाहते हैं कि मित्र या दौलत आपको मिलें, तो आपको क्या करना होगा? इच्छा से अपनी लगन अर्थात् आसक्ति हटा लो। और समस्या के ऋण पक्ष या भाग (negative side) को हल करने के बाद धन पक्ष (positive side) को लो, जो इस प्रकार का कथन और निश्चय है, "मैं ईश्वर हूँ, मैं प्रभुओं का प्रभु हूँ, प्रकाशों का प्रकाश हूँ, पूर्ण सुन्दरता हूँ, पूर्ण आनन्द हूँ, पूर्ण सुख मैं ही हूँ, मैं सब की परम आत्मा हूँ, मैं विश्व का शासक हूँ"। ऐसा निश्चय करो, अपने को ईश्वर समझो, संकल्प को बिलकुल छोड़ दो, और जब चीज़ें आवें तो दूसरी ही दृष्टि से उनको देखो, केवल ईश्वरत्व को भोगो। तब आप दूसरों की दृष्टि में तो कृतकार्य होते हैं, परन्तु अपनी सच्ची दृष्टि में कृतकार्य से भी बढ़कर हैं।

उस दिन आपको बताया गया था कि जब आकाश में वायु की विरलता अथवा सूक्ष्मता के कारण कोई विशेष स्थल वायु से शून्य हो जाता है, अर्थात् विरल वायु सूर्य-ताप से जब ऊपर उठ जाती है, और शून्यता पैदा हो जाती है, तब क्या होता है? शून्य स्थान को भरने के लिए वायु झपटती है। इसी तरह जब अभिलाषा से ऊपर उठकर आप शून्यता उत्पन्न करते हैं, अर्थात् आपका शरीर शून्य हो जाता है, जब आप ईश्वर-भाव में लीन होते हैं, तब शरीर अर्थात् वह आभासमात्र अहंकार मर-मिट जाता है, वह अपना स्थान ख़ाली कर देता है; और तब क्या होता है? आपके आस पास के प्रत्येक पदार्थ आपके पास अवश्य झपट कर आते हैं।

कुछ लोगों के मतानुसार चुम्बक की प्रकृति शून्यता के सिवाय और कुछ भी नहीं है। अच्छा! इच्छाओं को, अर्थात् स्वार्थ-पूर्ण इच्छाओं को, जो तुम्हारा गला घोंट रही थीं, त्याग देने के कारण यहाँ शून्यता उत्पन्न हुई। इन्हें दूर कीजिये, और तब आप चुम्बक हो जाते हैं, अर्थात् शून्य स्थल उत्पन्न हो जाता है।

प्रश्न—क्या रोग को अच्छा करने के लिये यह ज़रूरी है कि पदार्थ से अर्थात् उस रोग से इनकार किया जाय?

उत्तर—रोग को दूर करने के लिए यह ज़रूरी है कि आप अपने को पूर्ण समझें, सब कहीं ईश्वर के सिवाय और कुछ भी आप को दिखाई न पड़े। अपने को ईश्वर समझो वा ईश्वर भान करो, और फिर कोई रोग नहीं है। स्वास्थ्य, शक्ति और सब चीज़ें तुरन्त दौड़ती हुई आपके पास आ जाती हैं, जब आप इनसे ऊपर उठते हैं। ईश्वर को देखने या सुनने की इच्छा न करो, क्योंकि ईश्वर तो तुम अब भी हो। जब आप ईश्वर को देखने की इच्छा करते हैं, तब ईश्वर को आप अपने से बाहर मान लेते हैं अर्थात् तब ईश्वर को दूर कर देते हैं। आप लोक-हित करना चाहते हैं, परन्तु संसार इतना दीन क्यों हो कि उसे आप के ध्यान की आवश्यकता पड़े।

निउटन (Newton) ने अपने को चिंतवन (ध्यान) के अर्पण कर दिया था। चिंतवन करना इच्छा से ऊपर उठने के सिवाय और कुछ भी नहीं है। जो विषय उसके सामने था उसमें उसका तुच्छ अहङ्कार लीन हो गया था, और परिणाम यह हुआ कि वह मानव जाति का उपकारी हुआ। मानव जाति का कल्याण करने या मानव जाति को ऋण से दबाने के विचार से उसने समस्या को हल नहीं किया

था। ऐसी उसकी धारणा नहीं थी, अर्थात् उसने अपना कार्य इस लिए किया था कि उस काम से उसे आनन्द मिलता था। और वह इस प्रकार लोकोपकारी हो गया।

यदि लोग आपकी प्रशंसा नहीं करते, तो कोई परवाह नहीं; यदि आपकी ख्याति नहीं है, तो क्या चिंता। संसार की दृष्टि में जो सफलता है, वह तो केवल इन्द्रियों की धोखे-बाज़ी है। तुम तभी सफलता प्राप्त करते हो, जब तुम निश्चय करते हो कि "मेरी विराट से अर्थात् ईश्वर से एकता है, और सफलता मैं स्वयं हूं।"

क्या पदार्थ की स्थिति से इन्कार करना चाहिये? अवश्य। याद रक्खो कि तुम परमेश्वर हो और जिस क्षण तुमने अपने को परमेश्वर समझा, उसी समय पदार्थ की इति श्री हो गई। पदार्थ को हटाओ, और वहाँ ईश्वर-भाव जमाओ। ये दो भिन्न-भिन्न उपाय नहीं हैं। दोनों ठीक एक ही हैं। इसी तरह आप अपने असली आत्मा को परमात्मा, अर्थात् इन सब शरीरों, सूर्यों, वृक्षों इत्यादि का नियन्ता और शासक पाते हैं। जब आप ऐसा निश्चय करते हैं और इससे भी ऊपर उठते हैं, जब आप और भी बढ़कर निश्चय करते हैं, तो आपको क्या ध्यान होता है? जब राम चलता है, तब वह समझता है कि "वह सूर्य है, और सूर्य इन मेघों और कोहरों को पैदा करता है, इन सब का कारण सूर्य है। कुछ लोग पृथ्वी, जल आदि को इनका कारण बताते हैं। परन्तु यह ठीक नहीं है। जल, मेघ, कोहरा, सब सूर्य से निकलते हैं, सूर्य उनकी उत्पत्ति करता है, और जब उन्हें कड़ी निगाह से वह देखता है, तब वे (मेघ और कोहरे) विलीन हो जाते हैं"। इस तरह आत्म-साक्षात्कार की एक दशा तो यह है कि जब

आप अपने को सूर्य की भाँति परमात्मा समझते हैं, और दूसरी अवस्था यह कि जिस में परिच्छिन्न आत्मा रूपी कोहरों को आप दूर कर देते हैं।

लोग कहते हैं, "I am created in the image of God," "मैं परमेश्वर की प्रतिमा में बनाया गया हूँ"। राम कहता है, "प्रतिमायें बनो, और तुम हमेशा दुःखी रहोगे"। तुम ईश्वर की प्रतिमा या चित्र नहीं हो, तुम स्वयं ईश्वर हो।

जल में प्रतिबिम्बित होने वाली प्रतिमा को ले लीजिये। जल में इस प्रतिबिम्बित-रूप प्रतिमा की अपेक्षा से ही सूर्य सर्वोपरि-आत्मा अर्थात् परमात्मा कहा गया है। ऐसे ही आत्मा-साक्षात्कार की प्रथम अवस्था में मनुष्य अपने परम स्वरूप (परमात्मा) को सूर्य की तरह समझता है।

नेत्र खोलने और बन्द करने से राम को साधारणतया यह भान होता है कि "सूर्य, चन्द्र, तारागण इत्यादि सब पदार्थ मैं घेरे हुए हूं। मैं उनको जीवन, शक्ति, और उद्योग प्रदान करता हूं। मैं उनका आधार और आश्रय हूं। मैं ही परम आत्मा हूं।" एक अवस्था यह है। इस अवस्था को प्राप्त कर लेने पर आप देखेंगे कि सम्पूर्ण घृणा, द्वेष वा भय दूर भाग जाते हैं। फिर आप को यह आशंका नहीं रह जाती, कि आपकी रचनाओं का अधिकार कोई ले लेगा, या उनसे माल मार लेगा।

जब लड़का कोई किताब उठा ले जाता है, तो माता को को क्या क्षोभ होता है ? नहीं। क्योंकि उसी का बच्चा है और उसी की पुस्तक; भला, वह क्षुभित क्यों होगी ? इसी तरह यदि कोई मनुष्य तुम्हारी कोई चीज़ चुरा लेता है, तो

तुम डरते क्यों हो ? वह मनुष्य और तुम एक हो। और जो वस्तु वह चुराता है, वह तुम्हारी और उसकी दोनों की है। माँगने से तुम्हें सफलता या आनन्द न मिलेगा; लोग जिसे सफलता कहते हैं, उसे सफलता न समझो, वह तुम्हें न चाहिये। तुम्हारा लक्ष्य तो स्वयं परम तत्त्व है। और यदि संसार के दूसरे पदार्थ या सुख तुम्हें आ मिलते हैं, तो तुम्हें कहना चाहिए, कि "Get behind me, Satan, I take nothing at thy hands."—"शैतान! हट मेरे सामने से, तेरे हाथों से मुझे कुछ नहीं चाहिये।" तब देखो तुम कितने सुखी होते हो। तब तुम स्वर्ग स्वयं हो जाते हो, और अपने जीवन को सफल बना लेते हो।

स्वास्थ्य पाने वा प्राप्त करने के लिये अथवा रोग को जीतने के लिए क्या पदार्थ की स्थिति से इनकार करने की ज़रूरत है ? राम कहता है, नहीं, केवल अपने शुद्ध स्वरूप का मनन करो, और आत्मानुभव की दूसरी अवस्था में अपने को ले जाओ, जिस अवस्था में सूर्य जब ओस या कोहरे की तरफ़ देखता है तो ग़ायब हो जाते हैं। इसी भाँति जब दूसरी अवस्था में आप अपने को अनुभव करते हो, तब आप उस अवस्था में पहुंच जाते हो, जिसमें स्वभाविक द्वैत नहीं है।

प्राणायाम या श्वास की साधना क्या है ? इस बारे में लोग इस साधना पर ज़ोर देना चाहते हैं, परन्तु राम कहता है कि जब आपका मन सत्यात्मा में लीन या निमग्न होता है, तब श्वास साधना आपही अपनी फ़िक्र कर लेती है। जिस क्षण हम उस भावना में डूब जाते हैं और उस दशा में ॐ की धुन लगाते हैं, उसी क्षण स्वतः अत्यन्त वाञ्छनीय और यथा सम्भव उत्तम रीति पर श्वास क्रिया होने लगती है। फेफड़े

श्वासों से भर जाते हैं, और अंतड़ियों के नीचे से भी चढ़कर श्वास तुम्हें परिपूर्ण कर देते हैं। मुख्य बात है परम तत्त्व का अनुभव करना। यदि वह मौजूद है, तो सब चीज़ें मौजूद हो जाँयगी।

इस देश में ऐसे लोग हैं जो सुन्दर नेत्र और सुन्दर नाक तथा ठोढ़ी पाना चाहते हैं।

राम कहता है कि प्रेत-शक्तियों को प्राप्त कर लेने पर भी तुम परिच्छिन्न और असुखी बने रहते हो। लोग धन पाने में प्रेत-शक्तियों का प्रयोग करना चाहते हैं। तब भी तुम परिच्छिन्न रहते हो, अतएव अभागे और दुःखी रहते हो।

इस पर ध्यान दो। यदि तुम काम्य वस्तुओं को, अथवा सौन्दर्य, वर्ण, दौलत और तन्दुरुस्ती को पाना चाहते हो, तो तुम्हें वेदान्तिक त्याग का अभ्यास करना पड़ेगा, किन्तु पूरा अभ्यास नहीं, केवल आंशिक। इस भाँति जितना आंशिक अभ्यास तुम करोगे, उतना ही आंशिक लाभ उठाओगे। परन्तु आंशिक लाभ से पूरी बात न बनेगी। तो फिर मुख्य मूल-स्रोत को क्यों न प्राप्त करो। और तब जिन विशेष पदार्थों को तुम चाहते हो, वे तुम्हारे पास आ ही जाँयगे। इससे बढ़कर और अन्य सब पदार्थ भी तुम्हें तलाश करेंगे। इस लिये विशेष करके इच्छित वस्तुओं में ही न बँधे रहो; राज-मार्ग पकड़ो। वैकुण्ठ और परमानन्द का सबसे सीधा रास्ता यही अनुभव करना है कि "मैं आज ही स्वयं वैकुण्ठ वा सच्चिदानन्द हूँ"।

आत्मानुभव दो प्रकार से होता है, निश्चय (faith) के द्वारा अथवा ज्ञान (knowledge) के द्वारा। वेदान्त-शास्त्र पढ़कर तुम अपने संशयों को दूर कर सकते हो। और आशा

है कि इस वेदान्त दर्शन की पूर्ण और सरल व्याख्या बहुत ही शीघ्र राम द्वारा प्रस्तुत करदी जायगी* ।

यदि वेदान्त-शास्त्र पढ़कर तुम्हें आत्मानुभव न हो, तो उसमें निश्चय करो ।

जब ईसाइयों को आत्मानुभव की एक झलक दिखाई पड़ जाती है, तब यद्यपि उस झलक को वे उसी तरह नहीं देखते जिस तरह ईसा ने देखा था, तथापि उन्हें निश्चय हो जाता है कि झलक आत्मानुभव की है । इसी तरह यदि आपको अवकाश और यथेष्ट रुचि हो, तो वेदान्त-शास्त्र पढ़ो । अन्यथा राम पर अर्थात् ईश्वर पर या अपने आप पर, विश्वास करो । तुम्हारा उद्धार हो जायगा । अपनी मुक्ति आप ही प्राप्त करो । कोई दूसरा उपाय नहीं है ।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

---

*नोट—अमरीके में राम के व्याख्यान और वचन सबके सब मिलाकर वेदान्त का अपने राम के अनुभवानुसार एक अत्यन्त सुन्दर विवरण है । राम ने इन उपदेशों को अपने अनुभव के धागे में मोतियों की तरह पुरो दिया है, जिसका गौरव पाठक पर प्रभाव डालता है, जब कि वह उन उपदेशों को इकट्ठे पढ़ता है और उनके द्वारा अद्भुत नव जीवन अनुभव करता है ।

भाग दूसरा

उत्तरार्द्ध

स्वामी रामतीर्थ जी

के

हिन्दी-उर्दू के लेख व उपदेश

मृत्युप्रति

श्री स्वामी रामतीर्थ

का

अन्तिम सन्देश

(जो शरीर त्याग से कुछ क्षण पूर्व लिख कर छोड़ गये)

इन्द्र, रुद्र, मरुद्, ब्रह्मा, विष्णु । शिव, गंगा etc. भारत !

ओ मौत ! बेशक उड़ा दे इस एक जिस्म[1] को । मेरे और अजसाम[2] ही मुझे कम नहीं । सिर्फ़ चाँद की किरणें, चाँदी की तारें पहन कर चैन[3] से काट सकता हूं । पहाड़ी नदी नालों के भेस[4] में गीत गाता फिरूँगा । बहरे-मव्वाज[5] के लिबास[6] में लहराता फिरूँगा । मैं ही बादे-ख़ुश[7] ख़राम[8] नसीमे-मस्ताना गाम हूं । मेरी यह सूरते-सैलानी[9] हर वक्त रवानी[10] में रहती है । इस रूप में पहाड़ों से उतरा, मुरझाते पौदों को ताज़ा किया, गुलों[11] को हँसाया, बुलबुल को रुलाया, दरवाज़ों को खड़खड़ाया, सोतों को जगाया, किसी का आँसू पूँछा, किसी का घूंघट उड़ाया । इस को छेड़, उस को छेड़, तुझ को छेड़ । वह गया, वह गया, न कुछ साथ रक्खा, न किसी के हाथ आया ।

---

१ शरीर, तन, २ अनेक शरीर, ३ सुख से, ४ वेष, ५ तरङ्गों भरे समुद्र में, ६ वस्त्र, ७ मन्द स्पन्द पवन, ८ मस्त चाल समीर, ९ घूमने फिरने वाली मूर्ति, १० चलने फिरने में या गमन शील, ११ पुष्पों ।

धर्म-तत्त्व।

(मज़हब की माहियत)

(लाहौर निवासी महाशय मथुरादास पुरी ने सन् १९०६ के प्रारम्भ में निम्नलिखित धर्म-विषयक प्रश्न छपवा कर उत्तर पाने के लिये प्रसिद्ध धर्मानुयायी सज्जनों के पास भेजे थे। उस समय स्वामी राम का गंगातट पर निवास था। स्वामीजी ने उनके उत्तर कानपुर के 'ज़माना' नामक उर्दू मासिक पत्र द्वारा दिये थे, जिसका यह हिन्दी अनुवाद है।)

प्रश्नः—

१—धर्म से क्या तात्पर्य है तथा उससे किस उद्देश्य, आवश्यकता और लाभ की आकाँक्षा है ?

२—धर्म का सर्वोत्तम रूप और उसको आचरण में लाने की सर्वश्रेष्ठ विधि क्या है ?

३—मानुषी अस्तित्व में वह मुख्य अंश क्या है, जिससे धर्माचरण और उसका उद्देश्य विशेष सम्बन्ध रखते हैं, और वह संबंध किस दशा में कैसा है ?

४—धर्म के उद्देश्य को सफलतापूर्वक पूरा करने की विधि में किस किस साधन और सहायता की आवश्यकता है ?

५—(क) क्या जाति, समय, स्थान, आहार और संगति (सहवास) का धर्माचरण पर कोई प्रभाव होता है, यदि होता है तो क्या ?

(ख) क्या केवल अँधाधुन्ध विश्वास (इस जीवन के पश्चात् सफलता प्राप्त होने की काल्पनिक धारणा), केवल पुस्तकीय

ज्ञान, और धर्मग्रन्थों का बार बार अध्ययन तथा श्रवण ही धर्म के उद्देश्य की सिद्धि के लिये काफ़ी होगा, अथवा किसी ऐसे साधन की भी आवश्यकता है जिससे ऐसे संतोषप्रद लक्षण उत्पन्न हों कि उनसे धर्माचरण के परिणाम की धर्म के उद्देश्य के साथ अनुकूलता जीतेजी (इस जीवन में) प्रमाणित हो सके? यदि किसी ऐसे साधन की आवश्यकता है तो वह क्या है और वह क्या संतोषप्रद लक्षण उत्पन्न करता है?

(ग) क्या धर्म के उद्देश्य को पूरा करने का साधन ही, किसी अनुभवी धर्मनिष्ठ की सहायता विना, किसी सामान्य मनुष्य के लिये पूर्णतया लाभदायक हो सकता है?

(घ) क्या मानुषी अस्तित्व के संबंध में कोई प्राकृतिक कारण भी ऐसे हैं जो धार्मिक आचरण (जीवन) के परिणाम की उन्नति पर कोई प्रभाव डालते हों? यदि हैं, तो क्या? और क्या प्रभाव डालते हैं?

६—किसी धर्म का महत्त्व, उसपर विश्वास, उसका अंगीकार करना या त्यागना, किस छानबीन पर निर्भर होना चाहिये, और उसका प्रभाव साधारणतः कब अनुभव में आने लगता है?

७—रचना (सृष्टि) का मूल-कारण और उद्देश्य क्या है?

८—धर्म और विज्ञान, उनके साधनों तथा उद्देश्यों में क्या भेद और समानता है?

—:ॐ:ॐ:—

उत्तरः—

(१)—'धर्म' शब्द से सब लोगों का एक ही तात्पर्य नहीं होता। देश, काल और योग्यता के अनुसार धर्म का अर्थ भी बदलता रहा है। लेखक तो धर्म के तात्पर्य से चित्त की वह

बढ़ी-चढ़ी अवस्था लेता है, जिसकी बदौलत शांति, सतोगुण, उदारता, प्रेम, शक्ति और ज्ञान हमारे लिये स्वाभाविक और निजी हो जांय, अर्थात् हमसे स्वतः प्रकट होने लगें। दूसरे शब्दों में हमारी रहन-सहन (आचार-व्यवहार), वाणी और विचार एक परिच्छिन्न शरीर और उसके दास की दृष्टि (देहाध्यास) से न रहें, वरन् (सर्वव्यापी) विश्वात्मा और जगत्-प्राण की दशा हमारी दशा हो जाय। अथवा बाह्य नामरूप और शरीर का वास्तविक तत्त्व (ईश्वर) ही सीधा सीधा चारों ओर प्रकाशित होने लगे। इन अर्थों में धर्म को लिया जाय तो सारे संसार की उत्पत्ति और स्थिति का फल (परिणाम) धर्म है।

'धर्म' स्वयं ही उद्देश्य है। समस्त सांसारिक उद्देश्यों का उद्देश्य है, और अपना आप उद्देश्य है, सम्पूर्ण विद्याओं का लक्ष्य और अन्तिम परिणाम (निष्कर्ष) है, वेद का अन्त—वेदांत है, इससे कुछ परे या ऊपर नहीं, जो इसका उद्देश्य हो सके।

'आवश्यकता' धर्म की उसी प्रकार की है जैसे नदियों को आवश्यकता है समुद्र की ओर बहते रहने की, अग्नि-ज्वाला को ऊपर की ओर भड़कने की, वृक्षों और पशुओं को आहार की, सजीव प्राणियों को वायु की, आँख को प्रकाश की, रोगी को औषध की।

'लाभः'—जाने अथवा अनजाने धर्म को आचरण में लाये विना किसी प्रकार की सफलता, उन्नति और अभ्युदय, सुख और शान्ति, स्वास्थ्य और शक्ति, विद्या और कला, कुशल और मंगल प्राप्त नहीं हो सकते।

(२)—कोई भी मनुष्य जाने या अनजाने जिस दर्जे तक आचार-विचार से धर्म की एकाग्रता और समाधि में स्थित होता है, उसी दर्जे तक वह ऋद्धि-सिद्धि को पाता है। और

धर्म का सर्वोत्तम रूप यह है कि मनुष्य में कर्म और ज्ञान दोनों द्वारा अहंभाव मिटकर, परमात्मभाव में इस हद (दर्जे) तक समाधि (एकाग्रता व एकता) आ जाय कि व्यक्तिगत कल्याण और कुशलता के स्थान पर देश का देश वरन् देशों के देश उसकी समाधि के प्रभाव से भाग्यवान् होते जायँ ; समस्त संसार में शक्ति और आनन्द के स्रोत बह निकलें ; शान्ति और आनंद की लहरें जारी हो जांय ; और बल तथा प्रसन्नता की ऊषा उदित हो जाय।

धर्माचरण की सर्वोत्तम विधिः—

(क) उपनिषद् और गीता का बार बार विचार और उसका अनुष्ठान।

(ख) जिस ज्ञानी के निकट बैठने से आश्चर्य-दशा छा जाय, उनके दर्शन और सत्संग।

(ग) दिन में कम से कम पाँच बार समय निकाल कर अपने स्वरूप से अज्ञान और पाप को निर्मूल करना, अर्थात् अपने आप को शरीर और शारीरिकता (देहभाव) से पृथक् देखना ; अपना घोंसला, मोह-वासनाओं के उजाड़ से उठा कर सत्य की वाटिका और स्वरूप के नन्दनवन में लगाना और इस प्रकार के महावाक्य में लय हो जानाः—

आफ़्तावम्, आफ़्तावम्, आफ़्ताव,
ज़र्राहा दारंद अज़ मन रश्मोताव।
मख़्ज़-ए-गुफ़्तारे-हक़, गुफ़्तारे-मा,
चश्मः-ए-अनवारे-हक़, दीदारे-मा।

अर्थात् मैं सूर्य हूँ, मैं सूर्य हूँ, मैं सूर्य हूँ। सारे परमाणु मुझ से चमक-दमक पाते हैं। मेरी वाणी ईश्वर की वाणी का भण्डार है और मेरा दर्शन-मात्र ईश्वरीय ज्योति का स्रोत है।

(३)—मानुषी अस्तित्व में वह बात (तत्त्व) अवश्य है "जिससे धर्म का साधन और उसका उद्देश्य मुख्य सम्बन्ध रखते हैं," लेकिन वह मुख्य तत्त्व मानुषी अस्तित्व का कोई अंश नहीं, वरन् मानुषी अस्तित्व उसका अंश कहा जा सकता है, और इतना भी केवल दिखावे का।

यह मुख्य तत्त्व एक अगाध नदी है, जिस में शरीर, मन आदि तरङ्गों की भांति लुढ़क पुढ़क रहे हैं। इस मुख्य तत्त्व को हिन्दूशास्त्र में "आत्मा" नाम दिया है।

सम्बन्ध किस दशा में कैसा—चित्त और मन का अपनी परिच्छिन्नता को छोड़ कर, नामरूप से पार हो, निजस्वरूप (आत्मा) में लीन हो जाना, सत्यस्वरूप और ज्ञानस्वरूप बन जाना है।

"उदाहरण"—जैसे एक लहर या बुलबुला अपने परिच्छिन्न नाम रूप से पृथक् होकर अपनी असलियत अर्थात् जल-रूप से सब लहरों और बुलबुलों में मौजें मारता है, स्वादिष्ट है, स्वच्छ है, इत्यादि इत्यादि; या जैसे खाँड का बना हुआ कुत्ता वा चूहा अपने परिच्छिन्न नाम-रूप से रहित होकर अपना मूल स्वरूप अर्थात् खाँड के रूप से, खांड के सिंह, राजा, देवता में मौजूद होता है और सुस्वादु वा श्वेत वर्ण है, इत्यादि इत्यादि।

"विस्तृत वर्णनः"—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार किसी सूक्ष्म विषय पर विचार करते करते यदि एकाग्रता की उस अवस्था पर पहुँच जायँ कि क्षण भर के लिये इनका निरोध हो जाय, तो विद्या और वैभव का स्वरूप बन निकलते हैं।

यदि रण-क्षेत्र में सब सम्बन्धों को तिलांजलि देकर किसी के मन, बुद्धि, चित्त अपनी परिच्छिन्नता से रहित हो जायँ, तो निर्भयता, वीरता, शौर्य और शक्ति की नदी बह निकलती है।

और मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार जब किसी प्रकार के प्रेम-पात्र और इष्ट (पदार्थ) को पाकर अपरिच्छिन्नता, अभेदता और एक प्रकार से लय को प्राप्त होते हैं (जैसे एक लहर दूसरी लहर से मिल कर मिट सकती है), तो आनंद ही आनंद बन जाते हैं।

अतः मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का आत्मा में लीन होना ही भीतरी कपाट का खुलना है, और मनका आत्माकार होना ही, क्या विद्या, क्या बल, क्या आनंद, इन सब का पुञ्ज प्रकाशवत् बाहर फैलता है।

जब तक मन, बुद्धि आदि आत्माकार नहीं होते, अर्थात् परिच्छिन्नता (नाम-रूप) से संयुक्त हैं, मौज की चादर मानो जल के रूप को छिपा रही है, बुदबुदों के बुरक़े (मुसलमान स्त्रियों के पहरने का एक प्रकार का पर्देदार वस्त्र जो उनको सिर से पैर तक ढाँप लेता है) से नदी ढकी हुई है, भीतरी कपाट बंद है, और मनुष्य अज्ञानान्धकार, भय और दुर्बलता, तथा पाप और दुःख में फँसा हुआ है।

बाह्येन्द्रिय और अन्तःकरण में भी जो शक्ति और बल है, वह सब आत्मा ही का है। इनका आत्मा में मर जाना (लय होना) ही (मनुष्य का) अमर होना है, जैसे तरङ्ग का जल में मिटना नदी होना है। इनका आत्मा से अलग असर होने की इच्छा करना मानो मर जाना (विनाश होना) है। बुदबुदे को पानी से अलग करो, फूट जायगा। प्रत्येक व्यक्ति के लिये सोना इसी कारण से जीवन का हेतु है कि गाढ़ निद्रा में बाह्येन्द्रिय और अन्तःकरण, अपनी अहंता के अभाव के कारण अपने वास्तविक स्वरूप (आत्मा) में लीन और निमग्न हो जाते हैं।

(४)—साधन और सहायताः—

[क] केवल इतना आहार करना और वह आहार जो शीघ्र पच सके और सहज में हज़म हो सके।

[ख] नींद भर सोना।

[ग] प्रातः-सायं नियम पूर्वक व्यायाम करना।

[घ] यथा शक्ति ऐसी संगति से बचना जो हृदय में राग-द्वेष भर दें। यदि ज्ञानियों का सत्संग मिल सके तो वाह वाह, अन्यथा एकान्त-सेवन तो सबसे अच्छा है।

[ङ] सत्यता, सद्वचन, सत्कर्म, उदारता, क्षमा, तथा लोकहित कोई न कोई कार्य आवश्य करते रहना, ये सब बहुत बड़े सहायक हैं।

(५) [क] "जाति, समय, स्थान, आहार, और संगति का प्रभाव" अवश्य होता है। इनके अनुसार मनुष्य के चित्त की अवस्था होती है। इसी लिये समय, स्थान, आहार, और संगति बदलने से चित्त की दशा भी बदल सकती है, इसी लिये शिक्षा का प्रभाव पड़ना भी सम्भव है, और इसी लिये धर्माचरण में प्रत्येक को पूर्ण सफलता प्राप्त होनी संभवित है।

जाति (असलियत वा वस्तविकता) तो प्रत्येक की आत्मा (ईश्वर) है, हां जाति (heredity=कुल, वंश) भिन्न भिन्न है, और जाति (वंश वा कुल) के प्रभाव की शक्ति वृक्षों और सामान्य पशुओंमें, "स्थान, समय, अहार और संगत" की शक्ति पर सदैव प्रभावशाली रहतो है। किन्तु मनुष्यों के लिये संगति, शिक्षा, और आहार की शक्ति प्रत्येक दशा में जाति की शक्ति पर प्रभावशाली हो सकती है।

[ख] ऐसा "सन्तोषप्रद अभ्यास" भी है जो जीतेजी मुक्ति (जीवन मुक्ति) दे सके, अर्थात् शोक, मोह, क्रोध और पाप से

पूर्ण छुटकारा दिला सके, और वह 'अभ्यास' मन-वचन कर्म से देह तथा देहदृष्टि को भूल कर ब्रह्मदृष्टि (सबका अपना आप अर्थात् आत्मा) होकर रहना सहना है। इससे संतोषप्रद लक्षणों की पूछो तो अपने आप।

"दौलत ग़ुलामे-मन शुदो इक़बाल चाकरम्"

अर्थात् लक्ष्मी मेरी दासी होती है और ऐश्वर्य मेरा दास हो जाता है। पाप और सन्ताप का मूलोच्छेद हो जाता है।

[ग] "सामान्य मनुष्य" से अभिप्राय यदि वह व्यक्ति है, कि जिसके भीतर आत्मजिज्ञासा प्रेम की अवस्था तक नहीं भड़की, तो उसको चाहे कैसा ही "पहुँचा हुआ" अनुभवी आत्मनिष्ठ क्यों न मिले, पूर्ण रूप से उद्देश्य कदापि सिद्ध न होगा। हज़ारों राजे महाराजे कृष्ण भगवान् के सहवास में आये, किन्तु गीता तो किसी ने न सुनी। अर्जुन ने सुनी, और वह भी उस समय जब राज-पाट, प्रतिष्ठा, प्राण, शिर, संबंधी, धर्म और लोक परलोक को कृष्ण के चरणों पर निछावर कर वा बिलकुल हार कर वैराग्य स्वरूप हो रहा था।

यदि जिज्ञासा तीव्र है, तो यह नितांत असंभव है कि अनुभवी आत्मनिष्ठ या कोई अन्य आवश्यक सहायता अपने आप खिंचकर न चली आये। कोयला को आग लगी तो प्राणवायु (Oxygen) को अपनी ओर खींच लाती है, तो क्या मनुष्य के हृदय की अग्नि ही इतनी बेबस है कि सद्गुरू के मिलाप से वंचित रहे। अतः यह मानना ही कठिन है, कि सच्चा जिज्ञासु हो और फिर आवश्यक सहायता से वंचित रहे।

[घ] मानुषी जीवन (अस्तित्व) में जितनी ठोकरें लगती हैं और कष्ट आते हैं, देखने में अर्थात् बाह्य दृष्टि से उनके कारण चाहे क्या ही क्यों न हों, यदि विचार-पूर्वक देखा जाय, और

उन विपत्तियों का सामना होने से पहले की अपनी भीतरी अवस्था को पक्षपात और धोखे से रहित होकर सच सच और ठीक ठीक याद किया जाय, तो निरंतर बिना अन्वय-व्यतिरेक (लाव-लगाव) के मालूम होगा कि बाह्य विपत्ति तो पीछे आई, भीतरी अधः पतन पहले हो चुका था, अर्थात् हृदय कहीं सर्वभूतात्म-दृष्टि को छोड़ कर परिच्छिन्न देहात्म-दृष्टि से रागद्वेष आदि में फँस गया था। यदि अन्य दृष्टि से देखें, तो यों कहिये कि हृदय सांसारिक पदार्थों के मूल स्वरूप (सत्य स्वरूप अर्थात् आत्मा वा ब्रह्म) की ओर ध्यान न देते हुए उनके बाह्य नामरूप में बेतरह उलझ गया था, मानों स्त्री के मिथ्या रूप-सौंदर्य की चाह में डूब गया था; अथवा किसी को शत्रु समझ कर उस (नाम रूपात्मक) कल्पित छाया को सच मान कर विष उगल रहा था, जो अपने ही आपको चढ़ा। प्यारे यार (प्रेमी) का पत्र आया, वह पत्र भी प्यारा लगने लगा। किंतु उसमें प्रीति वस्तुतः उस कागज़ के टुकड़े के साथ नहीं थी, यार के साथ थी। इसी प्रकार स्त्री, पुत्र, घर, बार, विद्या और धन आदि को सच्चे यार (आत्मा वा ब्रह्म की ओर) के पत्र जान कर उस अविनाशी प्यारे के कारण यदि हमारी प्रीति उनसे हो तो निभ सकती है; नहीं तो यों ही ये चिट्ठियाँ जब प्यारी लगीं, और चिट्ठीवाले को हमने भुलाया (धर्म के नियम को तोड़ा), तो शामत (विपत्ति) आई।

इस पर वेद की आज्ञा है:—

ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनो ब्रह्म वेद,

क्षत्रं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः क्षत्रं वेद,

लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो लोकान्वेद,

देवास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो देवान्वेद,
वेदास्तं परादुर्वोऽन्यत्रात्मनो वेदान्वेद,
भूतानि तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो भूतानि वेद,
सर्वं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेद ।
इदं ब्रह्म, इदं क्षत्रम्, इमे लोकाः, इमे देवाः, इमे वेदाः,
इमानि सर्वाणि भूतानि, इदं सर्वं यदयमात्मा ।

[बृह० उप० २, ४, ६]

"जो भी कोई ब्राह्मण को ब्राह्मण की दृष्टि से देखेगा और आत्मा की दृष्टि से न देखेगा (अर्थात् ब्राह्मण शरीर के नामरूप संज्ञा को केवल टेलीफ़ोन न जानेगा, जिसके द्वारा आत्मा अर्थात् ईश्वर स्वयं बातें कर रहा है), तो वह मनुष्य ब्राह्मण से धोखा खायगा । जो भी कोई राजा को राजा (नाम रूप) की दृष्टि से देखेगा और आत्मा की दृष्टि से न देखेगा, वह राजा से धोखा खायगा । जो भी कोई धनाढ्य को धनाढ्य की दृष्टि से देखेगा और आत्मा की दृष्टि से न देखेगा, वह धनाढ्य से धोखा खायगा । जो भी कोई देवता को देवता की दृष्टि से देखेगा और आत्मा की दृष्टि से न देखेगा, वह देवता से धोखा खायगा । जो भी कोई भूतों (तत्त्वों) को भौतिक दृष्टि से देखेगा और आत्मा की दृष्टि से न देखेगा, वह भूतों से धोखा खायगा । और जो भी कोई, चाहे किसी ही वस्तु को उसके नाम-रूप की दृष्टि से देखेगा और आत्मा की दृष्टि से न देखेगा, वह उस वस्तु से धोखा खायगा" ।

अनंत जीवन का यही नियम है, जिसकी चोटें खा खा कर प्रत्यक्ष प्रमाण से विरुद्ध होने पर भी हज़रत मोहम्मद आदि को आवश्यकता पड़ी कि ऊँची मीनारों पर से पुकार पुकार कर

दुनिया को बांगें सुनायें:—"ला इलाह इल्लिल्लाह" (और कुछ नहीं है सिवाय ईश्वर के)। ईसाई मत में सूली चढ़ कर फिर जी उठने से भी इसी प्रकार के सत्य में पुनर्जीवित होना अभिप्रेत है। जीवन के कड़े अनुभवों की नींव पर बुद्ध भगवान् इसी अध्यात्म-नियम को मनसा वाचा कर्मणा बनों में सुनाते फिरे कि "जो भी कोई सांसारिक वस्तुओं को सत्य मान कर उन पर भरोसा करेगा, धोखा खायगा।"

अतः यह अध्यात्म-नियम वह "प्राकृतिक नियम" है कि जो धार्मिक आचरण के परिणाम की उन्नति पर आश्चर्यकारक प्रभाव रखता है। यदि कोई व्यक्तिविशेष इस आत्मा के साथ सम्पूर्ण रूप से एकप्राण और एकमत होगा, तो समस्त संसार उसके साथ एक प्राण और एक मत है। यदि कोई जाति दूसरी जातियों के मुक़ाबले में इस मुख्य तत्त्व (सत्यता) और भीतरी एकता को व्यवहार में लावेगी, तो वह जाति उत्कर्ष को प्राप्त होगी। और विरुद्ध इसके जो भी कोई व्यक्ति इस मुख्य तत्त्व (सत्यता) को व्यवहार रूप में लाने से भूलेगा, वह व्यक्ति नष्ट होजायगा और जो भी कोई जाति इस मुख्य तत्त्व को तुच्छ जानेगी, वह जाति तुच्छ हो जायगी। और जो लोग इस धार्मिक नियम को बुद्धि से जानते ही नहीं, या आचरण (व्यवहार) में लाना भूल बैठे हैं, वह अशुद्ध अक्षर की भाँति जीवन की पाटी से मिट जायँगे, या विनाश की रेखा के नीचे आ जायँगे।

(६)—धर्म का प्राण (तत्त्व अर्थात् अभ्यन्तर रूप) तो ऊपर वर्णित हो चुका। वह तो हृदय का पिघलना या घुलना है। ख़ुदी (देहात्मभाव) के स्थान पर ख़ुदाई (ब्रह्मभाव) का आ जाना है। वह एक ही है, और न वह अदल बदल के योग्य ही

है। अब रहे धर्म के शरीर (बाह्यरूप), तो वे कई हैं और देश, काल तथा आवश्यकता के अनुसार भिन्न भिन्न हैं। सर्व साधारण के लिये तो धर्म से धर्म का शरीर (बाह्यरूप) ही अभिप्रेत होता है, और इसमें हृदय के पिघलने की अपेक्षा समाज, रीति-रिवाज, खाना-पीना, धर्माचार्य, धार्मिक ग्रन्थ, एकाग्रता के साधन, परलोक सम्बंधी विचार, मुक्ति के मार्ग, बाद-विवाद और तर्क-वितर्क इत्यादि बहुत भाग लेते हैं।

जो लोग वास्तविक धर्म से बिलकुल अनभिज्ञ हैं, वे बाह्य-धर्म को बदलते फिरते हैं। और "किसी धर्म का महत्त्व, एक का अङ्गीकार करना और दूसरे को छोड़ देना आदि" वे किस विवेचना के फल पर आश्रय रखते हैं, उनकी वे ही जानें, हम इस विषय में कुछ नहीं कह सकते।

(७)—"रचना (सृष्टि, creation) का हेतु और उद्देश्य" यह प्रश्न दूसरे शब्दों में यों वर्णित हो सकता है—"जगत् क्यो बना? जगत् कब बना? जगत् कहां बना? जगत् किस ढंग से बना?" इत्यादि। या अधिक स्पष्ट किया जाय तो प्रश्न का रूप यह होगाः—"जगत् किस कारण से बना? किस काल में बना? किस स्थान पर बना? किसके द्वारा बना? इत्यादि"।

उत्तरः—थोड़ा विचार किया जाय तो जगत् के बड़े बड़े स्तंभ कार्य-कारण की परम्परा रूप से देश, काल और वस्तु इत्यादि ही स्वतः सिद्ध होंगे। इस लिये इस प्रश्न के अंतर्गत कि "जगत किस कारण से बना" यह प्रश्न भी शामिल है कि "कार्य-की परम्परा" किस कारण से आरम्भ हुई। और यह प्रश्न अनुचित है, इसमें चक्र-दोष (reasoning in a circle) है।

और इस प्रश्न के अंतर्गत कि "जगत् किस काल में बना?"

यह प्रश्न शामिल है कि "काल किस काल में उत्पन्न हुआ ?" यह भी अनुचित है। और इस प्रश्न के अंतर्गत कि "जगत् कहां पर बना ?" यह प्रश्न भी शामिल है कि "देश किस देश में प्रकट हुआ ?" यह भी अनुचित है। इसी प्रकार "किसके द्वारा बना ?" यह भी अनुचित है। अतः मनुष्य अपनी अपनी मानुषी दृष्टि से इस विषय पर सिर धुनता हुआ व्यर्थ समय नष्ट करता है।

कि कस नकशूदो-नकशायद ब हिकमत ईं मुइम्माँ रा।

अर्थात् न किसी ने इस गुत्थी को खोला और न कोई बुद्धि से इसे खोल ही सकता है, यही माया है। यही कहते हैं।

(८)—"धर्म और विज्ञान:"—

"साधन:" (क) विज्ञान-शास्त्र की शिक्षा, प्रयोग (Experiments) और निरीक्षण (Observations=प्रत्यक्षीकरण), अनुमान और उपमान पर निर्भर है, और इसमें अन्वय-व्यतिरेक (Method of agreement and difference) से कारण-कार्य का सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। धर्म का तात्त्विक नियम भी जो प्रश्न (५-घ) के उत्तर में लिखा जा चुका है, परीक्षा, निरीक्षण, अनुमान और उपमान से सिद्ध होता है, और अन्वय-व्यतिरेक के न्याय (विधि) पर निर्भर है। कोई भी व्यक्ति यदि अपने चित्त की अवस्था का ठीक ठीक वर्णन बिना घटाये बढ़ाये लिखता जाय, और जो जो घटना, तथा दुःख सामने आते जायें उन्हें भी लेखबद्ध करता जाय, और फिर रसायन-शास्त्र (Chemistry) और शरीर-शास्त्र (Physiology) के साधन को बर्ताव में लावे, तो धर्म के तात्त्विक नियम की सचाई (सत्यता) का उपासक उसे अपने आप होना पड़ेगा।

विज्ञान-शास्त्र और धर्म के वर्ताव में इतना भेद है कि विज्ञान-शास्त्र तो बाह्य पदार्थों पर परीक्षा और निरीक्षण करेगा जो प्रायः सुगम है ; और धर्म आध्यात्मिक तथा आभ्यन्तर अवस्थाओं पर परीक्षा और निरीक्षण करेगा, जो बहुधा कठिन है।

"उद्देश्य"—विज्ञान-शास्त्र का उद्देश्य है अनेकता को एकता में खोजना (to discover unity in variety) और संसार में एकता को प्रकट करना। जैसे वृक्ष से गिरते हुए सेब में और पृथ्वी के चहुँ ओर घूमते हुए चंद्र में एक ही नियम (गुरुत्वाकर्षण) का पता लगाना, और विकासवाद के द्वारा छोटे से छोटे वनस्पति के बीज से लेकर मनुष्य तक की एकता का सम्बन्ध, अन्त और पहुँच दिखलाना। और धर्म का उद्देश्य भी (वरन् स्वयं धर्म) यही है कि बाह्य भेद-विरोध में मेल-मिलाप बल्कि सारे संसार में एकता और अभेदता का देखना और वर्तना।

भेद दोनों में इतना है कि विज्ञान-शास्त्र बुद्धि और विद्या के द्वारा एकता का रङ्ग दिखाता है, और धर्म आचरण [व्यवहार] तथा अनुभव द्वारा एकता वा अभेदता में ग़ोते दिलाता है।

उधर अर्नेस्ट हैकल (Ernest Hackel), पॉल कैरस (Paul Carus), रोमीनीज़ (Romanese) आदि पश्चिम के आधुनिक विज्ञानशास्त्री बाह्य जगत् में एकता ही एकता पुकारते हैं, और इधर उपनिषद, ताउज़िम [Taosim] और तसव्वफ़ [Sufism] आदि प्राचीन धर्म एकता ही एकता हमारे रोम रोम में उतारते हैं।

विज्ञान-शास्त्र अधिकतर प्रत्यक्ष प्रमाण पर चलता है। धर्म भी यदि साक्षात्कार पर निर्भर न हो, तो वह धर्म ही नहीं, वरन् सुनी सुनाई कहानी है, या पक्षपात है।

पर भेद इतना है कि विज्ञानशास्त्र चूँकि नामरूप से अधिक सम्बंध रखता है, अतः बाह्य इन्द्रियों की सहायता की उसे आवश्यकता है, और धर्म चूँकि आत्मसत्ता (substance) को सीधे सीधे अनुभव में लाता है, इस लिये उस अंतर्दृष्टि को वर्तता है जो बाह्य नेत्रों का नेत्र (ज्योति) है। आज कल के मनो-विज्ञान-शास्त्र (Psychology) के शब्दों में धर्म हृदय और अंतःकरण (Ganglionic centres) को प्रकाशित करता है।

ॐ। ॐ।। ॐ।।।

नक़द धर्म।

(अक्तूबर १९०६ में गाज़ीपूर में दिया हुआ व्याख्यान।)

सत्यमेव जयते नानृतम्। (मुण्डकोपनिषद्)

हमारे वेद में लिखा है कि जय सत्य की ही होती है, झूठ की कभी नहीं। साँच को आँच नहीं। दरोग़ को फ़रोग़ नहीं। जहाँ कहीं दुनिया में ऐश्वर्य और सम्पत्ति है, धर्म ही उसका मूल कारण है। हिन्दू कहते हैं कि लक्ष्मी विष्णु की स्त्री है और वह पतिव्रता है। जहाँ विष्णु जी अर्थात् सत्य वा न्याय होगा, वहीं लक्ष्मी होगी। इसको और किसी की परवाह नहीं। ऐश्वर्य किसी भूगोल की सीमा के आश्रित नहीं, अर्थात् किसी स्थान विशेष में बँधा हुआ नहीं। जो लोग युरोप, अमेरिका आदि की उन्नति का कारण वहाँ का शीतल जलवायु बताते हैं, या जो अन्य देशों की अवनति का कारण वहाँ का क्षेत्र विशेष कहते हैं, वे भूल करते हैं। अभी दो हज़ार वर्ष नहीं हुए कि इंग्लैंड के निवासी रोम आदि देशों में क़ैदी और ग़ुलाम बने बिकते थे। आज इंग्लैंड इतने बड़े देशों का राज्य कर रहा है। क्या इंग्लैंड अपनी पुरानी चौहद्दी से भाग कर कहीं आगे निकल गया है? पाँच सौ वर्ष पहले अमेरिका पृथ्वी के उसी भाग पर था जहाँ आज, किन्तु इस समय वहाँ के निवासियों की अवस्था के भेद का अनुमान कीजिये। रोम, यूनान, मिश्र और हमारा भारत वर्ष आज वहीं तो है, जहाँ उन दिनों थे, जब कि समस्त पृथ्वी में इनकी विद्या और वैभव की धाक बँधी थी। वैभव (ऐश्वर्य) देशों और मुल्कों की परवाह नहीं करता। जो लोग सत्य पर चलते हैं, केवल उन्हीं की जय होती है। और

जब तक सत्य धर्म पर चलते रहते हैं, उनको विजय बनी रहती है। प्यारे! क्षमा करना, राम आप का है और आप राम के हैं, तुम हमारे हो, हम तुम्हारे हैं। पूरे प्रेम के साथ सामने आओ। जो कुछ हम कहेंगे, प्रेम से कहेंगे, किन्तु ख़ुशामद नहीं करेंगे। प्रेम यह चाहता है कि मनुष्य ख़ुशामद न करे। राम जापान में रहा, अमेरिका में रहा, युरोप के कई मुल्क भी देखे, पर जहाँ जय देखी, सत्य की देखी। अमेरिका जो उन्नति कर रहा है, धर्म पर चलने से कर रहा है। धर्म पर किसी का ठेका (इजारा) नहीं। प्रत्येक स्थान में यह आचरण में आ सकता है। धर्म दो प्रकार का है, एक नक़द, दूसरा उधार। यह एक दृष्टांत से स्पष्ट होगा। एक मनुष्य ने कुछ धन ज़मीन में गाड़ रक्खा था। उसके लड़के को मालूम होगया। लड़के ने ज़मीन खोद कर धन निकाल लिया, और खर्च कर डाला। किन्तु तौल कर उतने ही वज़न के पत्थर वहाँ रक्ख छोड़े। कुछ दिन के बाद जब बाप ने ज़मीन खोदी और रुपया न पाया, तो रोने लगा, हाय! मेरी दौलत कहाँ गई। लड़के ने कहा "पिताजी, रोते क्यों हो? आपको उसे काम में तो लाना ही न था। और रख छोड़ने के लिये देख लो उतने ही तौल के पत्थर वहाँ मौजूद हैं।

बराय निहादन चे संगो चे ज़र।

अर्थात् रख छोड़ने के लिये जैसे पत्थर वैसे रुपये।

धार्मिक वाद-विवाद और झगड़े जो होते हैं, वह नक़द-धर्म पर नहीं होते, उधार-धर्म पर होते हैं। नक़द-धर्म वह है जो मरने के बाद नहीं किन्तु जीते जी (वर्त्तमान-जीवन) से सम्बन्ध रखता है। उधार-धर्म एतबारी अर्थात् अन्ध-विश्वास पर निर्भर होता है; नक़द-धर्म श्रद्धात्मक, अर्थात् अन्तःकरण के दृढ़ विश्वास का होता है। उधार-धर्म कहने के लिये, नक़द-

धर्म करने के लिये। वह भाग जो धर्म का नक़द है, उस पर सर्व धर्मों की एकवाक्यता है। "सत्य बोलना, ज्ञान सम्पादन करना और उसे आचरण में लाना, स्वार्थ से रहित होना, पर-धन, परस्त्री को देख कर अपना चित्त न बिगाड़ना, संसार के लालच और धमकियों के जादू में आकर वास्तविक स्वरूप (ज़ाते-मुतलक़) को न भूलना, दृढ़चित्त और स्थिरस्वभाव होना, इत्यादि इत्यादि।" इस नक़द-धर्म पर कहीं दो मत नहीं हो सकते। झगड़े उस धर्म पर लोग करते हैं, जो दबा कर रखते हैं। उधार के दावे और वाद-विवाद करने की प्रीति रखने वाले लोगों को छोड़ कर जो स्वयं नक़द-धर्म (फ़र्ज़े-मौजूदः) पर चलते हैं, वे उन्नति और वैभव को पाते हैं। इस बात का अनुभव अन्य देशों में जाने से हुआ। भारतवर्ष और अमेरिका में क्या भेद है? यहाँ दिन है, तो वहाँ रात है। वहाँ दिन है, तो यहाँ रात है। जिन दिनों भारतवर्ष के ग्रह अच्छे थे। हिन्दुस्तान का सितारा ऊँचा था, अमेरिका को कोई जानता भी न था। आज अमेरिका उन्नति पर है, तो भारतवर्ष की कोई पूछ नहीं। हिन्दुस्तान में बाज़ार आदि में रास्ता चलते बाएँ ओर चलते हैं, वहाँ दाएँ ओर। पूजा और सत्कार के समय यहाँ जूता उतारते हैं, वहाँ टोपी। यहाँ घरों में राज्य पुरुषों का है, वहाँ स्त्रियों का। इस देश में यह शिकायत है कि विधवा ही विधवा हैं, उस देश में कुँवारियों (अविवाहिता) की अधिकता है। हम कहते हैं "पुस्तक मेज़ पर है", वे कहते हैं "पुस्तक पर मेज़ है, The book is on the table" हिन्दुस्तान में गधा और उल्लू मूर्खता का चिह्न है, उस देश में गधा और उल्लू भलाई और बुद्धिमता का चिह्न है। इस देश में जो पुस्तक लिखी जाती है, जब तक आधी के लगभग पहले के

विद्वानों के प्रमाणों से न भरी हो, उसका कुछ सन्मान नहीं होता। उस देश में पुस्तक की सारी बातें नवीन न हों, तो उसकी कोई क़दर ही नहीं। यहाँ किसी को कोई विद्या या कला मालूम हो जाय तो उसे छिपा कर रखते हैं, वहाँ उसे छापेखानों से प्रकाशित कर देते हैं। यहाँ अन्ध-विश्वास (उधार-धर्म) अर्थात् गतानुगतिक-अनुकरण अधिक है, वहाँ दृढ़विश्वास (नक़द-धर्म) बहुत है। हमारे यहाँ इस बात में बड़ाई है कि औरों से न मिलें, अपने ही हाथ से पका कर खायें और सब से अलग रहें; वहाँ पर जितना औरों से मिलें उतनी ही बड़ाई है। यहाँ पर अन्य देशों की भाषा पढ़ना दोषयुक्त समझा जाता है—"न पठेत् यावनी भाषाम्" यवन लोगों (म्लेच्छों) की भाषा न पढ़ना चाहिये; वहाँ जितना अन्य देशों की भाषा का ज्ञान प्राप्त किया जाता है, उतना ही अधिक सन्मान होता है। जब राम जापान को जा रहा था, तो जहाज़ पर अमेरिका का एक वयोवृद्ध प्रोफेसर मित्र बन गया। वह रूसी भाषा पढ़ रहा था। पूछने पर मालूम हुआ कि ग्यारह भाषायें वह पहले भी जानता है। उससे पूछा गया "इस आयु में यह नवीन भाषा क्यों सीखते हो?" उसने उत्तर दिया, "मैं भूगर्भशास्त्र (Geology) का प्रोफेसर हूँ। रूसी भाषा में भूगर्भशास्त्र की एक अच्छी पुस्तक लिखी गई है, यदि मैं इसका अनुवाद कर सकूँगा तो मेरे देशबान्धवों को अत्यन्त लाभ पहुँचेगा। इसलिये रूसी भाषा पढ़ता हूँ।" राम ने कहा "अब तुम मौत के निकट हो, अब क्या पढ़ते हो? अब ईश्वर सेवा करो, *डुकृञ्करणे में क्या धरा है? उसने उत्तर दिया लोक-सेवा ही ईश्वर-सेवा है।"

*डुकृञ्करणे व्याकरण का सूत्र है जिसका संकेत श्री शंकराचार्य कृत चर्पटपंजरि के स्तोत्र—"भज गोविंदं" इत्यादि में दिया हुआ है।

इसके साथ यदि इस काम को करते करते मुझे नरक तक में जाना पड़े, तो मैं जाऊँगा, इसकी कुछ परवाह नहीं। अगर मुझे घोर नरक के दुःख मिलते हैं, तो हज़ार जान से भी क़बूल हैं, यदि देश-बान्धवों को सुख, लाभ मिल जाय। इस जीवन में सेवा के आनन्द का अधिकार मैं मौत के उस पार के डर से नहीं छोड़ सकता।

गुज़श्तः ख्वाबो आयन्दा ख़यालस्त,
ग़नीमत दाँ हमीं दम रा किः हालस्त।

भावार्थः—भूतकाल को स्वप्न समान समझ, भविष्य केवल अनुमानमात्र है; और वर्त्तमान काल में जो श्वास अभी चलता है, उसे तू उत्तम समझ।

यही नक़द-धर्म है। भगवद्गीता में बड़ी सुन्दता से आज्ञा दी है किः—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। गीता २। ४७।

अर्थात् कर्म तो करते ही जाओ, परन्तु फल पर दृष्टि मत रक्खो।

लार्ड मेकाले की प्रार्थना थी कि मैं मरूँ तो पुस्तकालय में मरूँ। मैं मरूँ तो प्यारे की गली ही में मरूँ।

दफ़न करना मुझ को कूए-यार में,
क़ब्रे-बुलबुल की बने गुलज़ार में।

भावार्थः—मेरे प्यारे की गली में मुझे गाड़ना, क्योंकि बुलबुल पक्षी की समाधि बाग़ में ही बनती है।

मरें तो कर्त्तव्य-पालन करते करते मरें, शस्त्रों के साथ मरें, युद्धक्षेत्र में मरें। हिम्मत, आनन्द और उत्साह के साथ प्राण त्याग करें।

एक मनुष्य बाग़ लगाता था। किसी ने पूछा "बूढ़े मियाँ, क्या करते हो? तुम क्या इस के फल खाओगे? एक पाँव तो

तुम्हारा मानों पहले ही क़ब्र में है, क्या तुमको वह फ़क़ीर की बात याद नहीं ?

घर बनाऊँ ख़ाक इस वहशत-कदा में नासिहा !
आये जब मज़दूर मुझ को गोर-कन याद आ गया ।

भावार्थ:—ऐ उपदेशक ! इस भयंकर संसार में क्या ख़ाक घर बनाऊं ? जब मज़दूर आये, तो मुझे क़ब्र खोदने वाले याद आ गये.।

माली ने उत्तर दिया, "औरों ने बोया था, हमने खाया; हम बोयेंगे, और खायेंगे"। इसी प्रकार संसार का काम चलता है। जितने महापुरुष हो गये हैं, ईसा, मुहम्मद इत्यादि, क्या इन महा पुरुषों ने उन वृक्षों का फल आप स्वयं खाया था, जो वे बो गये ? कदापि नहीं। इन महापुरुषों ने तो केवल अपने शरीरों को मानों खाद बना दिया, फल कहां खाये ? जिन वृक्षों का फल शताब्दियों के बाद लोग आज खा रहे हैं, वे उन ऋषियों की ख़ाक से उत्पन्न हुए हैं। यह सिद्धान्त ही धर्म का वास्तविक प्राण है। यही नियम उस प्रोफेसर के आचरण में पाया गया, जो रूसी भाषा पढ़ता था।

परिश्रम से संकोच नहीं

जिस समय राम जापान से अमेरिका को जाता था, जहाज़ में कोई डेढ़ सौ जापानी विद्यार्थी थे, जिनमें कुछ अमीरों के घराने के भी थे। पर उनमें शायद ही कोई ऐसा था जो अपने घर से रुपया ले चला हो। बहुधा उनमें ऐसे थे कि जाहज़ का किराया भी उन्होंने घर से नहीं दिया था। कोई उनमें से धनाढ्य यात्रियों के बूट साफ़ करने पर, कोई जहाज़ की छत के तख़्ते धोने पर, कोई ऐसे ही अन्य छोटे कामों पर नौकर हो गये थे, और जहाज़ का ख़र्च इस प्रकार पूरा कर रहे थे। पूछने से उनका यह विचार पाया गया कि अपने देश

का धन अन्य देशों में जाकर क्यों ख़र्च करें ? जहाज़ का किराया भी जहाज़ का काम करके देते हैं। अमेरिका में जाकर इनमें से कुछ विद्यार्थी तो अमीरों के घरों में दिनभर मेहनत मज़दूरी करते थे, और रात को रात्रिशाला (Night School) में पढ़ते थे, और कुछ रेल की सड़क पर या बाज़ारों में रोड़ी कूटने पर या किसी और काम पर लग गये। यह लोग गरमियों में मज़दूरी करते थे और सर्दियों में कालिज की शिक्षा पाते थे।

पये इल्म चूँ शमश्र बायद गुदाख़्त।

अर्थात् विद्या के लिये मोमबत्ती की भाँति पिघलना चाहिये।

इसी प्रकार सात-आठ वर्ष रहकर अपने दिमाग़ को अमेरिका की विद्या तथा कला-कौशल से और अपनी जेबों को अमेरिका के रुपये से भरकर यह जापानी विद्यार्थी अपने देश में वापिस आते हैं। प्रत्येक जहाज़ में बीसियों और कई बार सैकड़ों जापानी प्रतिवर्ष जहाज़ों में जर्मनी व अमेरिका को जाकर वहाँ से विद्या प्राप्त कर के वापिस आते हैं। इसका परिणाम आप देख ही रहे हैं। पचास वर्ष हुए जापान भारतवर्ष से भी नीचा (गिरा हुआ) था। आज युरोप से बढ़ गया। तुम्हारा हाथ ख़ूब गोरा चिट्टा है, और उसका रुधिर बिलकुल साफ़ है, अगर कलाई पर पट्टी बाँध दोगे तो हाथ का रुधिर हाथ ही में रहेगा, शरीर के और भागों में नहीं जायगा, किन्तु गन्दा हो जायगा, और हाथ सूख जायगा। इसी प्रकार जिन देशों ने यह कहा कि हम ही उत्तम हैं, हम ही अच्छे हैं, हम ही बड़े हैं, हम म्लेच्छों या काफ़िरों से क्या सम्बन्ध रक्खें ? और अपने आप को अलग थलग कर लिया; उन्होंने अपनेआप पर मानों पट्टी बाँध कर अपने तईं सुखा लिया। प्रसिद्ध कहावत है कि—

"बहता पानी निरमला, खड़ा सो गन्दा होय।"
आबे-दर्या बहे तो बिहतर,
इन्सान रवां रहे तो बिहतर।

अर्थात् नदी का जल बहता रहे तो अच्छा, और मनुष्य चलता रहे तो उत्तम है।

यदि विचार से देखा जाय तो मालूम होगा कि जिन देशों ने उन्नति की है, चलते ही रहने से की है। अमेरिका के लोगों की स्थिति इस विषय में देखिये। औसतन् ४५००० अमेरिकन प्रतिदिन पैरिस में रहते हैं, झुण्डों के झुण्ड आते हैं और जाते हैं। कोई ज़रा सी नवीन रचना व आविष्कार फ्रान्स में देखी, तो झट अपने देश में पहुँचा दी। प्राचीन विद्याओं और कला-कौशलों के सीखने में कोई कम नहीं। इस मौसम अर्थात् शरद ऋतु में कोई ८०००० अमेरिकन मिश्र में आते-जाते हैं। मीनारों को देखते हैं। ४० फ़ी सदी अमेरिकन सारी दुनिया घूम चुके हैं। इस तरह से ये लोग जहाँ किसी विद्या का ज्ञान होता है वहाँ से लाकर अपने देश में पहुँचा देते हैं। जरमनी वालों की भी यही दशा है। अमेरिका से आते समय राम जरमन जहाज़ पर सवार था। उसमें लगभग तीन सौ मनुष्य फ़र्स्ट क्लास के यात्री होंगे। उनमें प्रोफ़ेसर, ड्यूक, बैरन, सौदागर लोग शामिल थे। दिन के समय साधारणतः राम जहाज़ की सब से ऊँची छत पर जाकर बैठता था, एकान्त में पढ़ता लिखता था, या ध्यान विचार में लग जाता था, किन्तु जरमन लोग जहाज़ के ऊपर छत पर चढ़ कर राम को नीचे लाते थे और राम के व्याख्यान कराते थे। राम को विदेशी समझ कर उसके साथ काफ़िर या म्लेच्छ का बर्ताव तो न था, किन्तु यह ख़याल था कि जितना भी ज्ञान इस विदेशी से मिल सकता है, ले लें। संयुक्त-प्रदेश अमेरिका में सब से पहला नगर जो राम ने देखा

यह वाशिंग्टन है। वहाँ वाशिंग्टन यूनिवर्सिटि ने राम को हिन्दू-दर्शन-शास्त्र पर व्याख्यान देने को निमन्त्रण दिया। व्याख्यान के बाद एक युवक प्रोफ़ेसर से मिलना हुआ जो अभी अभी जर्मनी से वापिस आया था। राम ने पूछा "जरमनी क्यों गये थे?" उसने जवाब दिया, "वनस्पति-शास्त्र और रसायन-शास्त्र में अपनी यूनिवर्सिटि की जर्मन-यूनिवर्सिटियों से तुलना करने गया था।" और साधारण रीति से इसका परिणाम यह सुनाया कि दस वर्ष का समय हुआ, जरमन लोग हम से बढ़ कर थे, किन्तु आज हम उन से कम नहीं हैं।

"पीर शो वियामोज़" अर्थात् वृद्धावस्था पर्यन्त पढ़ते ही जाओ। जान-तोड़ परिश्रम के साथ विदेशियों से सीख-सीख कर उन लोगों ने विद्या को पाया और बढ़ाया है।

यह विचार ठीक नहीं कि अमेरिका के लोग डालर (रुपया) के दास हैं, बल्कि विद्या के पीछे डालर तो स्वयं आता है। जो लोग अमेरिका वालों पर यह कलंक लगाते हैं कि उनका धर्म नक़द-धर्म नहीं बल्कि 'नक़दी' धर्म है, वे या तो अमेरिका की वास्तविक स्थिति से अनभिज्ञ हैं, या नितान्त अन्यायी हैं, और उन पर यह कहावत ठीक बैठती है कि "अंगूर अभी कच्चे हैं, कौन दांत खट्टे करे।"

केलीफोर्निया (Californi a) में एक स्त्री ने अठारह करोड़ रुपया देकर एक विश्वविद्यालय स्थापित किया। इसी प्रकार विद्या के बढ़ाने फैलाने के लिये प्रति वर्ष करोड़ों का दान दिया जाता है। भारत वर्ष की ब्रह्मविद्या का वहां इतना सन्मान है कि जैसा वेदान्त अमेरिका में है, वैसा व्यावहारिक वेदान्त भारतवर्ष में आज कल नहीं है। उन लोगों ने यद्यपि हमारे वेदान्त को पचा लिया है और अपने शरीर और अन्तःकरण में खपा लिया

है, किन्तु वे हिन्दू नहीं बन गये। वैसे ही हम उनकी विद्या और कला-कौशल को पचा कर भी अपना राष्ट्रीयत्व, हिन्दूत्व स्थिर रख सकते हैं। वृक्ष बाहर से खाद लेता है किन्तु ख़ुद खाद नहीं हो जाता। बाहर की मिट्टी, जल, वायु, तेज को खाता है, और पचाता है, किन्तु मिट्टी, जल, वायु आदि नहीं हो जाता। जापानियों ने अमेरिका और युरोप के विज्ञान-शास्त्र और कला-कौशल पचा लिये, किन्तु जापानी ही बने रहे। देवताओं ने अपने कच (बृहस्पति के पुत्र) को राक्षसों के पास भेज कर उनकी संजीवनी विद्या सीख ली, किन्तु इससे वे राक्षस नहीं हो गये। इसी तरह तुम युरोप और अमेरिका जा कर ज्ञान (विद्या तथा कला-कौशल) सीखने से ग़ैर हिन्दू (अनार्य) और ग़ैर हिन्दुस्तानी (विदेशी) नहीं हो सकते। जो लोग विद्या को भूगोल की तटबन्धी में डालते हैं कि "यह हमारा ज्ञान है, वह विदेशियों का ज्ञान है। विदेशियों का ज्ञान हमारे यहां आने से पाप होगा, और हाय! हमारा ज्ञान और लोग क्यों ले जायँ" ऐसे विचार वाले लोग अपने ज्ञान को घोर अज्ञान में बदलते हैं। इस कमरे में प्रकाश है, यह प्रकाश अत्यंत आह्लादकारक और प्रसन्नकारी है, अगर हम कहें यह प्रकाश हमारा है, हमारा है, हमारा, हाय! यह कहीं बाहर के प्रकाश से मिल कर अपवित्र न हो जाय। और इस विचार से अपने प्रकाश की रक्षा करते हुए हम चिकें गिरा दें, परदे डाल दें, द्वार भेड़ दें, खिड़कियां लगा दें, रोशनदान बन्द कर दें, तो हमारा प्रकाश एकदम काफ़ूर हो जायगा, नहीं नहीं मुश्केस्याह (कस्तूरी समान काला) हो जायगा, अर्थात् अँधेरा ही अँधेरा फैल जायगा। हाय! हम लोगों ने भारतवर्ष में यह अन्ध-पद्धति क्यों स्वीकार करली।

हुब्बुल्वतन अज़ मुल्के-सुलेमां ,खुश्तर,
ख़ारे-वतन अज़ संबुले-रेहां ,खुश्तर।

अर्थात् स्वदेश तो सुलेमान के देश से भी प्यारा होता है। स्वदेश का काँटा तो सुँबल और रेहां से भी उत्तम होता है।

ऐसा कहकर स्वयं तो काँटा हो जाना और देश को काँटों का वन बना देना स्वदेशभक्ति नहीं है। साधारणतया एक ही प्रकार के वृक्ष जब इकट्ठे गुञ्जान झुंडों में उगते हैं, तो सब कमज़ोर रहते हैं। इनमें से किसी को ज़रा अलग बो दो, तो बहुत मज़बूत और मोटा हो जाता है। यही दशा जातियों की है। कश्मीर के विषय में कहते हैं:—

अगर फ़िरदोस बर रूए-ज़मीनस्त,
हमीनस्तो-हमीनस्तो-हमीनस्त।

अर्थात् यदि पृथ्वी (भूलोक) पर स्वर्ग है, तो यही है, यही है, यही है।

किन्तु वह कश्मीरी लोग जो अपने फ़िरदोस (happy valley) अर्थात् स्वर्ग को छोड़ना पाप समझते हैं, निर्बलता, निर्धनता और अज्ञानता में प्रसिद्ध हो रहे हैं। और वह बहादुर कश्मीरी पंडित जो इस पहाड़ी (फ़िरदोस) से बाहर निकले, मानों सचमुच स्वर्ग (फ़िरदोस) में आगये। उन्होंने, जहाँ गये, अन्य भारतवासियों को हर बात में मात कर दिया। उनमें से सब ऊँचे ऊँचे पदाधिकार पर बिराजित हैं। जब तक जापानी जापान में बन्द रहे निर्बल थे, और अशक्त थे, किन्तु जब वे अन्य देशों में जाने लगे, वहाँ की वायु लगी, बलवान् हो गये। युरोप के निर्धन गरीब और प्रायः अधम-स्थिति के लोग जहाज़ों पर सवार होकर अमेरिका जा बसे। अब वे लोग दुनिया की सब से बलिष्ठ शक्ति हैं। कुछ भारतवासी भी

बाहर गये। जब तक अपने देश में थे, कुछ पूछ न थी, अन्य देशों में गये, तो उन बढ़ी चढ़ी जातियों में भी प्रथम वर्ग में गिने गये और बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की।

पानी न बहे तो उसमें बू[1] आये,
खञ्जर न चले तो मोरचा[2] खाये।
गर्दिश से बढ़ा मिहरो-मह[3][4][5] का पाया[6],
गर्दिश से फ़लक[7] ने औज[8] पाया।

जैसे वृक्ष सब रुकावटों (बाधाओं) को काट कर अपनी जड़ें उधर भेज देता है जिधर जल हो, इसी तरह अमेरिका, जरमनी, जापान, इंग्लैंड के लोग समुद्रों को चीर कर, पहाड़ों को काट कर, रुपया खर्च करके, सर्व प्रकार के कष्ट झेल कर वहाँ वहाँ पहुँचे, जहाँ से थोड़ा बहुत, चाहे किसी भी प्रकार का ज्ञान प्राप्त हो सका। यह एक कारण है उन देशों की उन्नति का। अब और सुनिये।

जाँनिसारी—प्राणसमर्पण।

एक जापानी जहाज़ में कुछ भारतवासी विद्यार्थी सवार थे। जहाज़ में जो इस दर्जे के यात्रियों को खाने को मिला वह किसी कारण विशेष से उन्होंने नहीं लिया। एक निर्धन जापानी विद्यार्थी ने देखा कि भारतवासी भूखे हैं। सबके लिये दूध और फल आदि ख़रीद कर लाया और उनके सामने रख दिया। भारतवासियों ने पहले तो अपने देश की रीति के अनुसार उसे अस्वीकार किया और पश्चात् खा लिया। जब जहाज़ से उतरने लगे तो धन्यवाद के साथ वे उन वस्तुओं का मूल्य देने लगे।

---

१ दुर्गन्ध। २ ज़ङ्ग। ३ भ्रमण। ४ सूर्य। ५ चन्द्र। ६ पदवी। ७ आकाश, द्योलोक। ८ ऊँचा पद।

जापानी ने न लिया। किन्तु रो कर यूँ प्रार्थना करने लगा "जब भारतवर्ष में जाओ तो कहीं यह ख़याल न फैला देना कि जापानी लोग ऐसे नालायक़ हैं कि उनके जहाज़ों पर छोटे दर्जे के यात्रियों के लिये खाने पीने का यथोचित प्रबन्ध नहीं है।" ज़रा ख़याल कीजियेगा, एक निर्धन यात्री विद्यार्थी, जिसका जहाज़ के साथ कोई सम्बन्ध नहीं, वह अपना निज का द्रव्य इस लिये अर्पण कर रहा है कि कहीं कोई उसके देश के जहाज़ों को भी बुरा न कहे। यह विद्यार्थी अपने जीवन को देश से पृथक नहीं मानता। सारे देश के जीवन को अपना जीवन वर्त्ताव में अनुभव कर रहा है। क्या स्वदेश-भक्ति है! क्या प्राण-समर्पण है! यह है व्यावहारिक अभेदता वा एकता! यह है नक़द-धर्म! इस क्रियात्मक वेदान्त के बिना उन्नति और कल्याण का कोई उपाय नहीं है।

मरना भला है उसका जो अपने लिये जिये,
जीता है वह जो मर चुका निज देश के लिये।

आपको याद होगा कि जापान में जब ज़रूरत पड़ी, कि रुसियों के बल को रोकने के लिये कुछ जहाज़ समुद्र में डुबो दिये जाँय, तो राजा मिकाडो (Mikado) ने कहा कि, "मैं प्रजा में किसी को विवश नहीं करता, किन्तु जिनको ऐसे जहाज़ों के साथ डूबना स्वीकार है, वे ख़ुद अपनी इच्छा प्रकट करें और इस निमित्त अपनी अर्ज़ियाँ पेश करें। हज़ारों अर्ज़ियां आवश्यकता से भी अधिक एक दम आगईं। अब इनमें चुनाव की ज़रा दिक़्क़त थी। तिस पर जापानी युवकों ने अपने शरीर से रुधिर निकाल कर उससे प्रार्थना-पत्र लिख कर पेश किये, कि वे शीघ्र स्वीकार हो जाँय। अन्त में रुधिर से लिखी हुई अर्ज़ियों को अधिक मान दिया गया। जब जहाज़ों के साथ वे लोग

डूब रहे थे, तो इनमें दो एक कप्तान यदि चाहते तो अपनी जान बचा भी सकते थे। किसी ने कहा "कप्तान साहब! आप काम तो कर चुके अब जान बचाकर जापान चले जाओ"। तो मौत की हँसी उड़ाते हुए कप्तान साहब ने तिरस्कार से उत्तर दिया "क्या मैंने वापिस जाने के लिये यहां आने की अर्ज़ी दी थी?"

यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम। गीता १५। ६

अर्थात् जहां जाकर फिर कोई नहीं लौटता है, वह मेरा परम धाम है।

शूर वीरता का अर्थ यह नहीं कि वापिस लौटा जाय।

ईंजा जुज़ ईं कि जाँ बस्पारंद चारा नेस्त।

अर्थात् यहां सिवाय जान देने के कोई उपाय नहीं।

शेर सीधा तैरता है, वक़्ते-रफ़्तन् आब में।

अर्थात् पानी में धारा के अन्दर शेर सीधा तैरता है।

यह है नक़द-धर्म, यह है क्रियात्मक अर्थात् आचरण में लाया हुआ वेदान्त।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। गीता २।२३

मुझको काटे कहां है वह तलवार?
दाग़ दे मुझ को है कहां वह नार?
ग़र्क़ मुझ को करे कहां वह पानी!
बाद में ताब कब सुखाने की?
मौत को मौत आ न जायगी,
क़स्द मेरा जो करके आयगी।

अर्थात् कहां है वह तलवार जो मुझे मारे? कहां है वह अग्नि जो मुझे जलादे? कहां है वह जल जो मुझे डुबो दे? कहाँ है वायु में शक्ति जो मुझे सुखा दे? मृत्यु जब मेरी अभिलाषा करके आवेगी, तो उसकी ही मृत्यु हो जावेगी।

शास्त्रीय अन्वेषणा के लिये अमेरिका में जीवित मनुष्य के शरीर पर घाव लगाने का प्रयोग करने की आवश्यकता पड़ी। अनेक नवयुवक अपनी छातियां खोल कर खड़े हो गये कि लो चीरो, हमें काटो, इञ्च-इञ्च कर के हमारे प्राण जायँ ; हमारे जीवित शरीर पर घाव लगाना [Vivesection] हज़ार वार मुवारक है, यदि इससे शास्त्र की उन्नति हो और दूसरों का कल्याण हो। अब इसे हम प्रेम कहें कि वीरता? यह है नक़द-धर्म, अर्थात् व्यावहारिक या क्रियात्मक-वेदान्त। यही है सर्वात्मभाव।

संयुक्त प्रदेश अमेरिका के प्रेसिडेंट एब्राहमलिंकन(Abraham Lincon) के सम्बन्ध में कहा जाता है कि एकवार जब अपने मकान से दरवार को आ रहा था, मार्ग में क्या देखता है कि एक सूअर कीचड़ में फँसा हुआ अधमरा होरहा है। बहुत ही प्रयत्न कर रहा है किन्तु किसी तरह निकल नहीं सकता, और दुःख से चिल्ला रहा है। प्रेसिडेन्ट से देखा न गया। सवारी से उतर कर सूअर को बाहर निकाला और उसका प्राण बचाया। सब वस्त्रों पर कीचड़ के छीटें पड़ गये, किन्तु परवाह न की, और उसी स्थिति में दरवार में आया। लोगों ने पूछा, और जब उपरोक्त घटना का पता लगा, तो सबने बड़ी प्रशंसा करते हुए कहा कि आप बड़े दयालु और ईश्वर-भक्त हैं। प्रेसिडेंट ने कहा कि बस, अधिक मत बोलो, मैंने दया का कोई कार्य नहीं किया। उस सुअर के दुःख ने मुझे दुःखित कर दिया था, इस लिये मैं तो केवल अपना ही दुःख दूर करने के लिये उस सूअर को निकालने गया था। वाह, कैसा विश्वव्यापी प्रेम है! कितनी विशाल सर्वात्म-भावना है!

ख़ूँ रगे—मजनूं से निकला, फ़स्द लैली की जो ली।

अर्थात् लैली के शरीर की नस खोलते ही मजनू के शरीर से रुधिर बहने लगा। कैसी अनुभवात्मक एकता है!

पत्ती को फूल की लगा सदमा नसीम का,
शबनम के क़तरे आँख से उनकी टपक पड़े।

अर्थात् पुष्प की पत्ती को ठंडी वायु लगते ही नेत्रों में हिमबिन्दु दिखाई पड़े।

नक़द-धर्म, जीवित-धर्म, सनातन-धर्म का तत्त्व यह है कि तुम समस्त देश के आत्मा को अपना आत्मा समझो। धर्म का यह तत्त्व जिन देशों में व्यवहार अर्थात् बर्ताव में आता है, वे उन्नति कर रहे हैं; जिन जातियों में नहीं आया वे गिर रही हैं। अपने देश के विषय में अब एक बात बड़े खेद से कहनी पड़ेगी। इन दिनों हाँगकांग में सिक्खों की फ़ौज़ है, उसके पहले पठानों की फ़ौज़ थी। हाँगकाँग में सिक्खों को, (हमें ठीक याद नहीं) शायद एक पौंड प्रत्येक मनुष्य को वेतन मिलता है, और साधारण फ़ौज़ी सिक्खों को इससे भी कम, शायद दस रुपया (दो तिहाई पौंड) मासिक वेतन मिलता है। हाँगकाँग में पठानों को गोरों के बराबर प्रति व्यक्ति तीन-तीन पौंड (हमें ठीक याद नहीं) मिलता था। चीन के युद्ध के समय जब सिक्ख लोग वहां पर गये, तो पठानों का यह तिगुण से भी अधिक वेतन उनसे सहा न गया। बृटिश पार्लमेन्ट में उन्होंने प्रार्थनापत्र भेजे कि पठानों को जो तीन-तीन पौंड मिलता है क्यों नहीं आज कल के दो तिहाई पौंड के स्थान पर हमें एक पूरा पौंड मासिक दिया जाता, और उनकी जगह भरती कर लिया जाता? हिन्दुस्तान की सरकार और विलायत की सरकार में इन प्रार्थना पत्रों के घूमने फिरने के बाद पठानों से पूछा गया कि क्या तुम

लोगों को तीन पौंड के स्थान पर एक पौंड वेतन लेना स्वीकार है? एक पठान ने भी इसको अंगीकार नहीं किया। अन्त में पठानों की सब फ़ौज़ मौक़ूफ़ की गई। सब पठान आजीविका रहित होगये। भोले सिक्खों ने इतना न देखा कि अन्त में यह पठान भी हमारे ही देश के हैं। यह सहानुभूति न आई कि इनकी आजीविका मारी गई। दया न आई कि भाइयों का गला कट गया। हाय! ईर्ष्या और देश की फूट! यह भूखों मरते पठान आजीविका की तलाश में अफ़रिक़ा को गये और शुमाली देश में मुल्ला के साथ होकर इन्हीं सिक्खों से लड़े। इस युद्ध में विना लड़े ही केवल जलवायु के कठोर प्रभाव ही से सिक्खों की वह गति हुई कि ईश्वर बचावे इनको! लकवा होगया, गर्दनें मुड़ गईं, शरीर सूख गये, ज्वर आदि ने निढाल (अचेत) कर दिया। सच कहा है जो औरों की मौत का उपाय करता है, वह आपही उस उपाय से मरता है।

करदनी ख़्वेश आमदनी पेश,
चाहकन रा चाह दरपेश।

अर्थात् अपनी करणी आप भरणी। अर्थात् यथा कर्म तथा फल। कुँवां खोदने वाले के आगे कुँवां।

जापान में एक हिन्दुस्तानी विद्यार्थी शिक्षा पाता था। शिल्पविद्या की एक पुस्तक पुस्तकालय से वह मांग कर ले आया। वाक़ी लेख या उसके भावार्थ को तो नक़ल कर उतार लिया, किन्तु मशीनों (कलों) के नक़शों या चित्रों की नक़ल न कर सका। अब यह न सोचा कि और लोग भी इस पुस्तक से लाभ उठानेवाले हैं। यह न ख़याल किया कि इस चेष्टा से मेरे देश की अपकीर्ति होगी। झट पुस्तक से वे पन्ने जिन पर चित्र

थे फाड़ लिये और पुस्तक वापस कर दी। पुस्तक बहुत बड़ी थी, भेद न खुला, किन्तु छुपे कैसे? सत्य भी कभी छुपता है? एक दिन एक जापानी विद्यार्थी उसके कमरे में आया, मेज़ पर उस पुस्तक के फटे हुए पन्ने पड़े थे। देखकर उसने अफ़सर को सूचना दे दी। और वहां नियम हो गया कि अब किसी हिन्दुस्तानी विद्यार्थी को कोई पुस्तक न दी जाय। डूब मरने का स्थान है! एक तो आपने उस जापानी विद्यार्थी की बात सुनी जो जहाज़ पर हिन्दुस्तानी लोगों के लिये खाना लाया था, और एक इस हिन्दुस्तानी की करतूत देखी। जापानी अपना सर्वस्व दे देने को तैय्यार है कि जिससे अपने देश पर कलंक न आ जाय। और हिन्दुस्तानी विद्यार्थी अपना स्वार्थ चाहता है, समस्त देश चाहे बदनाम हो, कलंकित हो। हाथ (शरीर से) यह नहीं कह सकता कि मैं अकेला या (सब से) पृथक हूँ, मेरा रुधिर और है और सारे शरीर का रुधिर और है। इस भेद-भाव से यह ख़याल उत्पन्न होगा कि हाय! कमाऊँ तो मैं, और पले सारा शरीर। इस स्वार्थ-सिद्धि के लिये, हाथ के लिये, केवल एकही उपाय हो सकेगा, वह यह कि जो रोटी कमाई है, उसे सारे शरीर के लिये मुँह में डालने के बदले हाथ अपनी हथेली पर बाँध ले, या नाखूनों में घुसेड़ ले। पर क्या यह स्वार्थपरायणता की चाल लाभदायक होगी? अलबत्ता एक उपाय और भी है कि शहद की मक्खी या भिड़ से हाथ अपनी उंगलियाँ डसवाले, इस तरह सारे शरीर को छोड़ कर अकेला हाथ स्वयं बहुत मोटा हो जायगा, किन्तु यह मोटापन तो सूजन-रोग अर्थात् बीमारी है। इसी तरह जो लोग जातीय हित अपना हित नहीं समझते, अपने आत्मा को जाति के आत्मा से भिन्न मानते हैं,

ऐसे स्वार्थियों को सिवाय सूजन-रोग के और कुछ हाथ नहीं आता। हाथ वही शक्तिमान् और वलिष्ठ होगा जो कान, नाक, आँख पैर आदि सारे शरीर की आत्मा को अपनी आत्मा मानकर आचरण करता है, और मनुष्य वही फले फूलेगा जो सारे राष्ट्र के आत्मा को अपनी आत्मा मान लेता है।

अमेरिका का कुछ विस्तृत-वृत्तान्त।

अमेरिका में पहली आश्चर्य की वात यह देखी गई कि एक जगह पति तो प्रोटेस्टेंट मत का था और पत्नी रोमन-कैथोलिक। चित्त में यह विचार आया कि इस प्रकार के संप्रदाय भेद वाले लोग हमारे भारत में तो (जैसे आर्य-समाजी और सनातनधर्मी) एक मोहल्ले में कठिनता से काटते हैं, इन पति-पत्नी का एक घर में कैसे निर्वाह होता होगा? पूछने से मालूम हुआ कि बड़े प्रेम से रहते-सहते हैं। रविवार के दिन पति पहले पत्नी को उसके रोमन-कैथोलिक गिरजा में साथ जाकर छोड़ आता है, उसके वाद वह स्वयं अपने दूसरे गिरजा में जाता है। पति से वात-चीत हुई, तो वह कहने लगा कि जी! मेरी पत्नी के धर्म का प्रश्न तो उसके और परमात्मा के मध्य है। मैं कौन हूँ हस्तादेप करने वाला? मेरे साथ उसका सम्बन्ध नितान्त सरल है, परमात्मा के साथ अपने सम्बन्ध की वह जाने। क्या खूब!

अमेरिका में राष्ट्रीय एकता के सामने मतभेद की कुछ वास्तविकता नहीं। भारतवर्ष का आर्य-समाजी हो, सिक्ख हो, मुसलमान हो, ईसाई हो, अमेरिका में हिन्दू ही कहलाता है। उनके हृदय में राष्ट्रीय एकता इतनी समा रही है, कि वे हमारे यहाँ के इतने भारी मतभेदों को भूल जाने में ज़रा देर

नहीं लगाते। भारतवर्ष के कुछ धर्मानुयायी यदि यह जानते कि अन्त में अन्य सभ्य-देशों में हमें हिन्दू ही कहलाना है, तो हिन्दू शब्द पर इतने झगड़े और इस नाम से इतनी लज्जा न मानते।

उस देश के शक्तिशाली होने का एक कारण यह भी है कि वहां ब्रह्मचर्य है। मनुष्य-बल को व्यर्थ नहीं खोने देते। सामान्यतः २० वर्ष पर्यंत तो लड़के-लड़की को विचार भी नहीं आता कि विवाह क्या वस्तु है। इसका एक कारण विचार पूर्वक देखने से यह मालूम हुआ कि बालक और बालिकायें बच्चेपन से इकट्ठे खेलते-कूदते, एक छत के नीचे लिखते-पढ़ते, और साथ-साथ रहते-सहते हैं, और फिर साथ ही साथ कालिजों में शिक्षा पाते हैं। अतएव आपस में भाई-बहिन का सा सम्बन्ध बना रहता है, और उनके अन्तःकरण शुद्धता और पवित्रता से भरे रहते हैं। वहां लड़कियों के शरीर लड़कों के शरीरों के समान ही बलवान् होते हैं, इस लिये युवावस्था में उनकी सन्तति भी बलवान् होती है। यदि पुरुष बलवान् है और स्त्री दुर्बल हो, तो इसका आधा प्रभाव सन्तान पर होगा।

एक बार लेक जिनिवा (Lake Geneva) के तट पर जब राम रहता था, एक १३ वर्ष की बालिका तैरते-तैरते तीन मील तक चली गई। किश्ती पीछे-पीछे थी, कि यदि डूबने लगे तो सहायता की जाय। परन्तु कहीं सहायता की आवश्यकता न पड़ी। जब लड़कियों की यह दशा है तो भविष्य में उनकी सन्तान क्यों बलवान् न होगी? और जब शरीर में स्वास्थ्य है, तो अन्तःकरण में क्यों पवित्रता न होगी?

उनके ब्रह्मचर्य का और भी एक कारण है। अशक्ति से पाप होता है, और अजीर्ण से अशुद्धि होती है। जब मेदा ठीक

न हो तो चिन्ता और फ़िक्र स्वाभाविक ही पीछे लग जाते हैं। स्वास्थ्य ठीक नहीं है तो बात-बात में क्रोध आता है। वेद में लिखा है कि बलहीन इस आत्मा को नहीं जान सकता।

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

कमज़ोर की दाल ईश्वर के घर में भी नहीं गलती। जिसके अन्दर शारीरिक और आत्मिक बल नहीं है, वह ब्रह्मचर्य का कब पालन कर सकता है? और यह भी स्पष्ट है कि ब्रह्मचर्य से रहित मनुष्य शारीरिक और आत्मिक बल से रहित हो जाता है।

वहां कालिजों में क्या स्थिति है? बी० ए०, एम० ए० और डाक्टर आफ् फिलासोफी की उपाधि (डीगरी) पाने पर्यन्त विद्यार्थियों को शारीरिक व्यायाम का शिक्षण साथ-साथ दिया जाता है। युद्ध-विद्या, कृषि-विद्या, लोहारी, बढ़ई, तथा मेमार का काम बराबर सिखाया जाता है। मनुष्य के अन्दर तीन बड़े महकमें (कार्यालय) हैं। एक कर्मेन्द्रिय, दूसरा ज्ञानेन्द्रिय और तीसरा अन्तःकरण, इनको अंगरेज़ी में 'ह' कार से आरम्भ होनेवाले तीन शब्दों में वर्णन कर सकते हैं। हैंड (Hand-कर्मेन्द्रिय), हेड (Head-ज्ञानेन्द्रिय), और हार्ट (Heart-अन्तःकरण)।

ज्ञानेन्द्रियों से बाहरी ज्ञान अन्दर जाता है, और बाह्य पदार्थ अन्दर असर करते हैं। कर्मेन्द्रियों (जैसे हाथ पैर) से अन्दर की शक्ति बाहर प्रभाव डालती है। कर्मेन्द्रियां और ज्ञानेन्द्रियां यदि परस्पर योग्य प्रमाण से बढ़ती रहें और उन्नति करती जाँय, तो उत्तम है। यदि बाहर से ज्ञान को ठूंसते जाँय और अन्दर के ज्ञान तथा बल को बाहर न निकालते रहें, तो दशा वैसी ही हो जाती है कि मनुष्य खाता तो रहे किन्तु उसके शरीर से कुछ बाहर न निकल सके। इसका

परिणाम होगा बौद्धिक अजीर्ण और आत्मिक क़ब्ज़। यह शिक्षा नहीं है, यह रोग है।

अमेरिका में साधारण रीति से युनिवर्सिटी की शिक्षा का यह मन्तव्य और उद्देश्य है कि स्वदेश की वस्तुएँ काम में लाई जाँय, अर्थात् ज़मीन, खनिज, वनस्पति, और अन्य पदार्थ इत्यादि का उपयोग और अधिक मूल्यवान् बनाना मालूम हो जाय। जितने कला-कौशल सिखलाये जाते हैं, वे प्रत्यक्ष व्यवहार में उपयोगी और लाभदायक होते हैं। कोई विद्यर्थी रसायन-शास्त्र निरर्थक नहीं पढ़ेगा, यदि उसको रसायन-शास्त्र को व्यावहारिक उपयोग में लाने की कला, जैसे कि रासायनिक शिल्पविज्ञान (Chemical Engineering) इत्यादि, भी साथ न सीखना हो।

एक धार्मिक कालेज में राम का व्याख्यान हुआ। व्याख्यान के बाद कालेज के लोगों ने अपनी जंगी क़वायद (सैनिक व्यायाम) दिखलाई, और कालिज के सैनिक गीतों इत्यादि से जय पुकारते-पुकारते व्याख्याता की सलामी की। राम ने पूछा "यह क्या? कालिज तो धार्मिक और शिक्षा सैनिक?" प्रिन्सपल साहब ने उत्तर दिया, "धर्म के अर्थ हैं देह और देहाभ्यास को हज़रत ईसा के समान सूली पर चढ़ा देना, अभिमान को मिटा देना, जान को देश निमित्त हथेली में उठाये फिरना। और यह प्राण-समर्पण और सच्ची शूरवीरता की आत्मा सैनिक शिक्षा से आती है"।

अब कोमल मनोवृत्ति और अन्तःकरण की पवित्रता की शिक्षा की स्थिति देखिये। एक विश्वविद्यालय में राम गया, जो केवल विद्यार्थियों और अध्यापकों की कमाई से चल रहा था। विद्यार्थी लोग वहाँ शुल्क (फ़ीस) इत्यादि कुछ नहीं

देते थे। अन्य शिक्षाओं के अतिरिक्त विद्यार्थी लोग, अध्यापकों के अधीन कालिज की ज़मीन पर या यंत्रों पर काम करते थे। अध्यापक नवोन-नवीन प्रयोग और आविष्कार करते थे और विद्यार्थियों को करना सिखाते थे। ज़मीन के अनोखे ढंग की और निराली पैदावार तथा नवीन कारीगरी की आमदनी से सब खर्च किया करते थे। राम की उपस्थिति में एक कमरे में विद्यार्थियों का आपस में झगड़ा हो पड़ा। प्रिन्सिपल के पास यह मुक़द्दमा गया। प्रिन्सिपल ने उस कमरे में सब काम बन्द करा दिये, और प्यानो बाजा बजाना शुरु करा दिया। १५ मिनिट में मुक़द्दमा फैसला हो गया, अर्थात् परस्पर निपटारा हो गया। वाह! जिनके अन्दर शान्ति रस भरा है, उनके अन्दर के मेल और शान्ति को उकसाने के लिये बाहरी संगीत ही काफी बहाना हो जाता है। और कैसा प्रबन्ध है; वायु में सत्वगुण भर दिया, दिलों की खटपट आप ही रफा हो गई।

शिकागो विश्व-विद्यालय (Chicago University) के बी० ए० श्रेणि के एक विद्यार्थी ने राम के कुछ तत्त्वज्ञान के व्याख्यानों पर नोट लिये, और थोड़े दिनों में अपनी ओर से घटा बढ़ा के उनकी एक पुस्तक बना कर विश्व-विद्यालय के भेंट की। इस विद्यार्थी को तत्काल एक श्रेणि की वृद्धि दे दी गई। यह नहीं देखा कि इस ने मिल (Mill) और हेमिल्टन (Hamilton) की पुस्तकों से अपने मस्तिष्क को लेटरबेग बनाया है कि नहीं। अवश्यमेव वास्तविक शिक्षा का आदर्श यह है कि हम अन्दर से कितनी विद्या बाहर निकाल सकते हैं, यह नहीं कि बाहर से अन्दर कितनी डाल चुके हैं।

राम एक समय अमेरिका में शास्ता-पर्वत के जंगलों में रहता था। कुछ मनुष्य भी मिलने आये। उनके साथ एक

बारह वर्ष की लड़की भी थी। सब राम के उपदेश को ध्यान-पूर्वक सुनते रहे, किन्तु थोड़ी देर के लिये लड़की अलग जाकर बैठ गई। जब वापिस आई तो एक कागज़ पेश किया। यह क्या था? राम का सारा उपदेश, जिसे वह अँगरेज़ी कविता में पिरो लाई। बाद में यह कविता वहाँ के पत्रों में छप भी गई। बालकों की यह बुद्धि और योग्यता उनको स्वतन्त्र रखने का परिणाम है। मनुष्य चाहे बच्चा हो या बूढ़ा, वह केवल वार्तालाप करने वाला पशु कहलाता है। पशु-वृत्ति और वाक्शक्ति अर्थात् बुद्धिमत्ता ये दो अंश जो मनुष्य में हैं, उस में बुद्धिमत्ता सवार है और पशु-वृत्ति सवारी का घोड़ा। जब हम बालकों की विचार-शक्ति को प्रेम से समझा कर उनसे काम नहीं लेते, किन्तु बुरा-भला कह कर उन पर शासन करते हैं, तो मानों पशु-वृत्ति के घोड़े को लाठी के प्रभाव से बुद्धिमत्ता के सवार के तले से निकाल ले जाना है। ऐसी अवस्था में बच्चे के अन्दर-वाले को क्रोध क्यों न आवे? बालकों को डाटना केवल पशु-वृत्ति से काम लेना है, और उनमें उस अंश (बुद्धिमत्ता) का अपमान करना है, जिसके कारण मनुष्य संसार में श्रेष्ठ कहलाता है। सख्ती करना या झिड़कना उन के भीतर की श्रेष्ठता का अपमान करना है। बिना समझाये या बिना कारण बतलाये बालक पर किसी प्रकार की निषेधक आज्ञा करना कि "ऐसा मत करो, वैसा मत करो" उसे उस काम करने की उत्तेजना स्वतः देना है। जिस समय परमात्मा ने हज़रत आदम को आज्ञा दी कि "अमुक वृक्ष का फल मत खाना" तो उसी निषेध के कारण हज़रत आदम के दिल में बुरा विचार उत्पन्न हो आया। उस स्वर्गोद्यान (बाग़े-जिन्नत) में हज़ारों वृक्ष थे, किन्तु जब निषेध किया गया कि "यह न खाना" तो स्वतः उसके खाने

की इच्छा उत्पन्न हो आई। बहुत से आवश्यक विज्ञापनों का वर्त्तमान पत्रों में यह शीर्षक (heading) होता है "इसको मत पढ़ना"।

किसी मनुष्य ने एक महात्मा से मन्त्र चाहा। महात्मा ने मन्त्र बतला कर कहा "तीन माला जपने से मन्त्र सिद्ध हो जायगा। परन्तु सावधान! शर्त यह है कि माला जपते कहीं बन्दर का ख़याल न आने पाये।" थोड़े अनुभव के बाद वह बेचारा साधक महात्मा से आकर कहने लगा, "महाराज जी! बन्दर मेरे तो कहीं स्वप्न में भी न था, किन्तु आपके 'सावधान' करने से अब तो बन्दर का ख़याल मुझे छोड़ता ही नहीं"। चित्त में यह उलटा प्रभाव डालने वाली शिक्षा का ढङ्ग अमेरिका में नहीं है। बालकों की शिक्षा वहाँ शिशु-शिक्षा (किंडर-गार्टन) की पद्धति पर होती है। अध्यापक बालकों के साथ खेलते, कूदते, गाते, नाचते, पढ़ाते चले जाते हैं, और बालक हँसी के साथ अभ्यास करते जाते हैं। उदाहरणार्थ बालकों को जहाज़ का पाठ पढ़ाना है। एक एक लकड़ी का जहाज़ बना हुआ प्रत्येक बालक की कुरसी के आगे रक्खा हुआ है और बांस की फांकें आदि पास धरी हैं, जिनसे नया जहाज़ बना सकें। बालकों के साथ मिले हुये अध्यापक या अध्यापिका कहते हैं "हम तो जहाज़ बनायँगे, हम तो जहाज़ बनायँगे।" बच्चे भी देखा देखी कहने लग पड़ते हैं, "हम भी जहाज़ बनायँगे"। ए लो, सब बैठ गये, एक बालक ने जहाज़ बना दिया, दूसरे ने सफलता पा ली, फिर तीसरे ने बना लिया। जिस किसी को ज़रा देर लगी अन्य बालकों ने या अध्यापिका ने सहायता दे दी। फिर बालकों ने बड़ी रुचि के साथ अध्यापिका से स्वयं प्रश्न करने शुरू किये। जहाज़ के इस भाग का क्या

नाम है? वह भाग क्या कहलाता है? यह क्या है? वह क्या है? अध्यापिका मस्तूल आदि सब का हाल और नाम बतलाती जाती है, और बालक इस प्रकार जहाज़ के सम्बन्ध की सब बातें मानो अपने आप ही सीख गये। हमारे यहां बालक पढ़ते हैं ' K के ee डबल-ई l एल=कील (Keel) माने जहाज़ की पैंदी", ऐसा रटते-रटते सिर में कील ठुक गई, मगर बालक को ख़बर भी न हुई कि कील क्या चीज़ है, और जहाज़ कैसा होता है? वहां 'पदार्थ' की पहिचान पहले कराई जाती है, 'पद' (नाम) पीछे बतलाया जाता है। यहाँ नाम (पद) पहले याद कराते हैं, (पदार्थ) विषय का चाहे सारी आयु पता न लगे। वहां बालक प्रश्न करते रहते हैं (जैसा कि सब जगह बालकों का स्वभाव है), और अध्यापक का कर्तव्य है उनको पूरे-पूरे उत्तर देते जाना। यहां इतने बड़े अध्यापकों को लज्जा नहीं आती कि छोटे-छोटे बच्चों को प्रश्न पूछ-पूछ कर हैरान करते हैं। पढ़ना वह क्या है, जिसमें आत्मिक आनन्द न हो। यहां शिक्षक को देख कर बालकों का मारे भय से प्राण जाता है। वहां बालकों का प्रेम जो शिक्षकों से है, माता-पिता से नहीं। जो प्रसन्नता उन्हें पाठशाला में है, घर में नहीं। पाठशालाओं में वहां शुल्क (फ़ीस) नहीं लिया जाता, और पुस्तकें सब को मुफ़्त दी जाती हैं।

अब वहां की दुकानों की स्थिति देखिये। शिकागो में राम एक दुकान पर बुलाया गया, जिसके फ़र्श का क्षेत्रफल एक तिहाई ग़ाज़ीपूर से कम न होगा और दुकान के नीचे-ऊपर पच्चीस मंज़लें थीं, जिस मंज़िल पर जाना चाहो, बालाकश (elevator—ऊपर उठाने वाली कल) झट ले जायगी। हर मंज़िल में नवीन प्रकार का माल भरा हुआ था। करोड़ों

के ग्राहक प्रतिदिन आते हैं किन्तु दुकानवालों का वर्ताव सब के साथ एक समान है, चाहे लाख का ग्राहक हो चाहे पांच पैसे का, मूल्य एक ही होगा, जो प्रत्येक वस्तु के ऊपर लिखा है। इससे कौड़ी कम नहीं, कौड़ी अधिक नहीं, और सब के साथ हसमुख (यहां तक कि जो कुछ भी न ख़रीदे और दस वस्तुओं के दाम पूँछ-पूँछ कर चला जाय उसे भी) द्वार तक छोड़ने आते हैं, और अपने नियमानुसार शिष्टाचार से नमस्कार करते हैं। इस बड़ी दुकान ही पर नहीं, साधारण दुकानों पर भी यही वर्ताव है।

अमेरिका, जापान, इङ्गलैंड, जरमनी में पुलिस अत्यन्त सभ्य और प्रजा की सेवक है। प्रजा-रक्षक है, प्रजा-भक्षक नहीं। कुछ श्रोतागण शायद दिल में कह रहे होंगे कि बस बन्द करो, अमेरिकन लोगों की बहुत प्रशंसा कर ली। उनके गीत कहां तक गाते जाओगे? क्या हमें अमेरिकन बनाया चाहते हो? इस भ्रांतिवालों से राम कहता है कि क्या भारतवासी अमेरिकन बनें? हर! हर! हर! दूर हो यह विचार जिसके दिल में भी आया हो। परे हटा दो यह आशा जिस किसी ने कभी की हो। राम का ऐसा विचार कदापि नहीं हुआ, न होगा। अलबत्ता कुछ बातें उन देशों से लेना हम लोगों के लिये ज़रूरी हैं। यदि हम विनाश के प्रहार से बचना चाहते हैं, यदि हमें हिन्दू बने रहना स्वीकार है, तो हमें उनके कला-कौशल ग्रहण करने होंगे, चाहे वे किसी मूल्य पर मिलें। जब राम अमेरिका में रहा तो सिर पर पगड़ी हिन्दुस्तानी थी, किन्तु बाजारों में बर्फ होने के कारण पाओं में जूता उसी देश का था। लोगों ने कहा "जूता भी हिन्दुस्तानी क्यों नहीं रखते?" राम ने उत्तर दिया, "सिर तो हिन्दुस्तानी रक्खूंगा,

किन्तु पाँव तुम्हारे ले लूंगा"। राम तो चित्त से यह चाहता है कि आप हिन्दुस्तानी ही बने रह कर अमेरिकन आदि से बढ़ जाँय, और यह उन राष्ट्रों से दूर रहते हुए नहीं हो सकता। आज विद्युत, वाष्प, रेल-तार इत्यादि देश और काल को मानों हड़प कर गये हैं। दुनियां एक छोटा सा टापू बन गई है, समुद्र-मार्ग विघ्नरूप होने के बदले राजमार्ग हो गया है। जिनको कभी भिन्न देश कहते थे, वे नगर हो गये हैं। और पहले के नगर मानों गलियां बन रही हैं। आज यदि हम अपने तईं अलग थलग रखना चाहें और दूसरे राष्ट्रों से भिन्न मान कर अपने ही ढाई चावल की खीचड़ी पकायें, आज बीसवीं शताब्दि में यदि हम मसीह से बीसवीं शताब्दि पहले के रीति और रिवाज़ वर्तें, आज यदि हम पाश्चात्य देशों के कला-कौशल का मुक़ाबला करना न सीखें, आज यदि हम उधार-धर्म के लड़ाई झगड़े छोड़ कर नक़द-धर्म को न वर्तें, तो हम इस तरह से उड़ जायँगे, जैसे वाष्प और बिजली से देश और काल उड़ गये हैं। भारतवासियो ! अपनी स्थिति को पहचानो।

कञ्चन होवे कीच में विष में अमृत होय,
विद्या नारी नीच में तीनों लीजे सोय।

जब भारतवर्ष में ऐश्वर्य था, तो भारतवासियों ने अपने को कूपमंडूक नहीं बना रक्खा था। जब पुष्कर में यज्ञ हुआ तो हबशी, चीनी और ईरानी राष्ट्रों के लोगों को निमंत्रण दिया गया। राजसूय यज्ञ के पहिले भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव पांडव दूर दूर के विदेशों में गये। स्वयं रामचन्द्र जी मर्यादा पुरुषोत्तम अवतार ने समुद्र पार जाने की मर्यादा बांधी।

दोश अज़ मसजिद सूए मैखाना आमद पीरे-मा,
चीस्त याराने, तरीक़त बाद अज़ीं तदबीरे मा।

'अर्थात् कल रात्रि हमारा गुरु मंदिर से मदिरागृह में आया। ऐ मर्यादा वाले लोगो ! अब हमारा क्या कर्तव्य है ?

उन दिनों तो भारतवर्ष किसी अन्य देश के अधीन भी न था, किन्तु आज अन्य देशों के कला-कौशल सीखने की वह आवश्यकता है कि इनके बिना प्राण जाता है। बस आज भारतवर्ष यदि जीना चाहता है, तो अमेरिका, युरोप, जापान आदि बाहर के देशों से अपने आप को स्वयं ख़ारिज न कर दे। बाहर की हवा लगने से जान में जान आ जायगी। हिन्दू बाहर जायँगे तो सच्चे हिन्दू बन जायँगे। बाहर जाने से अपने शास्त्र का सन्मान मालूम होगा, और बहुत अच्छी तरह से मालूम होगा, और शास्त्र-वर्ताव में आने लगेगा। तुम अपने तईं नितान्त संसार से विरक्त बना नहीं सकते। जितना विदेशी लोगों से मुँह मोड़ा, उतना उनके दास बन कर रहना पड़ा।

संकल्प—बल

पुराणों में सुना करते थे और पढ़ा करते थे कि अमुक ऋषि के वर या शाप से अमुक व्यक्ति की दशा बदल गई। योगवाशिष्ठ में शिला (पत्थर) में सृष्टि दिखाने का उल्लेख आता है, किन्तु अमेरिका में ऐसे दृश्य आँखों के सामने प्रत्यक्ष गुज़रे। युनिवर्सिटी के मकानों और हस्पतालों में इस प्रकार के प्रयोग किये जाते हैं कि हज़ारों रोगी केवल संकल्प-बल से अच्छे किये जाते हैं। प्रोफ़ेसर की संकल्प-शक्ति से मेज़ का घोड़ा दीखना या जेम्स (james) साहब का डाक्टर पाल (paul) हो जाना (व्यक्ति का बदल जाना), पुराने जेम्सपन का उड़ जाना यह सब अपनी आँखों देखा।

संस्कृत में वेदान्त (अद्वैत) के असंख्य मस्ती भरे ग्रंथ हैं, जैसे दत्तात्रेय की अवधूत गीता, श्रीशंकराचार्य के वेदान्त के स्तोत्र, अष्टावक्र गीता, योगवासिष्ठ के कुछ अध्याय। फ़ारसी में सब से बढ़कर अद्वैत (तोहीद) का ग्रन्थ शम्स-तब्रेज़ का है, उस से उतर कर मसनवी शरीफ़, शेख़ अत्तार, मग़रबी वग़ैरह। किन्तु अमेरिका में वाल्ट ह्विटमन (Walt Whitman) का ग्रन्थ "लीव्ज़ आफ़ ग्रास" (Leaves of Grass) वही अद्वैत की मस्ती और स्वतंत्रता लाता है, जो अवधूत गीता, अष्टावक्र गीता, श्री शंकराचार्य के स्तोत्र, शम्स-तब्रेज़ और बुल्लाशाह की कविता लाते हैं, बल्कि इनसे भी कहीं बढ़कर।

डट कर खड़ा हूँ ख़ौफ़ से ख़ाली जहान में,
तस्कीने-दिल[१] भरी है मेरे दिल में जान में।
सूंघे ज़माँ[२] मकाँ[३] हैं मेरे पैर मिस्ले-सग[४],
मैं कैसे आ सकूँ हूँ क़ैदे-बयान[५] में।

हबशी ग़ुलामों को स्वतंत्रता देने के लिये अमेरिका के आन्तर युद्ध के दिनों यह वाल्ट ह्विटमन प्रत्येक युद्ध में सब से आगे मौजूद था, दोनों ओर के ज़ख़मियों को मरहम-पट्टी करना, प्यासों को पानी पिलाना, मृत्युमुख पुरुषों को अपनी मुसक्यानों से जान में जान लाना और इसी समय की अपनी नवीन काव्यकृति को रात-दिन गाते फिरना उसके लिये खेल का काम था। इस रोने-धोने की भीड़ में अर्थात् घोर रणभूमि में व भीषण संग्राम में, यह ह्विटमैन ऐसा प्रसन्नचित्त और सन्तुष्ट फिरता था जैसे महादेवजी भूत-प्रेत के घमसान में, या कृष्ण भगवान् कुरुक्षेत्र की रणभूमि में। धन्य थे इन निरन्तर

१ शान्ति। २ काल। ३ देश। ४ कुत्ते के समान। ५ उल्लेख के बन्धन में

युद्धों के अधमुए जो ऐसे अवतार पुरुष के दर्शन करते मृत्यु को प्राप्त हुए।

शब हो हवा हो धूप हो तूफाँ हो छेड़-छाड़,
जंगल के पेड़ कब इन्हें लाते हैं ध्यान में ?
गर्दिश से रोज़गार के हिल जाय जिसका दिल,
इन्सान होके कम हैं दरख़्तों से शान में।

भावार्थः—चाहे रात्रि हो, चाहे हवा हो, चाहे धूप हो, चाहे आंधी और उसके झोंके, जंगल के वृक्ष इनकी कुछ परवाह नहीं करते। और समय के हेर-फेर से जिसका चित्त अस्थिर हो जाय, वह चाहे मनुष्य है, परन्तु वृक्षों की अपेक्षा तुच्छ है।

इस प्रकार का ब्रह्मनिष्ट अमेरिका में हेनरी थोरो (Henry Thoreau) भी हुआ है, जो सच्चे ब्रह्मचारी या संन्यासी का जीवन एकान्त जंगलों में व्यतीत करता था। अलबत्ता आलस्यसेवी साधु न था। अमेरिका का सब से बड़ा लेखक एमर्सन (Emerson) इस थोरो के सम्बन्ध में लिखता है कि, शहद की भिड़ें उसकी चारपाई पर उसके साथ सोती हैं, किन्तु इस निडर प्रेम के पुतले को नहीं डसतीं। जंगल के साँप उसके हाथों और टांगों को चिमट जाते हैं, किन्तु इन्हें कंकण और आभूषण समझता हुआ इनकी परवाह नहीं करता। कैसा व्यालभूषण है !

मार्ग पर चलते-चलते एमर्सन ने पूछा "यहां के पुराने निवासियों के तीर कहां मिलते हैं, तो अपने स्वभाव के अनुसार झट जवाब दे दिया, "जहां चाहो" और इतने में झुक कर उसी स्थान से इच्छित तीर उठाकर दे दिया। दृष्टि-सृष्टि-वाद का कैसा प्रत्यक्ष अभ्यास है !

स्वयं एमर्सन जिनकी लेखनी ने अर्वाचीन जगत् में नवीन चेतना फूंक दी, भगवद्गीता और उपनिषदों का वह न केवल

अभ्यासी बल्कि उनको बहुत बड़ा आचरण में लाने वाला था। उसने अपने लेखों में उपनिषद् और गीता के प्रमाण कई एक स्थानपर दिये हैं। और उसके निज के मित्रों की ज़बानी मालूम हुआ कि उसके विचारों पर विशेषतः गीता और उपनिषदों का प्रभाव था। महात्मा थोरो अपने 'वाल्डन' (Waldan) नामक पुस्तक में लिखता है, "प्रातःकाल में अपने अन्तःकरण और बुद्धि को भगवद्गीता के पवित्र गंगाजल में स्नान कराता हूँ। यह वह सर्वश्रेष्ठ और सर्वव्यापी तत्त्वज्ञान है कि इसको लिखे हुए देवताओं को वर्षों पर वर्ष बीत गये, किन्तु इसके बराबर की पुस्तक नहीं निकली। इसके समक्ष हमारा अर्वाचीन जगत् अपनी विद्याओं और कला-कौशल और सभ्यता के साथ तुच्छ और क्षुद्र मालूम देता है। इसकी महत्ता हमारे विचार और कल्पना से इतनी दूर है, कि मुझे कई बार ख़याल आता है कि शायद यह शास्त्र किसी और ही युग में लिखा गया होगा"। एक और प्रसंग पर 'मिश्र' के भव्य मीनारों का वर्णन करते हुए थोरो लिखता है कि प्राचीन जगत् के समस्त स्मारकों में भगवद्गीता से श्रेष्ठतर कोई संस्मरण नहीं है। यही भगवद्गीता और उपनिषदों की शिक्षा आचरण में आई हुई व्यावहारिक वेदान्त या नक़द-धर्म हो जाती है। इसी को रगों-पट्ठों में लाकर वे लोग उन्नति को प्राप्त हो रहे हैं। आपके यहां यह क़ीमती नोट (हुँडी) मौजूद है, पर कागज़ के नोट से चाहे वह कितना ही क़ीमती हो भूख नहीं जाती, प्यास नहीं बुझती, शरीर की ठंडक (सरदी) नहीं दूर होती। इस हुंडी को भुना कर 'नक़द-धर्म' में बदलना पड़ेगा। आज वे लोग इस नोट की क़ीमत दे सकेंगे। आज वहां पर यह हुंडी खरी हो सकती है। जाओ उनके पास।

जब सीता जी अयोध्या से वनवास को सिधारीं, तो उनके पीछे नगर की शोभा दूर हो गई, शोक-विलाप फैल गया। प्रजा व्याकुल हो गई। राजा का शरीर छूट गया। रानियों को रोना-पीटना पड़ गया। राजसिंहासन चौदह वर्ष तक मानों ख़ाली रहा और जब सीता जी को समुद्र पार से लाने के लिये रामचन्द्र जा खड़े हो गये, तो पक्षी (गरुड़ और जटायु) भी सहायता करने को तैय्यार हो गये, जंगल के पशु (बन्दर, रीछ इत्यादि) लड़ने मरने के लिये सेवा में उपस्थित हो गये। कहते हैं कि अपनी छोटी सी शक्ति के अनुसार गिलहरियाँ भी मुँह में रेत के दाने भर-भर कर पुल बांधने के लिये समुद्र में डालने लगीं। वायु और जल भी अनुकूल बन गये। पत्थर भी जब समुद्र में डाले गये तो सीता के लिये अपने स्वभाव को भूल गये और डूबने के स्थान पर तैरने लगे।

कुनम सद सर फ़िदाए पाये-सीता।
च यकता सर च दहता न सर च सी ता॥

अर्थात् मैं सौ सिर सीता जी के पैरों पर भेंट कर दूंगा चाहे एक सिर का सिर हो, चाहे दस का, चाहे तीस का।

सीता से अभिप्राय अध्यात्म रामायण में है ब्रह्मविद्या। हम कहेंगे "अमली-ब्रह्मविद्या" (नक़द-धर्म) को तिलाञ्जलि देने से भारत वर्ष में सर्व प्रकार की आपत्ति आई। क्या क्या विपत्ति नहीं आई? किस किस दुःख और रोग ने हमें नहीं सताया? हाय! यह सीता समुद्र पार चली गई। व्यावहारिक ब्रह्म-विद्या को समुद्र पार से लाने के लिये आज खड़े तो हो जाओ, और देखो समस्त संसार की शक्तियां आपस में शर्तें बाँध कर तुम्हारी सेवा व सहायता करने के लिये हाथ जोड़े

खड़ो हैं, सब के सब देवता और मलायक (देवदूत) सिर झुकाये हाज़िर खड़े हैं। प्रकृति के नियम शपथ खा खा कर तुम्हारी सहायता को कटिबद्ध होकर खड़े हैं। अपने ईश्वरत्व में जागो तो सही, और फिर देखो, कि होता है या नहीं।

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा,
हम बुलबुलें हैं उसकी वह बोस्तां हमारा।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

विश्वास या ईमान

(ता० १० सितम्बर १६०५ को फ़ैज़ाबाद के विक्टोरिया-हाल में दिया हुआ व्याख्यान ।)

[स्वामीजी ने फ़रमाया कि व्याख्यान से पूर्व हम सबको ध्यान कर लेना ज़रूरी है । अर्थात् इस बात का ख़याल करें कि हम सब में एक ही आत्मा व्यापक है, एक ही समुद्र की हम सब तरंगे हैं, एक ही सूत्र (धागे) में हम सब माला के मोतियों के समान पुरोये हुए हैं । इसपर कुछ समय तक शान्ति आच्छादित हो गई । सब ने मौन धारण कर लिया और श्री स्वामी जी तथा श्रोतागण इस ध्यान में डूब गये । तत्पश्चात् "ओ३म्" का ऊँचे स्वर से उच्चारण करके स्वामी जी ने अपनी वक्तृता इस प्रकार आरम्भ की ।]

वनस्पति-विद्या (Botany) की यह एक साधारण कहावत है कि जून के महीने से वृक्ष फूल नहीं देते, और अपने पत्तों को इस प्रकार शोभायमान करते हैं कि उनके सामने फूल मात हो जाते हैं । चाहे रंगत की दृष्टि से देखो, चाहे सुगंध की दृष्टि से । रंग और गंध दोनों ही में वे पत्ते किसी दशा में न्यून नहीं होते, वरन् बल और शक्ति की दृष्टि से वे पुष्पों से भी श्रेष्ठ होते हैं, क्योंकि उनमें पुष्पों की कोमलता और निर्बलता के स्थान पर बल और शक्ति होती है । इसका कारण क्या है ? इसका कारण वही "ब्रह्मचर्य" है । अर्थात् पुष्पों का विवाह होता है, मगर वह पौधे, जो फूलते नहीं, ब्रह्मचारी रहते हैं ।

जब यह बात वृक्षों में पाई जाती है, तो क्या मनुष्य में इसका विकाश नहीं है ? हमारी दृष्टि सत् अर्थात् परमेश्वर में

इस प्रकार जमनी चाहिये कि उसके सामने इस जगत् के पदार्थ सब के सब मिथ्या दिखाई देने लगें।

हूरे[1] पर आँख न डाले कभी शैदा[2] तेरा।
सब से बेगाना[3] है, ऐ दोस्त शिनासा[4] तेरा।

राम इसी अवस्था का नाम अभ्यास, निश्चय, श्रद्धा, विश्वास वा इसलाम बतलाता है।

असभ्य जातियों के विषय में कहा जाता है कि रात्रि को वह जाड़ों के मारे ठिठुर रहे हैं। अगर किसी ने उनको कम्बल दे दिया तो ओढ़ लिया, फिर जहाँ सवेरा हुआ और धूप निकली, जिसने चाहा एक मिसरी की डली देकर उनसे कम्बल ले लिया। रात हुई अब फिर काँप रहे हैं। फिर दूसरी रात कम्बल पाया। और दिन में किसी ने एक ज़रा सी मिसरी की डली का लालच देकर उनसे कम्बल ले लिया। अर्थात् अब उनको मिसरी की डली के सामने वह रात का जाड़ा जो अब सामने मौजूद नहीं है, याद नही आता। इसी तरह ऐसे लोग भी हैं जो अपने आप को असभ्य नहीं कहते, मगर वह उस चीज़ को नहीं मानते जो उनकी आँखों के आगे इस समय मौजूद नहीं, अर्थात् विश्वास नहीं रखते। उस वस्तु का मानना जो उनकी आँखों के आगे मौजूद नहीं है, विश्वास निश्चय, यक़ीन, या इसलाम (faith) कहलाता है।

एक बार देवताओं का असुरों के साथ युद्ध हुआ। देवता लोग बल में असुरों से कम थे। उनके गुरू बृहस्पति ने चार्वाक का मत असुरों को सिखाया। इस मत के ऐसे ही सिद्धांत हैं कि खाओ, पियो, और चैन करो (Eat, drink and be

---

१ स्वर्ग की अप्सरा। २ प्रेमासक्त। ३ निराला। ४ पहचाननेवाला।

merry.) और किसी ऐसी वस्तु को, जो तुम्हारे सामने न हो, मत मानो।

जिस जाति में भलाई, सत् या ईश्वर का विश्वास, श्रद्धा या इसलाम नहीं है, वह जाति विजय नहीं पा सकती। एक महाशय ने राम से आज यह शिकायत की कि विश्वास ने भारतवर्ष को चौपट कर दिया। वह महाशय विश्वास का अर्थ नहीं जानते हैं। लो, आज राम विश्वास के बारे में कुछ बोलेगा। अमेरिका का एक सुविख्यात देशभक्त कवि वाल्ट ह्विटमेन (Walt Whitman) हुआ है जिसका ज़िक्र राम ने प्रायः किया है और जिस के नाम पर आज सैकड़ों बल्कि हज़ारों मनुष्य, जिन्होंने उसके आनंदमय वाक्यों को पढ़ा है, उसी तरह जान देने को तैयार हैं, जिस तरह ईसाई लोग हज़रत ईसा पर, मुसलमान लोग मोहम्मद साहब पर, और हिंदू लोग भगवान् राम या कृष्ण पर। वह अपनी पुस्तक "लीवज़ आफ़ ग्रास" (Leaves of Grass) में इस तरह लिखता है कि आकाश पर तारे और भूमि पर कण केवल धर्म या विश्वासार्थ चमकते हैं। इस अमेरिकन लेखक का उल्लेख राम इस कारण से करता है कि लोगों का ख़याल है कि युरोप और अमेरिका वाले सब के सब नास्तिक होते हैं, अर्थात् ईश्वर को नहीं मानते। भला यह क्या संभव है कि बिना ईश्वर में विश्वास किये हुए कोई देश उन्नति कर सके? हाँ, निस्संदेह वह ऐसे ईश्वर को नहीं मानते जो मनुष्यों से अलग, संसार से परे कहीं बादलों के ऊपर बैठा हुआ है। कहीं उसको वहाँ ज़ुकाम न हो जाय। और जिस देश में भ्रम वा अविश्वास फैल जाता है अर्थात् जहाँ संशय घर कर लेता है, उस देश की दशा नष्ट हो जाती है।

"संशयात्मा विनश्यति" (गीता)

इस रोग की शीघ्र दवा करो, नहीं तो यह रोग असाध्य जीर्ण-ज्वर हो जायगा। वीरता विश्वास वालों के लिये है।

मरना भला है उसका जो अपने लिये जिये।
जीता है वह जो मर चुका इन्सान के लिये॥

कहाँ अरब की मरुभूमि! वहाँ एक उम्मी-अनपढ़ (हज़रत मुहम्मद से अभिप्राय है) जंगलों के रहने वाले अनाथ के मन में इसलाम (श्रद्धा-faith-विश्वास) की आग भड़क उठी। अर्थात् सिवाय अल्लाह (ईश्वर) के और कुछ नहीं है—"ला इलाहि इल्लिलाह" "एकमेवा द्वितीयम्" ऐसा विश्वास उसके मन में जम गया। परिणाम यह हुआ कि उसके अंतःकरण में आग भड़की और उस मरुस्थल में पड़ी, जहाँ रेत का एक एक कण अग्निप्रसारक बारूद का छर्रा बन गया और सारे संसार में एक हलचल मच गई। ग्रेनाडा (Granada) से लेकर दिल्ली तक और युरोप, अफ़रीका और एशिया के इस सिरे से उस सिरे तक एक आफ़त मचा दी। यह क्या था? श्रद्धा और विश्वास का बल। विश्वास की शक्ति, न कि तलवार और बन्दूक़ की शक्ति जैसा कि लोग प्रायः कहा करते हैं कि बन्दूक़ और तलवार की शक्ति से इसलाम ने विजय पाई।

जिस समय मोहम्मद गोरी और महमूद ग़ज़नवी भारत वर्ष में आये, तो वह लोग बहुत कम थे और हम लोग दल के दल। मगर क्या कारण था कि हमारी हार हुई और उनकी जीत? एक इतिहासज्ञ लिखता है कि जिस प्रकार घटा (आँधी) के आगे ख़ाक उड़ती चली जाती है, उसी प्रकार हिंदुओं के दल के दल मुसलमानों के सामने उड़ते चले जाते थे। इसका कारण वही यक़ीन या विश्वास था। जब तक

हृदय में यक़ीन न हो, हाथ में शक्ति भी नहीं आती। जब हृदय में विश्वास भरता है, तो हाथ और बाहु शक्ति से फड़कने लगते हैं। एक बार का ज़िक्र है कि जब राम बी० ए० की परीक्षा दे रहा था, तो परीक्षक ने गणित के पर्चे में १३ प्रश्न देकर ऊपर लिख दिया कि "Solve any nine out of the thirteen." (इन तेरह प्रश्नों में से कोई नौ प्रश्न हल करो)। चूँकि राम के हृदय में विश्वास ज़ोर मार रहा था, उसने उसी समय में सब तेरह के तेरह प्रश्न हल करके लिख दिया कि इन तेरह प्रश्नों में से कोई से नौ जाँच लो, यद्यपि इन तेरह प्रश्नों में से औरों ने कठिनता से तीन या चार प्रश्न हल किये थे।

जेम्स (James) भी ऐसा कहता है कि विजय या जीत उसी की है जिसको यक़ीन या विश्वास है, और यही रुहानी क़ानून (अध्यात्मिक नियम) है। विश्वास के बारे में बयान करते हुए यह देखना चाहिए कि दो वस्तुएँ होती हैं, एक तो विश्वास और दूसरा मत, जिसका अर्थ यक़ीन (Faith-श्रद्धा) और अक़ीदा [Creed-मत] है।

क्रूसेड [Crusade] अर्थात् ईसाइयों के उस जिहाद (धर्म-युद्ध) का ज़िक्र राम सुनाता है।, जिसमें इंगलैंड का राजा रिचर्ड प्रथम [Richard I] भी सम्मिलित था। जब ईसाई लोग योरुसलम में रहने लगे, तो एक बूढ़ा मनुष्य उनमें से यों बोल उठा कि मैंने जिब्राईल को देखा, जिसने मुझसे यह कहा कि इसी भूमि के नीचे जहाँ हम लोग लड़ रहे हैं वहाँ भाला दबा हुआ है कि जिससे हज़रत मसीह छुए गये थे। अगर वह भाला मिल जाय तो हमारी विजय अवश्य होगी। इसको सुनकर लोगों ने उस भूमि को खोदना आरंभ किया, मगर कोई भाला न मिला। खोदते

खोदते अन्त में एक अत्यन्त जीर्ण भाला भूमि में से निकला। वह लोग उस भाले को ईसा वाला भाला जान कर जी तोड़ कर लड़ने लगे, और अन्त में वह विजयी हुये। मरते समय उस बूढ़े मनुष्य ने पादरी के आगे यह स्वीकार (confession) किया कि "मैंने योरुसलम की लड़ाई में भाले वाली कहानी गढ़ दी थी, जिससे विजय हो।" चाहे कुछ हो, मगर वह बात उस समय काम कर गई। इस कहानी का वह अंश जिससे लोगों के हृदयों में यक़ीन (निश्चय) बढ़ गया, विश्वास (faith) है, और कहानी मत (creed) है। विश्वास की शक्ति ही जीवन है। राम ऊपर के अक़ीदे (मत) पर ज़ोर नहीं देता, वह तो भीतर की आग आप ही में से निकाला चाहता है।

लोग कहते हैं कि युरोप के बड़े बड़े लोग नास्तिक हैं। ब्रैडला (Bradlaw) और हरबर्ट स्पेंसर (Herbert Spencer) यद्यपि ईसाइयों और मुसलमानों या और धर्मवालों के ख़ुदा को नहीं मानते थे, मगर उनमें यक़ीन और विश्वास अवश्य था और उन लोगों के चाल-चलन आप लोगों के पण्डितों, धार्मिक उपदेशकों और व्याख्याताओं से कहीं श्रेष्ठ थे।

ब्रैडला यद्यपि रामायण नहीं जानता था, मगर उसका हृदय प्रेम से भरा था। आप के धार्मिक लोग अपने प्रेम को किसी मत विशेष या देश में ही परिच्छिन्न कर देते हैं, मगर उसका चित्त इङ्गलिस्तान में ही परिच्छिन्न (घिरा हुआ) न था बल्कि भारत के हित में भी अपना रक्त अर्पण कर रहा था। वह प्रकृति के अटल नियम पर विश्वास रखता था। इसी विश्वास या ईमान की भारतवर्ष को भी आवश्यकता है। यह गाली है कि तुम बे-ईमान हो, अर्थात् तुम्हारा ईमान नहीं है, और ईमान

अदृश्य वस्तु पर विश्वास लाने का नाम है, और यह ही धर्म, विश्वास या इसलाम है, और बिना इसके कोई उन्नति नहीं कर सकता। आर्किमेडज़ (Archamedes) यह कहा करता था कि "If I get a point I shall overturn the whole world". अगर मुझको एक बिंदु (केन्द्र) खड़े होने को मिल जाय, तो मैं संपूर्ण संसार को उलट दूँ।

राम बतलाता है कि वह स्थिर बिंदु तुम्हारे ही पास है। यदि तुम बस आत्मदेव को, जो दूर से दूर और निकट से निकट है जान लो, तो वह कौनसा काम है जिसको तुम नहीं कर सकते।

वह कौन सा उक़दा[1] है जो वॉ[2] हो नहीं सकता,
हिम्मत करे इंसान तो क्या हो नहीं सकता।

इस विश्वास को हृदय में स्थान दो और फिर जो चाहो सो कर लो। क्योंकि अनन्त शक्ति का स्रोत तो तुम्हारे भीतर ही मौजूद है।

हक्सले (Huxley) का कथन है कि अगर तुम्हारी यह तर्कशक्ति और बुद्धि वा विवेकशक्ति घटनाओं के जानने में सहायता नहीं करते तो—

वरीं अक़्लो दानिश ब बयाद् गरीस्त।

अर्थात् इस बुद्धि और विवेक शक्ति पर तुझे रोना चाहिये है।

ऐसे तर्क को बदल दो, अक़्ल को फेंक दो, मगर घटनाओं को आप बदल नहीं सकते।

आत्मा अर्थात् भीतर वाली शक्ति पर विश्वास रक्खो। टिटिहरी के मन में विश्वास आगया। उसने साहस की कमर बाँधी। समुद्र से सामना किया और विजय पाई।

---

१ कठिन ग्रंथि; भेद, २ स्पष्ट हो नहीं सकता।

एक कहानी है कि टिटिहरी के अण्डे-बच्चे समुद्र बहा ले गया। उसने विचार किया कि समुद्र आज मेरे अण्डे बच्चे बहा लेगया, तो कल मेरे और सजातियों के बच्चों को बहा ले जायगा। इससे उत्तम है कि समुद्र का विनाश कर दिया जाय। ऐसा सोच कर समुद्र का जल उन पक्षियों ने अपनी चोंचों से भर भर के बाहर फेंकना आरम्भ किया, और विपत्ति-काल में अपने उत्साह को भङ्ग नहीं किया।

इतने में एक ऋषि जी वहाँ आये और चोंचों से समुद्र का पानी ख़ाली करते देख कर कहा कि यह क्या मूर्खता का काम कर रहे हो, क्या समुद्र को खाली कर सकते हो? क्या अकेला चना भाड़ को फोड़ सकता है? इस मूर्खता के काम को छोड़ो। इस पर उसे टिटिहरी ने उत्तर दिया कि महाराज! आप देवर्षि होकर मुझको ऐसा नास्तिकपने का उपदेश करते हैं? आप हमारे शरीरों को देख रहे हैं; हमारे आत्मबल को नहीं देखते। (यही उत्तर कागभुसुण्ड को महाराज दत्तात्रेय जी ने दिया था और कहा "यार! तुम तो कौवे ही रहे। क्योंकि तुम्हारी दृष्टि सदैव हाड़ और चाम पर जाती है। शरीर तो मैं नहीं हूँ। मैं तो वह हूं जिसका अन्त वेद भी नहीं पा सकते।" आत्मदेव तो वह है जो कभी भी अन्त होने वाला नहीं है।) इस उत्तर को सुन कर ऋषि जी महाराज होश में आये और समुद्र से क्रोध करके बोले कि अरे इसके अण्डे-बच्चे क्यों बहा ले गया? इस पर समुद्र ने झट अण्डे-बच्चे फेंक दिये। और कहा कि मैं तो मख़ौलबाज़ी (परिहास) करता था।

इस क़हानी में अमर और अजर आत्मदेव में यक़ीन का होना तो विश्वास, मज़हब या इसलाम है, बाक़ी सब कहानी,

मत या अक़ीदा है, किन्तु राम तो विश्वास ही को उत्तेजना देता है ; और बात से उसको सरोकार नहीं।

अकेले फ़रहाद ने नहर को काट कर बादशाह के महलों तक पहुँचा दिया। ये सब घटनाएँ हैं। आप उन तसवीरों को देख सकते हैं जो फ़रहाद ने पहाड़ों पर नहर काटते समय बनाई थीं। सिवाय विश्वासवान् पुरुषों के दूसरे का यह काम नहीं। जिसको इस बात का विश्वास है कि मेरे भीतर आत्मा विद्यमान है, तो फिर वह कौन सी ग्रन्थि है जो खुल नहीं सकती? फिर कोई शक्ति ऐसी नहीं जो मेरे विरुद्ध हो सके। सूर्य हाथ बाँधे खड़ा है और चन्द्रमा प्रणाम के लिये शिर झुका रहा है। ज़रा देखिये, अकेले तो रामचन्द्र और उनके साथ एक भाई और सीता जी को समुद्र चीर कर वापस लाना चाहते हैं। क्या यह काम सहज है? नाव नहीं, जहाज़ नहीं, मगर वाह रे साहसी वीर! तेरी सेवा करने को वन के पशु भी उद्यत हैं। बन्दर जैसे चञ्चल पशु भी आप की सेवा में उपस्थित हैं। पक्षी भी आप की सेवा के लिये प्राण-विसर्जन किए देता है। गिलहरियाँ भी चोंच में बालू भर भर कर समुद्र पर पुल बाँधने का प्रयत्न करतीं और मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा करती हैं। अगर हरएक के हृदय में वही श्रद्धा उत्पन्न हो जाय जो राम में थी तो—"कुमरियाँ आशिक़ हैं तेरी सरव बन्दा है तेरा।" वाली अवस्था सब की हो जाय। अगर इस बात का विश्वास नहीं आता कि "मैं वह ही हूँ" तो इसका निश्चय अवश्य होना ही चाहिये कि मेरे भीतर वही है। "जब मेरे भीतर वही है, तो मैं सब का स्वामी हूं और जो चाहूं सो कर सकता हूं"। यह ख़याल बड़ा ज़बरदस्त है। और यह ख़याल हृदय में हर समय रखिये जिससे वह भीतर की शक्ति प्रकट होने लगे। अमेरिका

और इंगलैंड के बहुतेरे अस्पतालों में सरकारी तौर से ऐसी चिकित्साएँ जारी हो गई हैं जिसमें केवल विचार की शक्ति से रोगी अच्छा कर दिया जाता है, और बहुतों ने इस बात की सौगंध खाई है कि हम आयु भर औषधि-सेवन न करेंगे, और अगर कोई बीमारी हो जायगी तो केवल विचार की शक्ति से उसको भगा देंगे। यह शक्ति यक़ीन है, यही विश्वास है।

आज कल की संकल्प विद्या (Will Power) ने इस बात को सिद्ध कर दिया है कि मेज़ की जगह आपको घोड़ी दिखलाई दे। क्या आपने इस कहावत को नहीं सुना कि जेम्स (James) साहब का डाक्टर पाल (Paul) बन गया। हक़ीक़त वही है जो विश्वास की आँखों से दिखाई दे। यदि देखना है तो उस आत्मा को देखो।

एक पिन्सल की कला को देखो जिससे हज़ारों मनुष्य पल रहे हैं, और राष्ट्रीय सम्पत्ति बढ़ रही है। रेल वालों को लाभ, डाकवालों को लाभ। इस कला की हक़ीक़त (वास्तविकता) कहां है? इसके एक छोटे से भीतरी विकार (chemical action) पर है जो दिखाई नहीं देता। भीतर से आत्मा बरावर निर्विकार है।

जापान और अमेरिका की उन्नति का रहस्य उनकी बाहर की संपत्ति और वैभव के देखने से नहीं मालूम होता, वरन् उन देशों के उदय का कारण उनके भीतर का परिवर्तन है। वह क्या है? यक़ीन या विश्वास। सब जातियों और राष्ट्रों की उन्नति का मूल कारण उनकी आत्मा में है, शरीर तो केवल आवरण (ख़ोल) की तरह है।

तेंतीस करोड़ देवी-देवताओं को, चाहे तेंतीस लाख करोड़ देवताओं को भले ही माना करो, परन्तु जब तक तुम में

भीतरी शक्ति जोश न मारेगी, तव तक तुम्हारा कुछ भला न होगा। जिस समय तुम्हारे भीतर का आत्मबल जागेगा, तो सारे देवता भी अपनी सेवा के लिये हाथ जोड़े खड़े पाओगे। अभी तुम उनको मानते हो, फिर वे तुमको मानेंगे।

कुतुब[1] अगर जगह से टले तो टल जाय।
हिमालय, वाद[2] की ठोकर से भी फिसल जाय॥
अगर्चि बह्र[3] भी जुगनू की दुम से जल जाय।
और, आफ़ताब[4] भी क़ब्ले-उरूज[5] ढल जाय॥
कभी न साहबे-हिम्मत का हौसला टूटे।
कभी न भूले से अपनी, जबीं[6] पै बल आए॥

इसी का नाम विश्वास, यक़ीन और परमेश्वर में भरोसा रखना है। जिस हृदय में यह विश्वास है, वह बाहरी वस्तुओं की परवाह नहीं करता। वह घर ही क्या जिसमें दीपक न हो, वह ऊँट ही क्या जो बे नकेल हो, और वह दिल ही क्या जिसमें विश्वास न हो।

कोई प्राणी या मनुष्य ही क्या जिसको ईश्वर, सत् (Truth) का हक़ीक़त में विश्वास न हो। जब विपत्ति आती है, तो बलिदान की आवश्यकता होती है। हिंदू, मुसलमान, यहूदी, ईसाइयों सब में यह बलिदान की प्रथा प्रचलित है। एक बेचारे पशु (बकरे) को काट डाला या अग्नि में डाल दिया और कह दिया, यह बलिदान है। क्या बलिदान इसी का नाम है?—नहीं नहीं। "बिन लौंड़ेके बरात भला किस काम की।" सच्चा बलिदान तो यह है:—

कर नित्य करें तुमरी सेवा, रसना तुमरो गुण गावे।

---

1 ध्रुव। 2 वायु 3 समुद्र। 4 सूर्य। 5 उदय काल से पूर्व। 6 ललाट

प्यारे! बलिदान तो यह है कि सचमुच परमेश्वर के हो जाँय और उसी सचाई के सामने इन संसार के भोगों और इन्द्रियों की कामनाओं (temptations) की कुछ असलियत रहे।

Take my life and let it be
Consecrated Lord, to Thee,
Take my heart and let it be
Full saturated, Love, with Thee,

Take my eyes and let them be
Intoxicated, God, with Thee
Take my hands and let them be
For ever sweating, Truth, for Thee,

प्राण मद्दा प्रभु, स्वीकृत कीजे, निज पद अर्पित होने दीजे,
अन्तःकरण नाथ ले लीजे, निज से उसे प्रेम भर दीजे।
स्वीकृत कीजे नेत्र हमारे, निज से मतवाले कर प्यारे,
लीजे सत् प्रभु हाथ हमारे, सदा करें श्रम हेतु तुम्हारे।

(इस कविता में 'प्रभु' शब्द से आकाश में बैठा हुआ, मेघ-मंडल से परे, जाड़े के मारे सिकुड़ने वाला, अदृश्य ईश्वर से तात्पर्य नहीं है। प्रभु का अर्थ तो है सर्व, अर्थात् समस्त मानव जाति।)

तुम काम किए जाओ, केवल परमेश्वर के निमित्त। खुदी (अभिमान) और ख़ुदग़र्ज़ी (स्वार्थपरता) ज़रा न रहने पावे। यदि तुम अहंता को भी परमेश्वर के निमित्त बलिदान कर दो, अर्थात् अहंभाव को मिटा दो, फिर तो तुम आप में आप मौजूद हो।

लोग कहते हैं कि ऐसी दशा में हमसे काम नहीं हो सकेंगे।

जल-ज्ञान (Hydrology) में एक लैम्प का ज़िक्र आया है जिसका आकार इस प्रकार होता है। कि जिसमें जो हिस्सा नीचे रहता है वह तेल से भरा होता है और ऊपर का (काला) भाग ठोस होता है। ज्यों ज्यों जलने से तेल ख़र्च होता जाता है वह ठोस भाग नीचे को गिरता जाता है, अर्थात् तेल का विशेष गुरुत्व (Specific gravity) ठोस के बराबर होता है।

अब इस उदाहरण में तेल को बाहरी काम काज समझो, और दूसरे आधे अंश को यक़ीन, विश्वास, इसलाम या श्रद्धा कहो।

लोग कहते हैं कि हमको अवकाश नहीं। किंतु जान्सन (Johnson) के कथनानुसार समय तो पर्याप्त है, यदि भली भाँति काम में लाया जाय। "Time also is sufficient if well employed"। क्या यह तुम्हारे हाथ और पैर काम करते हैं?—नहीं, नहीं; वरन् तुम्हारे भीतर का आत्मबल यक़ीन और विश्वास है जो तुम्हारे प्रत्येक नस नाड़ी में गति और तेज तप उत्पन्न कर देता है।

अरे यारो! आत्मदेव को, जो अकाल-मूर्त्ति है, उसको काल अर्थात् समय से बाँधा चाहते हो? इसी का नाम नास्तिकता, या कुफ़्र (Atheism) है। हक्सले (Huxley) नास्तिक नहीं है, जैसा तुम समझे हुए हो। वह कहता है कि मैं ऐसे परमेश्वर को मानता हूँ जिसे स्पाईनोज़ा (Spinoza) ने माना है। और विना सच्चे और भीतर वाले परमेश्वर पर विश्वास लाए हम एक क्षण मात्र भी जीवित नहीं रह सकते।

चू कुफ़्र अज़ काबा बर ख़ेज़द कुजा मानद मुसलमानी।

अर्थात्—यदि स्वयं काबे से ही कुफ़्र (नास्तिकता, अविश्वास) उत्पन्न हो, तो फिर इसलाम का कहाँ ठिकाना।

परमेश्वर तो आपके भीतर है, जो सर्वत्र विद्यमान और सर्व-द्रष्टा है। यदि प्रह्लाद के हृदय में यह विश्वास होता कि ईश्वर कहीं आकाश पर बैठा हुआ है, तो उसकी जिह्वा से कभी ये शब्द न निकलते—

मो में राम, तो में राम, खड्ग-खंभ में व्यापक राम,
जहँ देखो तहँ राम हि राम।

राम तो कहता है कि—"दस्त दरकार और दिल दर यार हो"। अर्थात् हाथों से हो काम और दिल में हो राम।

ऐसे ही पुरुष जब कृष्ण भगवान् के मन्दिर में जाते हैं तो अपनी आँखों से आबदार मोती (अश्रु-बिन्दु) उस मनोहर मूर्ति पर न्योछावर किये बिना नहीं रह सकते; और यदि मसजिद में जा खड़े होते हैं, तो संसार से हाथ धोकर ('वज़ू' करके) नमाज़ मस्ताना (प्रेमोन्मत्त प्रार्थना-भक्तिविह्वल स्तुति) पढ़ने लगते हैं, और यदि वे गिरजे में प्रवेश करते हैं तो पवित्रात्मा के सामने देहभाव को सलीब (सूली) पर चढ़ा देते हैं।

ॐ। ॐ।। ॐ।।।

आत्मकृपा ।

(फ़र्ज़ क़ला)

(भारतवर्ष में दिया हुआ स्वामी रामतीर्थ जी का व्याख्यान)

श्रुति (वेद) का वाक्य है कि "श्रेय और है, प्रेय और है"। फ़र्ज़ (कर्त्तव्य, धर्म) कुछ कहता है, किन्तु ग़र्ज़ (स्वार्थ- कामना) और तरफ़ खींचती है। श्रेय, फ़र्ज़ या ड्यूटी (duty) तो कहते हैं—"दे दो—त्याग"। लेकिन प्रेय या ग़र्ज़ तरग़ीब देती है—"ले लो, यह हमारा हक़ है, अधिकार है, राइट (right) है"। दुनियां में अपने राइट (हक़) या अधिकार पर ज़ोर देना तो साधारण और सुगम है, किन्तु अपने धर्म या फ़र्ज़ को पूरा करने पर ज़ोर देना कठिन और निरस मालूम देता है। वस्तुतः विचार करें तो फ़र्ज़ और ग़र्ज़ में वही सम्बन्ध है जो वृक्ष के बीज को उसके फल के साथ होता है। बड़े आश्चर्य की बात है कि फल तो सब लोग खाना चाहते हैं, किन्तु बीज को बोने और उसके पालन-पोषण के परिश्रम से भागा चाहते हैं। बात तो यूँ है कि जब हम लोग अपनी ड्यूटी (duty) पूरा करने पर ज़ोर देते चले जायँ, तो हमारे राइट हमारे हक़, हमारे अधिकार हमारे पास स्वयं आवेंगे। जब हम लोग केवल अपने अधिकार पर ज़ोर देंगे, अपने राइट, अपने अधिकार फड़कायँगे, तो हम अभागी मुँह तकते ही रह जायँगे, हमारे हक़ भी झूठे हो जायँगे। प्रकृति का नियम ऐसा ही है।

कहा जाता है कि ड्यूटी अर्थात् ऋण चार प्रकार के हैं। पहला ऋण परमेश्वर की तरफ़, दूसरा ऋण मानव-जाति की ओर, तीसरा ऋण देश सेवा का और चौथा

ऋण अपनी ओर। ये सब ऋण अन्त में एक ही ऋण में समा जायँगे। वह एक ऋण क्या है? जो आपका ऋण अपने आप की ओर है। जो लोग अपना ऋण (क़र्ज़) अपने आप को पूरी तरह से अदा कर देते हैं, उनके बाक़ी तीनों ऋण (क़र्ज़) अपने आप अदा हो जाते हैं।

कहा जाता है कि कृपा तीन प्रकार की है:—ईश्वर-कृपा, गुरु-कृपा, और आत्म-कृपा। ईश्वर-कृपा उस पर होती है जिस पर गुरु-कृपा होती है। गुरु-कृपा उस पर होती है जिस पर आत्म-कृपा होती है। देखिये एक लड़का जो स्कूल में पढ़ता है, अगर अपने स्वधर्म के निजी कर्त्तव्य को अच्छी तरह से पूरा न करे, अर्थात् अगर वह आप आत्म-कृपा न करे, तो गुरु-कृपा उस पर न होगी। और जब अपना पाठ अच्छी तरह से याद करे तो गुरु-कृपा उस पर अपने आप होगी, और गुरु-कृपा होने से ईश्वर-कृपा हो ही जाती है।

देश की सेवा वह मनुष्य नहीं कर सकता, जिसने पहले अपनी सेवा नहीं की। जो अपना भी ऋण पूरा नहीं कर सका, वह देश-सेवा क्या ख़ाक करेगा? जिस किसी ने कोई विद्या प्राप्त नहीं की, कोई कला (हुनर) नहीं सीखी, किसी बात में निपुणता प्राप्त नहीं की, किसी कारीगरी या कला-कौशल में कुशलता प्राप्त नहीं की, और दम भरने लगे देश-प्रेमी होने का, तो भला बोलो, उससे क्या बन पड़ेगा? हाँ, इतना ज़रूर है कि जिसके दिल में सच्चाई भर जाय, वह अधूरा पुरुष भी कुछ न कुछ तो देश-सेवा कर सकता है। देश की सेवा तो कोयला भी जल कर और लकड़ी भी कट कर, नाव बन कर, कर सकते हैं। जब लकड़ी या कोयला भी कट या जल कर देश-सेवा कर सकते हैं, तो वह मनुष्य भी, जिसने कोई विद्या या कला नहीं पढ़ी,

देश-सेवा सच्चाई के ज़ोर से कुछ न कुछ क्यों नहीं कर सकता? मगर उसकी सेवा की केवल कोयला और लकड़ी की सेवा से समानता की जा सकती है। इसके साथ सच्चाई भरा मनुष्य प्रवीणता रहित (अधूरा) कैसे कहला सकता है? सच्चाई तो स्वयं प्रवीणता (वा निपुणता) है। वह व्यक्ति जिसने अपना ऋण अपने प्रति कुछ पूरा कर दिया, और अपने तई आध्यात्मिक या बुद्धिमत्ता के बालकपन की अवस्था से आगे बढ़ा दिया, तो समझना कि उसने कुछ नहीं तो एम० ए० या शास्त्री आदि श्रेणी की योग्यता प्राप्त करली। यह व्यक्ति जिस हद (दर्जे) तक आध्यात्मिक या बुद्धि-विषयक बल उत्पन्न कर चुका है, उसी प्रमाण से समाज की गाड़ी को उन्नति की सड़क पर आगे खींच सकता है। यदि ऐसा मनुष्य देश के सुधार का दम न भरे और प्रकट रूप में देश की पूरी सेवा भी न करे, तो भी उसको देख कर और स्मरण करके बहुत से लोग बड़े उत्साह में आ जायँगे कि हम भी एम० ए० पास करें, हम भी योग्यता पैदा करें। यह मनुष्य अपने आचरण से लोगों को उपदेश कर रहा है, और देश के बल को बढ़ा रहा है।

दामन-आलूदा अगर ख़ुद हमः हिकमत गोयद।
अज़ स.ख़ुन गुफ़्तने-ज़ेबायश बदाँ बिह नशवन्द॥
वाँकि पाकीज़ा दिलस्त अर बिनशीनद ख़ामोश,।
हमः अज़ सीरते-साफ़ीश, नसीहत शिनवन्द॥

भावार्थः—दुष्कर्मी अगर स्पष्ट बुद्धिमानी की बातें कहे, उसकी अच्छी अच्छी बातें कहने से बुरे लोग अच्छे न होंगे। और जो पवित्र हृदयवाला अगर चुप भी बैठे, सब लोग उसके उत्तम स्वभाव से उपदेश ले लेंगे।

सर आइज़क न्यूटन, (Sir Issac Newton) जिस को ख़याल भी न था कि मैं स्वदेश और जगत् की सेवा करूँगा,

इस प्रकार विद्या के पीछे दौड़ रहा था कि जिस प्रकार दीपक की ज्वाला (लाट) पर पतंगे। सर आइज़क न्यूटन अपनी तरफ़ जो ऋण है उसको निभाता हुआ, आत्म-कृपा करता हुआ लोकोपकारक साबित हुआ। अगर एक व्यक्ति मैदान में खड़ा होकर दृष्टि फैलावे, तो थोड़ी दूर तक देख सकता है, और कुछ मनुष्यों को अपनी आवाज़ पहुँचा सकता है। किन्तु जब वह ऊँचे मीनार या पर्वत की चोटी पर पहुँच जाता है, तो अपनी आवाज़ चारों ओर बहुत दूर तक पहुँचा सकता है। राम के साथ एक समय कुछ मनुष्य गंगोत्री के पहाड़ पर जा रहे थे। रास्ता भूल गये। झाड़ियों और कांटों से बदन छिल गये। साथियों में से अगर कोई पुकारता तो उसकी आवाज़ दूसरों तक नहीं पहुँच सकती थी, मुश्किल के साथ अन्त में चोटी पर पहुँच कर जब राम ने आवाज़ दी, तब सब आ गये। इसी तरह से जब तक हम स्वयं नीचे गिरे हुए हैं, दूर की आवाज़ सुनाई नहीं देगी। और जब चोटी पर चढ़ कर आवाज़ दें, तो सब के सब सुनेंगे। इस चौकी को जो राम के सामने है, यदि हिलाना चाहें और उसके दूसरी ओर या बीच में हाथ डालें और ज़ोर मारें, तो नहीं हिलेगी, लेकिन नज़दीक से नज़दीक स्थान से हाथ डाल कर हम चौकी को खींच सकते हैं। दुनिया के साथ मनुष्य का सम्बन्ध भी ऐसा ही है।

बनी-आदम अज़ाए-यक दीगरन्द,
कि दर आफ़रीनश ज़ि यक जौहरन्द।

भावार्थः—प्रजापति की सन्तान (मनुष्य) परस्पर एक दूसरे के अङ्ग हैं, क्योंकि उत्पत्ति में मूल कारण एक ही है।

समस्त जगत् को यदि तुम हिलाना चाहते हो, तो दुनिया का वह भाग जो अति समीप है, अर्थात् अपना आप, उस को

हिलाओ। अगर अपने आप को हिला दोगे, तो सारी दुनिया हिल जायगी; न हिले तो हम ज़िम्मेदार। जिस क़दर अपने आप को हिला सकते हो, उसी क़दर दुनिया को हिला सकते हो। कुछ लोग सुधार (reform) के काम में हज़ारों यत्न करते हैं, रात-दिन लगे रहते हैं, तथापि कुछ नहीं हो सकता। और कुछ ऐसे हैं कि उनके जीते जी या मर जाने के पीछे उनकी यादगार में, उनके नाम पर, लोग कालेज बनाते हैं, सभायें स्थापित करते हैं, और सैकड़ों सुधार जारी करते हैं, जैसे बुद्ध, शंकर, नानक, दयानन्द इत्यादि। कारण क्या है? बस यही कि उक्त महात्मा अपने सुधारक आप बने।

यूनान में एक बड़ा गणित-वेत्ता हो गया है, जिसका नाम है आर्कमिडीज़ (Archamedes)। इसका कहना है कि "मैं थोड़ी सी ताक़त से समस्त ब्रह्माण्ड को हिला सकता हूँ, यदि मुझे उसका स्थिर-बिन्दु मिल जाय"। किन्तु उस बेचारे को कोई स्थायी मुकाम (केन्द्र-स्थान) न मिला। प्यारे! वह स्थायी मुक़ाम जिस पर खड़े होकर ब्रह्माण्ड को हिला सकते हो, वह स्थिर-बिन्दु आप का अपना ही आत्मा है, वहाँ जम कर, अपने स्वरूप में स्थित होकर जो संचार (हलचल) और शक्ति उत्पन्न होगी, वह समस्त ब्रह्माण्ड को हिला सकती है।

जब एक जगह की वायु सूर्य की गर्मी लेते लेते पतली होकर ऊपर उड़ जाती है, तो उस की जगह घेरने को स्वतः चारों ओर से वायु चल पड़ती है, और कई बार आँधी भी आ जाती है। इसी तरह जो व्यक्ति स्वयं हिम्मत (दैवी तेज) को लेता लेता ऊपर चढ़ गया, वह स्वाभाविक ही देश में चारों ओर से मतों (सम्प्रदायों) को कई क़दम आगे बढ़ाने का निमित्त कारण हो जाता है।

अब यह दिखलाया जायगा कि क्योंकर अपना ऋण अपने आप की ओर निबाहते हुए हमारा ईश्वर की ओर का ऋण भी पूरा हो जाता है। मुसलमानों के यहां कथा है कि एक कोई सत्य का जिज्ञासु था। ईश्वर को जिज्ञासा में प्रेम का मारा चारों ओर दौड़ता था कि ईश्वर करे कोई ऐसा ब्रह्मनिष्ठ मिल जाय कि जिसके दर्शन से हृदय की आग बुझ जाय, और दिल को ठण्डक पड़े। यूँ हीं तलाश करता हुआ हताश होकर जङ्गल में जा पड़ा कि अब न कुछ खायेंगे न पियेंगे--जान दे देंगे।

बैठे हैं तेरे दर पे तो कुछ करके उठेंगे,
या वस्ल ही हो जायगी या मरके उठेंगे।

अर्थात् तेरे द्वार पर आ बैठे हैं, अब कुछ करके ही उठेंगे। या एकता हो जायगी या प्राण त्याग कर देंगे।

उस समय के पूर्ण ज्ञानी हज़रत जुनैद थे और उस दिन हज़रत जुनैद दजला नदी में घोड़े को पानी पिलाने जा रहे थे। घोड़ा अड़ता था। दजला की तरफ़ नहीं जाता था। घोड़े को अड़ता हुआ और बिगड़ा हुआ सा देख कर जुनैद ने जाना कि इसमें भी कोई भलाई होगी। आख़िर घोड़े के साथ ज़िद छोड़ दी और कहाः--"चल जहाँ चलता है, चारों ओर मेरे ही ख़ुदा का मुल्क तो है, सब मेरा ही देश है"। घोड़ा दौड़ता हुआ उस जंगल में, ख़ास उसी स्थान पर आ पहुँचा, जहाँ वह बेचारा सच्चा जिज्ञासु प्रेम का मतवाला, इश्क़ का जला हुआ, परमेश्वर का भूखा प्यासा पड़ा था। जुनैद घोड़े से उतर कर उस जिज्ञासु के पास आकर हाल पूँछने लगे। और थोड़े ही सत्संग से वह परमात्मा का सच्चा जिज्ञासु माला-माल होगया। जब जुनैद जाने लगे, तो उस प्यारे से कहा कि "अगर फिर कभी क़ब्ज़ (आत्मिक अजीर्ण) हो जाय और

तुझे ब्रह्मनिष्ठ गुरु की ज़रूरत हो, तो बग़दाद में आ जाना। मेरा नाम जुनैद है, किसी से पूछ लेना"। उस मस्त ने जवाब दिया, कि क्या अब मैं हुज़ूर के पास गया था? मुझे अब भेद मालूम हो गया। अब मैं आने जाने का कहीं नहीं। अगर आयन्दा ज़रूरत होगी, तो अब की तरह फिर भी चाहे हुज़ूर ख़ुद, चाहे और कोई गरदन से पकड़े हुये घसीटते-घसीटते आवेंगे।

असर है जज़्बे-उल्फ़त में तो खिंचकर आ ही जायँगे।
हमें परवाह नहीं हमसे अगर वह तन के बैठे हैं।

अर्थात् प्रेमाकर्षण में यदि कुछ प्रभाव है, तो आप ही खिंच कर आ जायँगे। इस बात की परवाह नहीं कि आप तन कर दूर बैठे हैं।

वाह रे आत्म-सत्ता का रसायन!

बेहूदह चरा दर पये ओ मे गरदी,
बिनशीं अगर ओ ख़ुदास्त ख़ुद मी आयद।

* * *

इश्क़े-अव्वल दर दिल-माशूक़ पैदा मे शवद,
ता न सोज़द शमा कै परवानह शैदा मे शवद।

* * *

गिर्दे-ख़ुद गरद ग़नी चन्द कुनी तौफ़े-हरम,
रहबरे-नेस्त दरीं राह बिह अज़ क़िबलानुमा,

भावार्थ—उस (ईश्वर) के लिये तू व्यर्थ क्यों घूमता फिरता है? बैठ, अगर वह ख़ुदा है, तो ख़ुद आयेगा।

प्रिया के हृदय में प्रथम प्रेम उत्पन्न होता है। जब तक दीपक न जले, पतंग उस पर मोहित कब हो सकता है?

ऐ ग़नी (कवि का उप नाम)! अपने गिर्द तू घूम, काबे की परिक्रमा तू कब तक करेगा? क्योंकि इस मार्ग में इस क़िबलानुमा (पूज्यात्मा) के अतिरिक्त और कोई अन्य पथदर्शक नहीं है।

यह है आत्म-कृपा का बल।

"यह हमारे भाग्य में नहीं था", "यह हमारी क़िस्मत में नहीं था", "ईश्वर की इच्छा", "आज कल गुरु नहीं मिल सकता", "अच्छा सत्संग नहीं", "दुनिया बड़ी ख़राब है", इत्यादि ऐसे ऐसे वचन हमारे अन्तःकरण की मलिनता और कायरता के कारण से हैं।

> कैसे गिले रकीब के क्या ताने-अक़रबा,
> तेरा ही दिल न चाहे तो बातें हज़ार हैं।

अर्थात् विरोधियों की शिकायतें कैसी? और संबंधियों के उलहने क्या? जब अपना ही चित्त न चाहे, तो हज़ार बहाने हो जाते हैं।

आपने बीसियों कथायें सुनी होंगी, कि किस किस तरह से ध्रुव, प्रह्लाद, और अभिमन्यु इत्यादि छोटे छोटे बालकों ने परमेश्वर को बुलाया, प्रकट कर लिया। एक ज़रा सा लड़का नामदेव अपने नाना को ठाकुर पूजन करते हुए देखा करता था। उसके मन में आने लगा कि मैं भी पूजा करूँगा। चुपके-चुपके "ठाकुरजी ठाकुरजी" जपा करता था। उसकी दृष्टि में शालिग्राम की प्रतिमा सच्चे ठाकुरजी थे। जब उसका दाँव लगता, शालिग्राम की मूर्ति के पास आकर बड़ी श्रद्धा से कहा करता था "ठाकुरजी! भात!" मगर उसे ठाकुरजी को स्नान कराने और पूजा करने की आज्ञा उसका नाना नहीं देता था। एक दिन उसके नाना को कहीं बाहर जाना था, और बिल्ली के भागों छीका टूटा। लड़के ने नाना से कहा "अब तो तुम जाते ही हो, तुम्हारे पीछे मैं ही ठाकुर पूजन करूँगा"। उसने कहा "अच्छा तू ही करना। लेकन तू तो प्रातःकाल बिना हाथ मुँह धोये रोटी मांगता है, तेरा जैसा नादान पूजन क्या करेगा?

अगर पूजन किया चाहता है, तो पहले ठाकुरजी को खिलाना और फिर स्वयं खाना"। ख़ैर, नानाजी तो इतना कह कर चले गये। रात को मारे प्रेम के बालक को नींद न आई। बच्चा उठ कर अपनी माता से कहता था "प्रातःकाल कब होगा? ठाकुर जी का पूजन कब करूँगा?" प्रातःकाल होते ही बच्चा गंगा जी पर स्नान के लिये गया, और स्नान के बाद उसकी माता ने ठाकुरजी के सिंहासन को उतार कर नीचे रख दिया, और बच्चे ने मूर्ति को निकाल कर गंगाजल के लोटे में झट डुबो दिया। फिर सिंहासन पर बैठा कर माता से दूध मांगने लगा कि "जल्दी दूध ला, जल्दी दूध ला, ठाकुरजी स्नान करके बैठे हैं और उनको भूख लगी है"। उसकी माता दूध का कटोरा लाई। बालक ने ठाकुरजी के आगे दूध रख दिया, और कहने लगा "महाराज पीजिये, दूध पीजिये।" उस परमात्मा ने दूध नहीं पिया। लड़का आँखें बन्द करके धीरे धीरे ओंठ हिलाने लगा और मुँह से 'राम राम' या 'ठाकुर ठाकुर' का नाम बड़-बड़ाने लगा, इस विचार से कि मेरी इस भक्ति से प्रसन्न होकर तो ठाकुरजी ज़रूर दूध पीलेंगे। किन्तु बीच-बीच में आँखें खोल खोल कर देखता जाता था कि ठाकुरजी दूध पीने लगे या नहीं। बहुतेरा मंत्र पढ़ कर मुँह हिलाया, 'राम राम' 'ठाकुर ठाकुर' कहा, मगर दूध ठाकुर जी ने नहीं पिया। अन्त में दिक़ होकर बेचारा बालक नामदेव मारे भूख, प्यास, रात की थका-वट, और निराशा के रोने लगा। ठंडी लम्बी सांस आने लगी। रोम खड़े हो गये। गला रुकने लगा। हिचकियों का तार बंध गया। ओंठ सूख गये। हाय! अरे ठाकुर! आज तेरा दिल पत्थर का क्यों हो रहा है? क्यों नन्हें बच्चे की ख़ातिर दूध नहीं पीता? ऐसे भोले भाले बच्चे से भी कोई ज़िद करता है?

सीमीं बरी तो जानां लेकिन दिले तो संगस्त,
दर सीम संग पिनहां दीदम न दीदा बूदम।

भावार्थः—ऐ प्यारे! तू है तो चाँदी के बदन वाला, लेकिन दिल तेरा पत्थर है। मैंने चाँदी में पत्थर छिपा हुआ पहिले कभी न देखा था, पर अब देखा।

हाय! चाँदी के बदन में पत्थर का दिल कहां से आ गया? बेचारा बच्चा रोता हुआ निढाल हो रहा है। आँखों से नदियाँ बहने लगीं। रोते-रोते मूर्छा आ गई। लोगों ने गुलाब छिड़का। जब होश आया, लोगों ने समझाना चाहा कि "बस! अब तुम पी लो, ठाकुर जी नहीं पिया करते, वह केवल वासना के भूखे हैं।" बच्चे में अभी यह अक़्ल (बुद्धि) नहीं आई थी कि परमेश्वर को भी झुठला ले। ठाकुर जी को धोखा देना नहीं सीखा था। वह नहीं जानता था कि झूठ मूठ भोग लगाया जाता है। बच्चा तो सच्चा था। सदाक़त (सच्चाई) का पुतला था। मचल कर चिल्लाया कि अगर ठाकुरजी दूध नहीं पीते, तो खाने पीने या जीने की परवाह हमको भी नहीं।

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः॥ (मुण्डक उप०)

"यह आत्मा बलहीन पुरुष को कभी प्राप्त नहीं होता"। हाय! नन्हे से नामदेव! तुझ में किस क़दर ज़ोर है? कैसा आत्मबल है? इस नन्हें से बच्चे ने वह ज़िद जो बांधी, तो एक लम्बा सा छुरा निकाल लाया और अपने गले पर रख कर बोला— "ठाकुर जी पियो, ठाकुर जी दूध पियो, नहीं तो मैं नहीं"। छुरा चल रहा था, गला कटने को था, इतने में क्या देखते हैं कि ठाकुर जी एक दम मूर्त्तिमान होकर (प्रत्यक्ष हो कर) दूध पीने लगे।

आप लोग कहेंगे कि यह गप है। राम कहता है कि आप

लोगों का विश्वास कहां गया? राम अमेरिका में रह कर कालिजों में, अस्पतालों में, अपनी आँखों से ऐसे दृश्य देख आया है कि विश्वास की प्रेरणा (बल) से इस चौकी को जो आपके सामने है, घोड़ा दिखा सकते हैं। मनो-विज्ञान के अनुभव इस प्रकार के प्रयोग को खुल्लमखुल्ला सच्चे सिद्ध कर रहे हैं; तो क्या सच्चे निष्पाप, पूर्ण भक्त बेचारे नामदेव के विश्वास का बल ठाकुर जी को मूर्त्तिमान नहीं कर सकता था? परमेश्वर तो सर्वव्यापी है, परन्तु आत्मकृपा अर्थात् पूर्णविश्वास वह वस्तु है जिस के प्रभाव से परमेश्वर सातवें—नहीं नहीं—चौदहवें आकाश से, बिहिश्त से, हज़ारवें स्वर्ग से, वैकुण्ठ से, गोलोक से, इससे भी परे से अर्थात् जहां भी हो वहां से खिंचकर आ सकता है।

थामे हुए कलेजे को आओगे आप से,
मानोगे जज़्बे-दिल में भला क्यों असर नहीं।

वह कौन सा उक़्दा है जो वा हो नहीं सकता,
हिम्मत करे इन्सान तो क्या हो नहीं सकता।

कीड़ा ज़रा सा और वह पत्थर में घर करे,
इन्साँ वह क्या जो न दिले-दिलबर में घर करे।

ऐ मनुष्य! तुम्हारे अन्दर वह महान् धन और अनन्त शक्ति है कि उस का नियमित विकाश (आविर्भाव) ही देश, जगत् और परमात्मा तक को प्रसन्न करता है। ऐ नववसन्त के पुष्प! तू अपनी जात (स्वरूप) में प्रसन्न तो हो। इस निज का ऋण पूरा करने में तेरे बाक़ी सब ऋण पूरे हो जायँगे। पशु, मनुष्य और वायु तक सब ख़ुश हो जायँगे।

तो खुशी तो ख़ूबी-ओ-काने-ख़ुशी,
तो चिरा .खुद मिन्नते—वादाकशी।

भावार्थ—तू स्वयं आनन्द है, तू सुन्दर स्वरूप है, और तू आनन्द की कान है, फिर तू सुरा का उपकार अपने ऊपर क्यों लादता है?

अपना ऋण पूरा करने के साधन।

स्काटलैंड के एक अनाथालय में एक लड़का पलता था। बहुधा बच्चों के नियमानुसार यह बच्चा खिलाड़ी और नटखट भी था। एक दिन वह उस अनाथालय से भाग निकला, और रास्ते के ग्रामों में रोटियां मांग मांग कर गुज़ारा करते हुए लन्दन आ पहुँचा। वहां के सबसे अधिक संपत्तिवान् लार्ड मेयर (Mayor) के बाग़ में घूमने लगा। (लार्ड मेयर बहुधा ऐसे धनवान् होते हैं जिनसे अमीर लोग, राजा लोग और बादशाह लोग भी ज़रूरत के समय .क़र्ज़ लिया करते हैं)। यह ग़रीब बच्चा बाग़ में टहल रहा था। एक बिल्ली को उसने दौड़ते पाया। उसके साथ वह खेलने लगा और निरर्थक बातें करने लगा। उस की पीठ पर हाथ फेरता था, पूँछ खींचता था, और लड़कपन के तरंग में बिल्ली से छेड़खानी करता था। पड़ोस में गिर्जे का घड़ियाल बज रहा था। बच्चा बिल्ली से पूँछता था, "यह पागल घड़ियाल क्या बकता है?" कहो। (पागल इस लिये कि घड़ियाल बहुधा कोई चार बजा कर बन्द हो जाता है, कोई आठ, हद बारह बजा कर तो अकसर रुक जाते हैं, मगर गिर्जे का घड़ियाल बजता ही चला जाता है। पागल की तरह बन्द होता ही नज़र नहीं आता)। बिल्ली बेचारी तो घड़ियाल की आवाज़ को क्या समझती? लड़का बिल्ली की तरफ़ से .खुद ही जवाब देता था "टन, टन, टन, ह्विट्टिंगटन, ह्विट्टिंगटन," (ह्विटिंगटन उस लड़के का नाम था)। घड़ियाल

कहता है "टन, टन, टन, ह्विट्टिंगटन, ह्विट्टिंगटन, लार्ड मेयर आफ़ लन्दन"। ज़रा ख़याल कीजियेगा, अनाथालय से भाग कर आया हुआ तो छोटा सा बालक और अपने स्वप्न कहाँ तक दौड़ा रहा है! घड़ियाल की आवाज़ में भी अपने लार्ड मेयर होने के गीत सुन रहा है। वाह! "टन, टन, टन, ह्विट्टिंगटन, ह्विट्टिंगटन, लार्ड मेयर आफ़ लन्दन"।

इतने में लार्ड मेयर साहब अपने बाग़ में हवाख़ोरी करते वहां आ निकले। बालक से पूछा–"अरे तू कौन है? और क्या बकता है?" लड़का मस्ती और आनन्दभरा जवाब देता है:— "लार्ड मेयर आफ लन्दन, लार्ड मेयर आफ लन्दन"। बच्चे पर गुस्सा तो क्या आता, उलटी लड़के की वह स्वतंत्र अवस्था लार्ड मेयर के हृदय में खप गई। और स्वाधीनता किस दिल को प्यारी नहीं लगती? लार्ड मेयर ने पूछा, "स्कूल में दाख़िल (प्रवेश) होना चाहता है?" बच्चे ने जवाब दिया? "अगर शिक्षक मारा न करे तो?" वह लड़का स्कूल में दाख़िल कराया गया। स्कूल में पढ़ते पढ़ते फिर क्रम से कालेज की सब श्रेणियाँ को पास करके सन्मान पूर्वक ग्रेजुयेट हो गया। इतने में लार्ड मेयर के मरने का दिन आगया। उसके कोई संतति न थी। लार्ड मेयर अपनी संपत्ति का बहुत सा भाग इस लड़के को दे मरा। यह बालक इस संपत्ति को बढ़ाते बढ़ाते एक दिन ख़ुद लार्ड मेयर आफ़ लन्दन हो ही गया। आप लार्ड मेयर की नामावली में इसका नाम पायेंगे।

यह दुनियां और इसका आपके साथ वर्ताव, आपकी हिम्मत, और मनोभाव का जवाब है। ह्विट्टिंगटन का बच्चेपन में अपूर्व उत्साह था और उसके दिल के भाव सच्चे और ऊँचे थे। इसको वैसा ही फल क्यों न मिलता? जैसी मति वैसी गति होती है—

"या मतिर्सागतिर्भवेत्"—जैसा दिल में भरोगे वैसा पाओगे। जैसा अपने विचारभूमि में बोवोगे, वैसा काटोगे।

चीन में एक विद्यार्थी बहुत ही गरीब था। रात को पढ़ने के लिये उसे तेल भी प्राप्त न होता था। जुगनू को इकट्ठा करके एक पतले मलमल के कपड़े में बांधकर किताब के ऊपर रख लिया करता और उसकी चमक में पढ़ा करता था। किसी ने कहा कि "इतना परिश्रम क्यों करता है, क्या चीन का वज़ीर हो जायगा?" उसने उत्तर दिया कि "यदि विचारबल के विषय में प्रकृति के नियम सच्चे हैं, तो एक दिन मैं अवश्य वज़ीर हो जाऊँगा"। चीन के इतिहास में देखिये कि एक वह दिन आया कि यही लड़का वज़ीर बन गया।

'तज़किरा आबे-हयात' नाम की पुस्तक में प्रोफ़ेसर आज़ाद ने एक आश्चर्यमय घटना लिखी है। एक दिन लखनऊ में एक शायर (कवि) नवाब साहब, और उनके दीवान व मुसाहिबों (साथियों) को अपने शेरों (कविता) से प्रसन्न कर रहा था। महल में नवाब साहब विलम्ब से पहुँचे। बेगमों ने पूछा कि विलम्ब क्यों हुआ। नवाब साहब ने फ़रमाया कि अद्भुत चुटकुले और शेर व सख़ुन सुनते रहे। बेगमों ने कहा कि हमको भी सुनवाइयेगा। दूसरे दिन परदा किया गया, और शायर को बुलवाया गया। बेगमें बहुत ही प्रसन्न हुईं और आज्ञा दी कि महल में एक कमरा इसको रहने के लिये दिया जाय। शायर (कवि) भाँप (ताड़) गया कि अगर मैं महल में रहूँगा तो इस विचार से कि मैं बेगमों को देख सकूँगा, नवाब साहब को अच्छा नहीं लगेगा। नवाब साहब को सोच में देख कर शायर ने खुद शिकायत की कि "और तो मैं सब बातों में अच्छा हूँ, मगर केवल एक ही बात की कसर है, मुझ को बिलकुल दिख-

लाई नहीं देता। आँखों से बेकार हूँ।" शायर की यह शिकायत सफल हुई, बहाना ठीक उतरा, और नवाब साहब के दिल में जो खटका था वह दूर हो गया, और आज्ञा दे दी कि महल में एक कमरा इसे रहने को दिया जाय। मगर (मलिन-चित्त) शायर झूठ मूठ यह धोखा दे रहा था कि मैं अन्धा हूँ। दिल में यह बुरी नियत भरी थी कि इस बहाने से बेखटके बेगमों और औरतों को पड़ा झाँकूँ। परन्तु धोखा तो अन्त में अपने आप के सिवा और किसी को भी देना सम्भव नहीं, और बुराई में सफलता तो मानो विष भरी मदिरा है।

एक दिन शायर शौच जाना चाहता था। दासी से पानी का लोटा माँगा। उसने कहा "कमरे में लोटा नहीं है, कहाँ से लाऊँ?" (यह साधारण नियम है कि नौकर लोग ऐसे महमानो से दिक् आ जाते हैं)। शायर को जल्दी लगी थी, रहा न गया, सहज बोल उठा "देखती नहीं है, वह क्या लोटा पड़ा हुआ है?" सत्य भला कहाँ तक छुपे। यह सुनते ही दासी भागी और बेगम साहबा के पास पहुँच कर कहा कि "यह मुआ तो देखता है, अन्धा नहीं है। अपने तईं झूठ मूठ अन्धा बताता है"। उसी दिन वह महल से निकाल दिया गया। परन्तु कहते हैं कि दूसरे ही दिन वह सचमुच अन्धा हो गया। कैसा उपदेश-जनक दृष्टान्त है। जैसा तुम कहोगे और विचार करोगे, वैसा ही होना पड़ेगा।

> गर दर दिले-तो गुल गुज़रद गुल बाशी,
> वर बुलबुले-बेक़रार, बुलबुल बाशी।
> सौदाये-बला रंजो-बला मी आरद,
> अन्देशये-कुल पेशाकुनी कुलबाशी।

भावार्थः—अगर तेरे दिल में पुष्प (शुभ विचार) गुज़रेगा तो तू

पुष्प (शुभ चित्त) हो जायगा। और यदि अशान्त चित्त बुलबुल, तो तू बुलबुल (अशान्त चित्त) हो जायगा। बला का ख़फ़क़ान (विपत्ति का निरन्तर सोच) बला और रंज लाता है, और जब तू सब के हित का फ़िक्र करेगा, तो तू सर्वमय हो जायगा।

बाल्यावस्था में बहुधा देखा होगा कि कुछ बालक आँखें बन्द करके अन्धे होकर उलटे चला करते हैं। उनकी मातायें यह देख कर उनको मारती हैं और रोका करती हैं कि अच्छी अच्छी मुरादें माँगो। अन्धों के स्वाँग भरते हो, कहीं अन्धे ही न हो जाओ। सच कहा है:—

कृष्ण, कृष्ण मैं करती थी, तो मैं ही कृष्ण हो गई। (मीरा०)

आपने देख लिया, अन्धा कहने से अन्धा, वज़ीर के ध्यान से वज़ीर, लार्ड मेयर के ख़याल से लार्ड मेयर बन जाते हैं। पस अपनी मदद आप करने के लिये, अपनी तरफ़ अपना ऋण आप चुकाने के लिये सब से आवश्यक बात आप लोगों के लिये है विचारों की पवित्रता, उत्साह की वृद्धि, शुभ संस्कार, निर्मल भाव और "मैं सब कुछ कर सकता हूं" ऐसा उच्च विचार, निरंतर उद्योग और धैर्य।

गर बफ़र्क़- मा निहद सद कोहे—मेहनत रोज़गार।
चीने-पेशानी न बीनद गोशये-अब्रूये- मा।

भावार्थ—यदि समय हमारे सिर पर परिश्रम के सैकड़ों पर्वत रख देवे, तो भी हमारी भौं [भ्रू] का कोना हमारे माथे के बल को नहीं देखेगा, अर्थात् हमारे माथे पर बल नहीं पड़ेगा।

अगर्चि कुतब[1] जगह से टले तो टल जाये,
हिमालय बाद[2] की ठोकर से गो फिसल जाये,

१—ध्रुव। २—वायु।

अगर्चि बहर[1] भी जुगनू की दुम से जल जाये,
और आफ़ताब[2] भी क़बले-अरूज[3] ढल जाये,
कभी न साहबे-हिम्मत का हौसला टूटे,
कभी न भूले से अपनी जबीं[4] पै बल आये।

उच्च शूरवीरता और उन्नत विचार का आप यह अर्थ न समझ लें कि अपने तईं तो तीसमारखां ठान लें और दूसरों को तुच्छ मानने लगें। कदापि नहीं। बल्कि अपने तईं नेक और बड़ा बनाने के लिये औरों की केवल नेकी और बड़ाई ही को दिल में स्थान देना उचित है। बुद्ध भगवान् कहा करते थे:—जैसा कोई ख़याल करेगा वैसा हो जायगा। उनके पास दो मनुष्य आये। एकने पूछा कि "महाराज यह जो मेरा साथी है दूसरे जन्म में इसका क्या हाल होगा? यह तो कुत्ते के ख़याल रखता है, कुत्ते से कर्म करता है, क्या अगले जन्म में कुत्ता न बनेगा?"। दूसरा पहले के विषय में कहता है कि "यह मेरा साथी हर बात में बिल्ला है, क्या अगले जन्म में यह बिल्ला न होगा?"। महात्मा बोले कि "भाई, जैसे संस्कार (ख़याल) होंगे, वैसे ही तुमको फल मिलेंगे। लेकिन तुम लोग इस सिद्धान्त को ग़लती से लगा रहे हो। वह तुमको बिल्ला कह रहा है, तुम उसको कुत्ता।" अब विचार करना, वह मनुष्य जो अपने साथी को कुत्ता देखता है, उसका अपना दिल कुत्ते की सूरत पकड़ रहा है। वह ख़ुद ऐसे ख़याल से कुत्ते के संस्कार धारण करता जाता है। पस जब ऐसा मनुष्य मरेगा तो उसके अन्तःकरण में कुत्ता समा रहा है, अतएव वह स्वयं कुत्ता बनेगा। और इसी तरह अपने पड़ोसी को बिल्ला समझने वाला ख़ुद

१—समुद्र। २—सूर्य। ३—उदय काल से पूर्व। ४—मस्तक (पेशानी)।

बिल्ला बनेगा। इस सिद्धान्त को विचार से देखना। वह दोष जो हम औरों में लगाते हैं, वह हम में ज़रूर प्रवेश होंगे। राम कहता है कि अपनी मदद आप करने के लिये आत्मकृपा इस बात की इच्छुक है, कि हम लोग औरों के छिद्र निकालना छोड़ दें, और अपने सम्बन्ध में भी विचार के समय सिवाय नेकी और ख़ूबी के और कुछ विचार न आने दें। जैसे गुम्बज से हमारी ही आवाज़ लौट कर आती हुई गूँज बन जाती है, वैसे ही इस गुम्बज़े-नीलोफ़री (आकाश-मंडल) के नीचे हमारे ही संस्कार लौट कर असर करते हुए प्रारब्ध कहलाते हैं।

बदे[1] न बोले ज़ेरे[2]-गरदूँ गर कोई मेरी सुने,
है यह गुम्बज़ की सदा[3] जैसी कहे वैसी सुने।

अपने विचारों को ठीक रक्खो। व्यर्थ आकाश को कुमार्गी (कुढँगा) और चर्ख़ (द्यौ) को टेढ़े चलनवाला कहना बच्चों की तरह गुम्बज़ को दोष लगाना है। अगर सब कुछ कहीं बाहर ही की प्रारब्ध से होता, तो शास्त्र विधि-निषेध के वाक्य को जगह न देता। जब शास्त्र यह जानता था कि तुम्हारे स्वाधीन कुछ नहीं है, सब कुछ प्रारब्ध ही है, तो शास्त्र ने क्यों कहा कि "यूँ करो और यूं न करो", और तुम पर जवाब-देही (उत्तरदायित्व) किस दलील से लगाई गई?

दरम्याने-क़ारे-दर्या तख़्त-बन्दम करदई।
बाज़ मी गोई कि दामन तर मकुन हुशियार बाश॥

अर्थात् नदी के भारी वेग के बीच तूने मुझे तख़्ते से बाँध कर मंझधार में डाल दिया है और उस पर तू यह कहता है कि ख़बरदार अपना पल्ला मत भिगोना।

१—बुराई। २—आकाश तले। ३—आवाज़।

तुम्हारे अन्दर वह शक्ति है, कि जो चाहो कर सकते हो। और सच पूछते हो, तो राम कहता है:—

मैं ने माना दहर[1] को हक़[2] ने किया पैदा वले,[3]

मैं वह ख़ॉलिक़[4] हूँ मेरी कुन[5] से ख़ुदा पैदा हुआ।

अर्थात् मैंने माना कि ईश्वर ने संसार को रचा, परन्तु मैं वह सृष्टि कर्त्ता हूँ कि जिसके कह देने से स्वयं ईश्वर उत्पन्न हुआ है।

पौरुषा दृश्यते सिद्धिःपौरुषाद्धीमतां क्रमः।

दैवमाश्वासना मात्रं दुःख केवल बुद्धिषु॥

अर्थात्—पुरुषार्थ से सिद्धि होती है, और बुद्धिमानो का व्यवहार पुरुषार्थ से ही चलता है। दैवयोग (प्रारब्ध) का शब्द तो बुद्धिमानों में दुःख के समय कोमल चित्त पुरुषों के केवल आँसू पोछने के लिये है।

ॐ। ॐ।। ॐ।।।

परमेश्वर उनकी सहायता करने को हाज़िर खड़ा है जो अपनी सहायता आप करने को तैय्यार हों (God helps those who help themselves)। यह एक ईश्वरीय नियम वा क़ानूने-क़ुदरत है। प्रकृति का यह अटल नियम है कि जब मनुष्य पूरा अधिकारी होगा, तो जो उसका अधिकार हैं अपने आप उसको ढूँढ़ लेगा। यहां आग जल रही है। प्राणवायु (oxygen) खिच कर उसके पास आ जायगी। अंग्रेज़ी में एक कहावत है कि "पहले तुम योग्य वा अधिकारी बनो, फिर इच्छा करो–First deserve and then desire"। राम कहता है कि जब तुम योग्य वा अधिकारी होगे, तो इच्छा किये बिना ही मुराद आ मिलेगी।

१—संसार काल, समय। २—ईश्वर। ३—किन्तु ४—प्रजापति। ५—कहने, आज्ञा।

बांधे हुए हाथों को बउम्मेदे-इजाबत,
रहते हैं खड़े सैकड़ों मज़मूँ मेरे आगे।

अर्थात्ः—स्वीकृति की आशा से सैकड़ों विषय मेरे आगे हाथ बाँधे खड़े रहते हैं।

"जो पत्थर दीवार में लगने के लायक़ है, वह बाज़ार में कब रहने पायगा—The stone that is fit for the wall cannot be found in the way"। जब आप पूरे अधिकारी होंगे, तो आपके योग्य पदवी है और आप हैं। पदवी की तलाश में समय मत नाश करो। अपने तईं योग्य वा अधिकारी बनाने की फ़िक्र करो।

नाख़ुने-ख़ार आके ख़ुद उक़दा तेरा कर देगा वा,
पहिले पाये-शौक़ में पैदा कोई छाला तो हो।

अर्थात्ः—कांटे का नाख़ून अपने आप आकर तेरे हृदय की गाँठ खोल देगा, पर पहले जिज्ञासा रूपी चरणों में कोई छाला तो हो।

जब सूर्य की ओर मुँह करके चलते हो, तो साया पीछे भागता फिरता है, जब साया को पकड़ने दौड़ोगे, तो साया आगे भागता चला जायगा।

भागती फ़िरती थी दुनियां जब तलब करते थे हम,
अब जो नफ़रत हमने की, वह बेक़रार आने को है।

अर्थात् दुनिया को जब हम चाहते थे, तो दुनिया हमसे परे हटती जाती थी, जब हमने स्वयं दुनिया से नफ़रत वा उदासीनता करली तो अब दुनिया हमारे पीछे लगने में विवश है।

* * * * *

गुज़श्तम् अज़ सरे-मतलब तमाम शुद मतलब,
नक़ाबे-चिहरा-ए-मक़सूद बूद मतलब हा।

अर्थात् जब मैं इच्छाओं से परे गया, तो इच्छायें स्वतः पूरी हो गईं।

बहुत सी इच्छाओं में वास्तविक स्वरूप का मुख ढका हुआ था अथवा बहुत सी इच्छायें वास्तविक स्वरूप के मुख का पर्दा बनी हुई थी।

भिखमङ्गों को हर कोई दूर दूर करता है, तृप्तात्मा के पास मुरादें स्वयं नमस्कार करने अर्थात् झुकने को आती हैं।

सौ बार गर्ज़ होवे तो धो धो पियें क़दम,
क्यों चर्ख़¹-मेहरो-माह² पे मायल हुआ है तू।

जापान में तीन तीन सौ चार चार सौ साल के पुराने चीढ़ और देवदार के वृक्ष देखे, जो केवल एक एक बालिश्त के बराबर या कुछ अधिक ऊँचे थे। आप ख़याल करें कि देवदार के वृक्ष कितने बड़े होते हैं। मगर कौन इन वृक्षों को सदियों तक बढ़ने से रोक देता है। पूछने पर लोगों ने कहा कि हम इन वृक्षों के पत्तों और शाखाओं को बिलकुल नहीं छेड़ते, किन्तु जड़ें काटते रहते हैं, नीचे बढ़ने नहीं देते। और यह नियम है कि जब जड़ नीचे नहीं जायगी तो वृक्ष ऊपर नहीं बढ़ेगा। ऊपर और नीचे (या अन्दर और बाहर) दोनों में इस प्रकार का सम्बन्ध है कि जो लोग ऊपर बढ़ना चाहते हैं, दुनियां में फलना फूलना चाहते हैं, उन्हें नीचे अर्थात् अपने भीतर अंतरात्मा में जड़ें बढ़ानी चाहियें। अन्दर अगर जड़ें न बढ़ेंगी, तो वृक्ष ऊपर भी न फैलेगा।

नफ़स व नै चो फ़िरो शुद बलन्द मी गरदद,

अर्थात् बांसुरी में जितनी सांस नीचे उतरती है, उतना शब्द ऊँचे होता है।

मन्सूर से पूछी किसी ने कूचाये-दिलबर³ की राह;
चुभ साफ दिल में राह बतलाती ज़ुबाने-दार⁴ है।

* * * * *

१-चरख। २-आकाश, सूर्य, और चन्द्र। ३-प्रियात्मा की गली का रास्ता। ४-सूली की नोक।

सर हमचो तारे-सुवह बसद दुर कशीदायेम,
आख़िर रसीदायेम व ख़ुद आरमीदायेम।

अर्थात् माला के डोरे के समान हमने अपने सिर को सौ दानों के अन्दर पुरोया। अन्त में जब अपने तक पहुँचे तो वहीं शान्ति मिली।

आत्म-कृपा (अपने आपकी ओर फ़र्ज़) जो राम कहता रहा है उसके अर्थ किसी प्रकार की ख़ुदी (अहङ्कार), ख़ुद-पसन्दी (अहङ्कार-प्रियता), या ख़ुदग़र्ज़ी (स्वार्थ-परायणता) नहीं है। इसके अर्थ हैं आत्मोन्नति। और आत्मोन्नति वा आत्म-कृपा का मुख्य अङ्ग है चित्त की विशालता अर्थात् चित्त की शुद्धि का इस दर्जे तक उत्पन्न करना कि हमारी आत्मा देश भर की आत्मा का नक़शा हो जाय, जगत् के दिखलाने वाले शीशे का काम देने लग पड़े। देश भर की ज़रूरतों को हम अपनी निजी ज़रूरतें भान (अनुभव) करने लग पड़ें। चाहे लोगों की दृष्टि में हम सारे भारतवर्ष या जगत् भर के भले का काम कर रहे हों, पर हमें वह काम केवल निज का काम मालूम दे। पस अपने चित्त को ऐसा विशाल वा उदार और बड़ा करते जाना कि यह चित्त सारी क़ौम का चित्त हो जाय; यह आत्मोन्नति है। आत्मोन्नति का लक्ष्य है सबके साथ ऐसी सहानुभूति कि—

ख़ूँ रगे-मजनूँ से निकला फ़स्द लैला की जो ली,
इश्क़ में तासीर है पर जज़्बे-कामिल चाहिये।

अर्थात् प्रियात्मा लैली की जब नस काटी गई, तो प्यारे मजनूँ की नस नस से रुधिर निकल आया। प्रेम में ऐसा प्रभाव अवश्य है, पर ऐसे प्रभाव के लिये पूर्ण प्रेम चाहिये।

पत्ती को फूल की लगा सदमा नसीम का,
शबनम का क़तरा आँखों में उसकी नज़र पड़ा।

अर्थात्ः—मृदु-पवन से चोट तो पुष्प की पत्ती को लगी, परन्तु उस अभेदात्मा प्यारे के नेत्रों में आँसू दिखाई देने लग पड़े।

जो राम ने कहा है आत्मबल, वह अन्य शब्दों में ईश्वरबल ही है, आपका वास्तविक स्वरूप है, वह सबका स्वरूप है, और वही वास्तव में ईश्वर का स्वरूप है।

मा नूरे-ख़ुदायेम दरीं ख़ाना फ़ितादा,
मा आबे-हयातेम दरीं जूये रवानेम।

अर्थात्ः—हम ईश्वर का प्रकाश हैं, जो इस शरीररूपी घर में व्याप्त है। हम वह अमृत हैं जो इस देहरूपी नगर में बहता है।

यह नामरूप इस वास्तव स्वरूप की निर्मूल छाया के समान है। अपने तईं नामरूप ठानकर जो काम किया जाता है, वह अहंकार और स्वार्थवृत्ति का उकसाया हुआ होता है, और उसका परिणाम दुःख और धोखा होता है। परन्तु जो काम निजानाद और अभेदता में होता है, अर्थात् जो काम विश्वात्मा की दृष्टि से किया जाता है, वह ख़ुदी (अहंकार) से नहीं बल्कि ख़ुदाई (ईश्वरभाव) से होता है, और उसका फल सदा शान्ति और कार्यसिद्धि होगा। सारे व्याख्यान का तात्पर्य यह है कि ख़ुदी (अहंकार) के स्थान पर ख़ुदाई (ईश्वर भाव) की आँख से सब सम्बन्धों को देखो, और नामरूप में लंगर डाल बैठने के स्थान पर निज स्वरूप में घर करो।

बहुत मज़बूत घर है आक़बत का दारे-दुनियाँ से,
उठा लेना यहां से अपनी दौलत और वहां रखना।

जो पुरुष नामरूप के आधार पर कारोबार का सिलसिला चला रहा है, वह वायु की नीव पर क़िला बनाना चाहता है। जीता वही है जो सांसारिक उन्नति व वैभव, अपकीर्त्ति व अव-

१–परलोक। २–संसार।

नति आदि को जलबुद्बुद्वत् या मेघमंडल के छाया सदृश मानता है, और इनका आश्रय नहीं करता।

सायः गर साये-कोहस्त सुबुक मी बाशद,

अर्थात्—छाया यदि पर्वत की छाया हो, तो भी तुच्छ ही होती है।

आँखोंवाला केवल वही है जिसकी दृष्टि बाह्य जगत् को चीर कर पदार्थों की स्थिरता पर न जमकर, और लोगों की धमकी और प्रशंसा को काट कर एक तत्त्व पर जमी रहती है।

"नहीं है कुछ भी सिवाय अल्लाह के"। ब्रह्म ही सत्य है जगत् मिथ्या है। सचेत केवल वही है जो हर समय उत्तम स्वरूप, सुंदर स्वरूप अर्थात् वास्तव स्वरूप को देखता हुआ आश्चर्य की मूर्त्ति हो रहा है, अथवा आश्चर्य स्वरूप बन रहा है।

काश देखो मुझे, मुझे देखो।
हर सरे-मू से चश्मे-हैरत हो॥
खुब गया जिसके दिल में हुस्न मेरा।
दङ्ग सकते का एक आलम था॥

अर्थातः—ईश्वर करे कि आप मुझे अवश्य देखें, और रोम रोम से आप आँख-भौचक्का (विस्मित) हों। जिसके चित्त में मेरी छबि समा गई, उसके हाँ मूर्छावत् विस्मय दशा व्याप्त हो गई।

स्वप्न में किसी को धन मिला। इस धन के जो धनी बने, वह मूर्ख हैं। इसी प्रकार इस स्वप्नरूप संसार की वस्तुओं के आधार पर जो जीता है, वह जीता हो मर गया। फर्ज़-ऊला अथवा आत्म-कृपा की पूर्णता यही है कि:—

तू को इतना मिटा कि तू न रहे,
और तुझ में दूई[1] की बू न रहे।

१—द्वैत।

यह परिच्छिन्न अहंकार तथा अहंता, इसका नाम तक मिट जाय, निशान तक न रहने पाये।

तो मबाश असला! कमालीनस्तोवस,

* * *

तु .खुद हिजावे-.खुदो ऐ दिल! अज़ मियां वरख़ेज़।

* * *

न दारे आख़रत नै दारे-दुनियां दर नज़र दारम,

ज़ि इश्कत कार चूँ मन्सूर बा दारे-दिगर दारम।

अर्थात्ः—ऐ प्यारे! तुझ में तू न रहे, यही पूर्णता है।

ऐ दिल! तू अपना परदा आप है, बीच से उठजा।

मेरी दृष्टि में न लोक है, न परोक। मन्सूर के समान तेरे प्रेम में दूसरे की सूली से काम रखता हूँ।

अहङ्कार (परिच्छिन्नता) को स्थिर रखकर जो बड़े बनते हैं, वे फ़रौन व नमरूद हैं। परिच्छिन्नता को मिटानेवाला स्वयं ईश्वर, शिवोऽहम्, है।

रस्सी में किसी को साँप का भ्रम हो गया। अब अगर उसके लिये रस्सी है तो साँप नहीं, और साँप है तो रस्सी नहीं। एक ही रहेगा। .खुदी है तो .खुदाई नहीं, .खुदाई है तो .खुदी नहीं।

तीरे-निगाह चूँ निशस्त मसकने-.खुद जां गुज़ाश्त,

ताक़ते-मेहमाँ न दाश्त ख़ाना व मेहमाँ गुज़ाश्त।

* * *

ता शांना सिफ़त सर न निही दर तहे-अर्रा,

हरगिज़ व सरे -ज़ुल्फ़े-निगारे न रसी।

अर्थात्—प्यारे की दृष्टि का तीर बैठते ही जान (प्राण) ने अपना स्थान छोड़ दिया। अतिथि सत्कार की शक्ति न रखने के कारण अतिथि के लिये अपना घर छोड़ दिया। कंघी के समान, जब तक तू अपने

अहंकाररूपी सिर को ज्ञानरूपी आरा के नीचे नहीं रखेगा, तब तक तू प्यारे के सिर के बालों को भी नहीं प्राप्त हो सकेगा।

जब तक कंघी की तरह सिर आरा के नीचे न रक्खोगे यार की ज़ुल्फ़ तक नहीं पहुँच सकते।

ता सुर्मा सिफ़त सूदह न गर्दी तहे-संग,
हर्गिज़ ब सफ़ा चश्मे-निगारे न रसी।

जब तक सुर्मा की तरह पत्थर तले पिस न लोगे, असली यार की आँखों तक नहीं पहुँच सकते। अगर कहो कि आँखें नहीं तो यार के कानों तक ही किसी तरह पहुँच हो जाय, तो भी जब तक स्वार्थपरायणता दूर न होगी, जब तक यह अहंकार मर न लेगा, जब तक ख़ुदी गुम न होगी, यार के कानों तक नहीं पहुँच सकते। क्योंकि कान में रहता है मोती, ज़रा उसकी दशा देख लो।

ता हमचो दुरे-सुफ़्ता नगरदी बा तार,
हरगिज़ बबिना गोशे-निगारे न रसी।

जब तक मोती की तरह तार से न छिदोगे, यार के कान तक भी कदापि नहीं पहुँच सकते।

ता ख़ाके तुरा कूज़ा न साज़न्द कलालां,
हरगिज़ बलबे लाले-निगारे न रसी।

अर्थात्—कुम्हार (ज्ञानवान्) जब तक तेरी अहंकार रूपी मिट्टी के आबख़ोरे न बना लेंगे, तब तक प्यारे के लाल ओंठों तक तू पहुँच न सकेगा।

पस अज़ मुर्दन बनाये जायँगे साग़र मेरी गिलके,
लबे-जानां के बोसे ख़ूब लेंगे ख़ाक में मिलके।

अर्थात् मृत्यु के बाद मेरी मिट्टी के आबख़ोरे (प्याले) बनाये जायँगे, तब हम मिट्टी में मिल कर प्यारे के ओंठ ख़ूब चूमेंगे।

व्याख्याः—इन कविताओं में आँख, कान, ओंठ, आदि से यह आशय नहीं कि परमेश्वर के आँख, कान, नाक हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जैसे एक ही प्रियात्मा को प्रसन्न करने के लिये उसके कान को राग सुना सकते हैं, या उसकी आँख को सुन्दर रूप दिखा सकते हैं, या नाक को फूल सुंघा सकते हैं इत्यादि। कोई किसी उपाय से इस प्यारे को प्रसन्न कर सकता है, कोई किसी दूसरे उपाय से। लेकिन कोई उपाय ऐसा नहीं कि जिसमें बाह्य अहंकार की मृत्यु के बिना काम निकल सके। निःसन्देह कोई वैष्णव बन कर परमेश्वर को पूज सकता है, कोई शैव रह कर भक्ति कर सकता है। कोई मुसलमान की अवस्था में पूजा करे। कोई ईसाई की हालत में प्रार्थना करे, लेकिन वैष्णव, शैव, मुसलमान, ईसाई आदि कोई हो, आत्म-दर्शन वा ईश्वर-प्राप्ति तभी होगी जब परिच्छिन्नता का अन्त हो जायगा। अगर कहो कि बाल, आँख, कान और ओंठ तक नहीं, तो ईश्वर करे, प्यारे के हाथ तक ही तुम पहुँचते, तो।

ता हमचो क़लम सर न निही दर तहे-कारद ;
हरगिज़ ब सर अंगुश्ते-निगारे न रसी।

जबतक लेखनी के समान सिर चाकू के नीचे न रखलोगे, कदापि प्यारे की उँगलियों तक नहीं पहुँच सकते। अगर कहो कि हमें सबसे नीचे रहना स्वीकार है। प्यारे के चरण तक ही पहुँच हो जायतो।

ता हमचो हिना सूदह न गरदी तहे-संग ,
हरगिज़ ब कफ़े-पाये-निगारे न रसी।

जब तक मेंहदी के समान पत्थर के नीचे पिस न जाओ, तब तक प्यारे के पाओं तक कदापि नहीं पहुँच सकते। तात्पर्यः—

ता गुल शुदा ब बुरीदा न गरदी अज़ शाख़ ,
हरगिज़ ब गुले-हुस्ने-निगारे न रसी।

जब तक फूल की तरह शाख़ रूपी संबंधों से काटे न जाओगे, तब तक किसी सूरत से प्यारे तक पहुंच नहीं सकते।

बांसुरी से किसी ने पूछा, कि "अरी बांसुरी! क्या बात है कि वह कृष्ण, वह प्यारा मुरली मनोहर, जिसके पलकों के इशारे से राजाधिराज कांपते हैं; भीष्म, अर्जुन, दुर्योधन समान महाराजाधिराज जिसके चरणों को छूने के भूखे प्यासे हैं; जिसकी चरण-रज अभी तक राजा महाराजा लोग जाकर मस्तक पर धारण करते हैं; और चन्द्रमुखी गौरांगना जिसके मधुर हास्य (मृदु-मुस्कान) को देखने के लिये तरसते हैं; वह कृष्ण तुझको चाह और प्यार से ख़ुद बारम्बार चूमता है? एक ज़रा सी बांस की लकड़ी, तूने ऐसे भगवान् कृष्ण पर क्या जादू डाला? तुझ में यह करामात कहां से आ गई? बांसुरी ने उत्तर दिया कि "मैं सिर से लेकर पाओं तक (अपनी परिच्छिन्नता अर्थात् अहङ्कार को दूर करके) बीच से ख़ाली होगई हूँ। फल यह मिला कि वह कृष्ण स्वयं आकर मुझे चूमता है। जिसके चरणों के चूमने को लोग तरसते हैं, वह शौक़ से मुझे चूमता है। मुझ से चित्ताकर्षक स्वरें फिर क्यों न निकलें? मुझ में राम का दम (श्वास) है, मेरी मधुर सुरें उसकी सुरें हैं।

तही ज़ ख़्वेश चा नै शौ ज़ पा ता सरे-ख़ुद,
बगरना बोसे-लबे-आले-नाई आसां नेस्त।

भावार्थः—बांसुरी के समान तुम सिर से पाओं तक अहङ्कार से ख़ाली हो जाओ, नहीं तो बांसुरी बजाने वाले प्यारे के ओठों का चुम्बन मिलना सुगम नहीं है।

धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति। उप०

धीर पुरुष इस संसार से मुँह मोड़ कर अमृत को पाते हैं।

ॐ। ॐ।। ॐ।।।

पुरुषार्थ और प्रारब्ध।

[अमेरिका से लौटकर सन् १९०५ में लखनऊ में दिया हुआ स्वामी जी का व्याख्यान।]

असली हवाला या प्रमाण तुम्हें स्वयं होना चाहिए। क्या पुस्तकें बेकार हैं? निस्संदेह पुस्तकों से मुझे सहायता मिली, और जो कुछ उन पुस्तकों में लिखा था वह सब अपने अनुभव में लाया। वह पहले मेरे प्रमाण और हवाला थीं और अब मैं स्वयं प्रमाण और हवाला हूँ। रसायन-विद्या की पुस्तक विद्यार्थी को सहायता देती है, किंतु विद्यार्थी का अपना अनुभव उसको वस्तुतः प्रमाणित करता है। वेद या क़ुरान तुम्हें आत्मिक रसायन में सहायक हो सकते हैं, लेकिन तुम्हारा निजी अनुभव असली प्रमाण या हवाला है। आप लोग आज मेरी सब बातों से सहमत न होंगे, ख़ैर आज नहीं तो कल सहमत होंगे, और कल नहीं तो दूसरे जन्म में मानना ही पड़ेगा। सच्चाई की सदैव विजय होगी। असली जाति मनुष्य की तो है ईश्वर, और सारे संसार की शक्तियां उसके अधीन हैं। लेकिन जिसको प्रायः लोग जन वा मनुष्य कहते हैं, वह मन, बुद्धि, और शरीर है। उसको प्रकृति की यह शक्ति उसी तरह से प्राप्त है जिस तरह से नदी-नाले, बादल, हवा, वर्षा और सूर्य को। यदि मनुष्य को इन्हीं अर्थों में लें, तो मनुष्य एक निकम्मी पराधीन वस्तु अन्य वस्तुओं की भाँति है। कहते हैं कि गेंद को हाथ में लेकर जब हवा में फेंकते हैं, उसमें एक गति उत्पन्न हो जाती है। यदि कहीं वह सचेत हो जाय, अर्थात् उसमें चेतना (conscience) अथवा समझने-बूझने की शक्ति उत्पन्न हो जाय,

तो वह यही कहेगा कि मैं स्वयं चलता हूँ; लेकिन यह प्रत्यक्ष है कि वह स्वयं नहीं चलता, भिन्न-भिन्न शक्तियां हैं जो उसे चलाती हैं, जिनमें एक ग्रेविटेशन (gravitation-गुरुत्व आकर्षण शक्ति) है, और एक वह शक्ति है जिसने उसमें गति उत्पन्न की थी। मनुष्य भी इसी प्रकार अन्य शक्तियों की तरह है, दूसरी शक्तियों की अधीनता में काम करता है। भेद केवल इतना है कि वृक्ष, फल, फूल और वनस्पति में चेतना नहीं, और यह सचेत है। वह नहीं कहते कि हम किसी काम को करते हैं, लेकिन यह कहता है कि 'मैं करता हूं' 'मैं करता हूँ'। वास्तव में यह एक ही शक्ति है, जो सबमें काम करती है, यद्यपि नाम अनेक हैं। संसार की अन्य वस्तुओं में उसे ग्रेवीटेशन (gravitation) कहो और उसी शक्ति का मनुष्य में चाहे प्रेम नाम रक्खो; प्रकृति में उसे अफ़िनिटी (affinity) संयोग-प्रीति कहो और मनुष्य में भक्ति। प्रकृति में जो अट्रैक्शन (attraction) और रिपलशन (repulsion-आकर्षण और प्रक्षेपण) है, वही मनुष्य में राग-द्वेष है। इसको एक उदाहरण से स्पष्ट किया जायगा। पहाड़ों की चोटियों पर बर्फ़ जमी रहती है, और उसी में ग्लेशियर या बर्फ़ की नदी उत्पन्न होती है, और रास्तों को काटती-छाँटती, वृक्षों को उखेड़ती-पुखेड़ती आगे बढ़ती चली जाती है। यह किसकी बदौलत? सूर्य की बदौलत, और अन्य शक्तियों की बदौलत जो मिलकर काम कर रही है। फिर वह आगे बढ़कर नदी बनकर चली। यह नदी क्योंकर चल रही है? वही सूर्य, आकर्षण-शक्ति तथा अन्य शक्तियाँ काम कर रही हैं, जो बर्फ़ में कर रहीं थीं। किंतु नदी तरल है, इस लिये सूर्य का उसमें प्रतिबिम्ब पड़ता है। पक्षी, वनस्पति और पाषाण जो उन्नति

कर रहे हैं ; वह परमेश्वर की बदलौत, या कई विभिन्न शक्तियों की बदौलत, अविनाशी भगवन् की बदौलत कर रहे हैं। लेकिन वे (पक्षी-पाषाण आदि) जमी हुई बर्फ़ की भाँति हैं, और उनमें सूर्य का प्रतिबिम्ब या चेतनात्मा का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता। मनुष्य का सम्बन्ध अन्य वस्तुओं के साथ वही है जो पिघलती हुई नदी का बर्फ़ के साथ। इसमें नदी की भाँति एक प्रतिबिम्ब (चेतना) पड़ रहा है ; जिससे सचेतन है, अहंता का मादा (बीज या मूल) उत्पन्न हो गया, और कहता है कि यह तो "मैं करता हूँ", "मैं करता हूँ", यद्यपि करनेवाली वही सारी शक्तियाँ हैं। वास्तव में वृक्षों का ईश्वर वही है जो तुम्हारा ईश्वर है ; वृक्षों का अंतरात्मा वही है, जो तुम्हारा। इसलिये वृक्ष तुम्हारे भाई हुए, संपूर्ण ईश्वरीय सृष्टि तुम्हारी भाई हुई। यह बात तो प्रकृति ने समस्त ब्रह्मांड में दिखा दी है, और साथही यही दर्जे छोटे पैमाने पर प्रत्येक मनुष्य के जीवन में भी पाए जाते हैं। जब वह बच्चा था तो आत्मा यद्यपि वैसा ही था, लेकिन अहंकार वा अहंता उसमें नहीं समाई थी। बढ़तेही मानों पहाड़ों की बर्फ़ें पिघल पड़ीं और उस नदी में सूर्य की किरणें पड़ने लगीं, अर्थात् उसमें चैतन्य का प्रतिबिम्ब पड़ने लगा, और वह कहने लगा "यह मैंने किया","मैंने किया", जो बचपन में नहीं कहता था। सुषुप्ति की अवस्था लो। इस अवस्था में भी शरीर कुछ न कुछ बढ़ ही रहा है। इसमें रक्त का दौरा बंद नहीं होता, किंतु उस समय अहंता की अवस्था नहीं। उस समय तो तुम पाषाण या वनस्पति के भाई हो। जब जाग्रत-अवस्था में आए, तो फिर तरल-अवस्था में आगए और किरणें प्रतिबिम्बित होने लगीं, फिर कहने लगे कि "पुस्तकें मैंने लिखीं", "व्याख्यान मैंने दिया", "यह मैंने किया", "वह मैंने किया"।

एक बात और विचार करने की है। जब मनुष्य अति उच्च अवस्था पर पहुँचा हुआ होता है—कवि का उदाहरण ले लो, जिस समय वह अपने विचारों में मग्न हो जाता है—उसे कदापि स्मरण नहीं रहता, कि मैं लिख रहा हूँ। अहंता का ख़याल ही नहीं। जिस समय एक गणितज्ञ कठिन से कठिन गुत्थियों (घुंडियों वा उलझनों) को हलकर रहा हो, उस समय मानों उसका मस्तिष्क ईश्वर ने पकड़ लिया है, अहंता नितान्त दूर है। लेकिन निरहंता (देहाध्यास की शून्यता) में हलकर चुकने के बाद फड़क उठा कि वाह! "क्या ग्रन्थी हल की है", "मैंने की है"। नेपोलियन को देखिए कि युद्ध-क्षेत्र में खड़ा है, इधर से गोला सनसनाता हुआ निकल गया, उधर से सनसनाता हुआ आया, हज़ारों मनुष्य गिर रहे हैं, लेकिन उसे ख़बर ही नहीं कि क्या हो रहा है, ख़ुदी (अहंता) का नाम ही नहीं, उसकी वही दशा है जैसी गलेशियर की हालत। जब कमाल (अत्युच्च स्थिति) पर शक्ति होती है, अहंता नहीं होती। यह बात याद रखने के योग्य है कि जितने बड़े बड़े काम होते हैं, अहंता के बिना होते हैं। और आश्चर्य यह है कि जब अहंता आती है, तो हमारे कार्य को रद्दी कर देती है। एक मनुष्य व्याख्यान दे रहा है, जिस समय उसे ख़याल आया कि मैं अच्छा व्याख्यान दे रहा हूँ, उसी समय वह बात जाती रही। लड़के ने जिस समय स्कूल में यह ख़याल किया कि क्या अच्छी तरह कविता पढ़ रहा हूँ, बस उसी समय मुँह बन्द हो गया। यह अहंता उस मक्खी की भाँति है जो गाड़ी चल रही थी, तो घोड़े की पीठ पर बैठी हुई कह रही थी कि गाड़ी मैं चलाती हूँ। मनुष्य में जब अहंता आई, वहीं से "तुम और हो, मैं और हूँ" हो गया। अहंता ही है जिसकी

बदौलत मस्तिष्क में यह बात समा जाती है कि "यह हमने किया", यद्यपि अहंता ने कुछ भी नहीं किया। जैसे कि सूर्य की गर्मी और आकर्षण-शक्ति नदी को चलाने के कारण थे, यदि नदी में प्रतिबिम्ब कह दे कि मैं नदी चला रहा हूँ तो क्या आप उसे मानेंगे? या वह माने जाने के योग्य है? इसी प्रकार आपकी अहंता नहीं है जो काम करती है। जो काम आप कर रहे हैं या हो रहा है, वह एक परमेश्वर की बदौलत हो रहा है। जैसे लेबोरेटरी (Laboratory) होती है या इनवन्टरी (Inventory), वहाँ ख़याली बातें नहीं हैं, वहाँ प्रत्येक वस्तु का अनुभव और साक्षात्कार किया जाता है। वैसे अमेरिका में संकल्प-शक्ति (वा संकल्प-शास्त्र) के अनुभव भी किये जाते हैं। कुछ अनुभव जो राम ने देखे हैं, अब उनकी साक्षी देगा। एक मनुष्य को ऐसी अवस्था में डाल सकते हैं जब अहंता काम न कर सके, अर्थात् नदी बहती जाय और सूर्य का प्रतिबिम्ब न पड़े। यह वह अवस्था है जिस समय मनुष्य हिप्नोटाइज़्ड (hypnotized) या साइकोलोजाइज़्ड (psychologised) कर दिया जाता है। राम के सामने एक ऐसे मनुष्य को इस अवस्था में डाला, जिसे चौथिया का तप था, अर्थात् जिसे चौथे दिन की बारी से ज्वर आया करता था। उसे हिप्नो-टाइज़्ड करके उसमें यह ख़याल (संकल्प) डाला कि ज्वर दूर हो जाय, और ऐसी चित्त-शक्ति से यह ख़याल भरा कि उसका प्रभाव हो। फिर उसी अवस्था में ले आए, ज्वर दूर हो गया, किन्तु उसके स्थान में नित्य ज्वर आने लगा। यह ख़याल का अपराध नहीं था, वरन उसका अपराध था जिसने ख़याल भरा था। कुछ समय बाद उसमें ज्वर बिलकुल छोड़ देने का ख़याल डाला गया, और फिर जगाया गया। ज्वर

बिलकुल दूर हो गया। यह परिणाम इस बात का सूचक है कि आप का शरीर आपके संकल्पों (ख़यालों) से बना हुआ है। दूसरा अनुभव सुनिए। एक व्यक्ति था, जिसे सिगार पीने का बड़ा व्यसन था। उन्होंने चाहा कि उसका स्वभाव बन्द कर दें। उसे बेहोशी की अवस्था में डाला और उसमें यह ख़याल भरा कि उसने दिन भर में एक ही बार सिगार पिया है। इसके बाद उसने एक इतना बड़ा सिगार बना कर पीना आरम्भ किया जो सब के बराबर था। यह भूल ख़याल डालने वाले की थी। फिर दुबारा उसपर अमल किया गया और वह अभ्यास बिलकुल छूट गया। इन अनुभवों में आरंभ में तो कुछ असफलता रही, मगर पूर्ण सफलता के अनुभव भी यह ही हैं। कल बताया था कि मिस्टर जॉन (John) की ऐसी अवस्था बदल गई और उसके ख़यालों की शक्तियां ऐसी मरोड़ी गईं कि वह डाक्टर पाल (Paul) की अवस्था में काम करने लगा। यह अनुभव चाहे मानों या न मानों। अभी कुछ काल नहीं बीता कि लोग रेल और तार की आश्चर्य-जनक शक्तियों को न मानते थे। न मानों, तुम्हारी इच्छा है। किंतु यह आँखों देखी बातें हैं, उनको राम कैसे कह दे कि नहीं हैं। आपके शरीर की रोग्यता और आरोग्यता, आपके मुख-मंडल की प्रफुल्लता और मलिनता और आप के मुख-मंडल की रंगत, यह कौनसी शक्तियां हैं जो चला रही हैं। यह शक्तियां ख़याल की हैं। आपकी बाह्य अवस्था और कर्म आप के इस ख़याल की शक्ति पर निर्भर हैं। कल राम ने आपको बताया था कि एक मनुष्य को ऐसी अवस्था में डाल-कर फ़र्श को झील कर दिया, और वह उसमें मछलियाँ पकड़ने लगा। यह भी देखा कि एक मनुष्य को ऐसी अवस्था में डाला गया और ख़याल किया कि वह वृक्ष है, सिर एक मेज़ पर रक्खा

और पैर दूसरी मेज़ पर, बीच में बोझ रक्खा गया और उस पर लड़के चढ़े, लेकिन झुकने का नाम नहीं, यह क्या? यह सिद्ध करता है कि शारीरिक और बाह्य काम ख़याल पर निर्भर हैं।

जैसी आपकी मती होगी, वैसी आपकी गती होगी।

संकल्पों की एक अवस्था होती है, जिस में अहंता का साथ न हो। उस अवस्था को कारण शरीर (subjective mind, सब्जेक्टिव माइंड) वा सुषुप्ति कहते हैं। एक अवस्था में अहंता का साथ होता है, उसे सूक्ष्म शरीर (objective mind, ऑब्जेक्टिव माइंड) वा स्वप्न कहते हैं। जाग्रत अवस्था को स्थूल शरीर कहते हैं। ये तीनों शरीर परस्पर ऐसा संबंध रखते है जैसे पानी और वर्फ़ का परस्पर संबंध होता है। जो काम हाथ से होता है, उसका प्रभाव मन पर पड़ता है। और इस समय जो व्याख्यान सुन रहे हो, वह अपनी इन्द्रियों से सुन रहे हो, यह शारीरिक क्रिया है। और फिर सूक्ष्म शरीर की क्रिया अर्थात् ख़याल हो रहा है। जब यहाँ से चले जाओगे, कुछ देर तक प्रभाव रहेगा, फिर यह प्रभाव मनमें भी नहीं रहेगा, अंततः यह शक्ति भी कहीं न कहीं रहेगी। अगर तुम्हारे पास न रही, तो फिर यह शक्ति कहाँ रहेगी? यह सुषुप्ति अवस्था या कारण शरीर में रहेगी। वहाँ का जाना यों स्वीकार करेंगे। एक झील है, उसमें बहुत सी वस्तुएँ गिरीं। कुछ देर ऊपर रहीं, फिर तह में जम गईं। अगर हिलाते हैं तो सतह (तल) पर आ गईं। राम हिंदुस्तानी बोल रहा है, अँगरेज़ी, फ़ारसी मनकी तह में हैं। मन की झील को हिला दें, तो सतह पर आ सकती हैं। जिस समय आप स्वप्नमय वा मनोमय जगत् में होते हैं, तो कई बार जोश आ जाता है कि "मैं यह काम करूँगा, वह काम करूँगा", मानो यह शक्ति बाहर से आई, इस तरहसे यह आपको गति में डाल

देती है। यह क्या हुआ? किसी दूसरे ने यह ख़याल दिला दिया? या भीतर से उत्पन्न हुआ? राम स्पष्ट करके दिखा देगा कि राम के सामने यह अनुभव हुआ। एक लड़का था। हिप्नोटाइज़्ड (hypnotized) किया गया, और उससे कहा कि "देखो जिस समय तू जाग पड़ेगा, हम ताली बजाएँगे, साथ ही इसके तुम पानी की ओर जाना और नदी के पास एक छड़ी पड़ी है उसे उठा लेना, नाचना, और गाना, वहाँ से वापस आकर बैठ जाना"। यह कथन कारण-शरीर में डाला गया, जिसमें यह ख़याल जम गया, लेकिन जागकर वह यह बात भूल गया कि किसी ने कुछ कहा था। भूल जाने के यह अर्थ हैं कि झील की तह में वह बातें थीं उसे ख़बर ही नहीं रही। जिस समय तह हिला दी गई अर्थात् ताली पिटी, पश्चिम की ओर चला और छड़ी उठा ली, सिर पर रक्खी, नाचा, गाया और वापिस आकर बैठ गया। उस से पूछा जाता है, यह क्या है? हमने तुझे ऐसी अवस्था में समझाया था, लेकिन वह मानता ही नहीं। वह कहता है कि यह मेरे मनका ख़याल था, मेरा यह जोश था, मेरी यह मौज थी। इसी प्रकार प्रायः हम काम कर बैठते हैं, किन्तु उसका कारण नहीं मालूम होता। अदालत में प्रायः कारण पूछा जाता है। वह लोग साइकालोजी (psychology) के सिद्धांत ही को नहीं जानते। यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक काम का कोई न कोई ज्ञात कारण ही हो।

भाग्य क्या है?—प्रारब्ध या कर्म का शाब्दिक अर्थ क्रिया, वा काम है। क्या काम वह है जो शरीर से किया जाय? काम की परिभाषा वह चेष्टा है जिससे मन का संबंध हो। कर्म वह है जिससे मन को लगाव हो। असली कर्म वह ख़याल है जो मन वा सूक्ष्म शरीर की तह में है। अतः हमारे ख़यालों

से भाग्य बना हुआ है। इसके संबंध में एक बात ध्यान से सुनिये। हिन्दू कहते हैं कि चौरासी लाख चक्र में होकर जीव मनुष्य की योनि में आया है। परिणामवाद (Evolution) का सिद्धान्त हद दर्जे तक पहुँचा। अमेरिका में डारविन (Darwin) के मतकी व्याख्या उत्तम रूप से की गई। वहाँ एक अजायब घर है, जहाँ माता के पेट का एक दिन का बच्चा, दो दिन का बच्चा, तीन दिनका बच्चा, इसी तरह पर नौ महीने तक के बच्चे शीशियों में रक्खे हुए हैं। आप विचार करें तो पहले मेंढक, मछली और बंदर आदि के रूप से वह गुज़र लेता है, तब मनुष्य होता है। यह मामला है कि प्रकृति ने हमको दिखा दिया कि दायरे (वृत्ति) के भीतर दायरा है, प्याज़ के छिलकों की भांति एक के भीतर एक मौजूद है, या द्रौपदी के चीर की भाँति सारी में नारी और नारी में सारी है। एक ही नियम है जो सारे पर्दों की तहों में चल रहा है। वही नियम मनुष्य पर चलता है। जब मनुष्य माता के उदर में आता है, तो नौ मास के समय में सारी अवस्थाओं को पार कर जाता है। जैसे बी० ए० की परीक्षा के पहले लड़के पूरी कितावें थोड़े समय में दोहरा जाते हैं। शरीर की बनावट में यह पाया जाता है कि आपके कारण-शरीर में पिछले जन्मों के अभ्यास संचित हैं। यह जो आप सुना करते हैं कि एक मनुष्य ने अपने को मुर्दा बना डाला है, नाड़ी और हृदय की गति बंद है। लोग कहते हैं कि वह मर गया और फिर जी उठा। इसके अर्थ यह हैं कि मेंढक आदि के जन्म में जो अभ्यास था, उसको दोहरा लिया। सिद्धी, सिद्धी लोग बहुत कहते हैं। इनके पीछे पड़ने का नाम उन्नति नहीं है, वरन् ऐसा करने से तुम अपनी अवस्था को रीछ और मेंढक आदि की अवस्था में डाल सकते हो, जिन में अब भी बहुत

शक्तियाँ वर्तमान हैं, जो सर्व-साधारण में सरल नहीं हैं। देखो, कुत्ता दूर से सूँघ लेता है ; यदि तुम यह शक्ति प्राप्त करो, तो यह कुछ उन्नति नहीं है, वरन् पिछली बातों का दुबारा ख़याल करना है। आपकी संकल्प शक्ति सब कुछ कर सकती है। राम बतलायेगा कि किस ओर ख़याल लगाओ। शतरंज का उदाहरण लो। जब तक कुछ मोहरे मारे न जायंगे, जीतना संभव नहीं। परिणाम यह निकलता है कि यदि सफलता प्राप्त करना है, तो कुछ वस्तुओं को छोड़ो और कुछ वस्तुओं को ले लो। इस लिये कि शक्ति अर्थात् प्रकृति उच्च स्वर से कह रही है कि समय के साथ परिवर्त्तित हो या नष्ट हो। प्रकृति की प्रत्येक वस्तु से, तारों से, वृक्षों से, पत्थरों से पाठ सीख सकते हो। ज़रा ग़ौर से देखो, असभ्य लोगों को कहते हो कि परिणामवाद या विकासवाद की उन्नति की दौड़ में वे बहुत पीछे हैं। किंतु राम ने देखा है कि उनके नेत्रों में इतना प्रकाश है कि मील दो मील की दूरी से हरे वृक्ष पर हरा तोता देख सकते हैं, पैरों में यह शक्ति है कि हिरन को दौड़ कर पकड़ सकते हैं, हाथों में यह शक्ति है कि सिंह के साथ बिना शस्त्र के लड़ सकते हैं ; किंतु सभ्य मनुष्य के न हाथ में, न पैर में, और न आँख में इतनी शक्ति है। इसका कारण क्या है? कारण यही है कि असभ्य लोग इन अंगों को व्यवहार में लाते हैं, इसके बिना वे जीवित नहीं रह सकते। उनकी संतान भी वैसी ही होती है। सभ्य मनुष्य असभ्य की तरह नहीं दौड़ सकता है। जब कहीं जाना हुआ, गाड़ी घर पर तैयार है। अमेरिका में दो-दो मिनिट पर रेलें ऊपर-नीचे और भूमि पर चलती हैं, इसलिये अमेरिकन को पैरों का व्यवहार कम करना पड़ता है। रेलें मानों उन्हीं की बढ़ी हुई टाँगें हैं। असभ्य पुरुष हाथ से काम लेते हैं,

सभ्य उसके स्थान में शस्त्रों से। जब आँख दुर्बल हुई उन्होंने ऐनक लगाई, दूरबीनों का अविष्कार किया कि दूर से दूर की वस्तुएँ दिखाई दें। अतएव ज्ञात हुआ कि सभ्य लोगों ने हाथ, पैर और आँख की मुहरों को मरवा डाला, और मस्तिष्क के मुहरे को जीवित रक्खा। ऐसे-वैसे मुहरे को पिटवाना ही अच्छा है। यदि असभ्यों की तरह इन शक्तियों को वर्तमान रक्खा जाता, तो जीवन भार रूप वा संकट रूप हो जाता। यह देखिये कि विकासवाद के वृक्ष की शाखाएँ किस ओर जा रही हैं। मनुष्य को कहते हैं कि मनुष्य सारी सृष्टि का निचोड़ है। यह एक सीमा तक सत्य है, क्योंकि सारे संसार की अवस्थायें जब उसके मस्तिष्क में आ गईं, तब यह सारे संसार का ज्ञान वाला मनुष्य उत्पन्न हुआ। यहाँ तक विकासवाद की सीमा है। किंतु अब किस ओर मुख है? संसार की गति (क्ल्यों) की अंतिम अवधि है क्या? एक और अवस्था आती है जिस में मनुष्य केवल बोध से नहीं वरन् हृदय से सारे संसार को अपना आप समझने लगता है। सैरिब्रम (cerebrum,मस्तिष्क) में सारा संसार समा जाता है, केवल शिर और मस्तिष्क ही नहीं वरन् हृदय, जिगर, नस, नाड़ी प्रत्येक रोम में आप के सैरिब्रम में सारा संसार समा जाता है; आप में वह अवस्था आ जाती है कि सारा संसार मेरा ही शरीर है; ये पशु-पक्षी, ये वृक्ष-पर्वत मेरी ही आत्मा है, इस नदी में मेरी ही नाड़ियों का रक्त बह रहा है; यह सूर्य, यह चन्द्रमा मेरी ही आँखें हैं; मेरा ही हृदय इन सबकी छातियों में धड़क रहा है। प्यारे! यह धारणा मनसे मिटा दो कि तुम और हो और वह और हैं, तुम और हो और शेष देश के मनुष्य और हैं; जो सब में है, वह तुम हो। जिस देश के लोग इस सत्यता को व्यवहार में लाते हैं, वही जाति बची रहती

है। जैसे कल राम ने बताया था कि जापानियों ने ब्रह्मविद्या पर व्यावहारिक रूप से अमल किया। जो लोग व्यावहारिक रूप से दूसरों की आत्मा को अपनी आत्मा मानते हैं, वही जीवित रहते हैं, तुम्हारी रक्षा का भी उपाय यही है। आप की संकल्प-शक्ति (आकर्षण शक्ति की रीति पर) यह नियम बताती है कि कई शक्तियां जो परस्पर मिलकर काम कर रही हों, उन शक्तियों के फल (परिणाम) का झुकाव बड़ी शक्ति की ओर होगा। जब वह शक्ति कम हो जायगी, तो उस से कमज़ोर शक्ति की ओर झुकाव होगा। ऐसे ही आप के भीतर का जो ख़याल अधिक दृढ़ है, पहले वह अमल करेगा, तत्पश्चात् दूसरा। अब यह देखा जाता है कि भीतरी शक्तियों का बाहरी शक्तियों से क्या संबंध है। यह लैम्प जल रहा है, चहुँ ओर की हवा से उस में आकसीजन खिंचकर आ जाती है। जो भीतरी शक्तियां हैं, वे विशेष आकर्षण से बाहर की शक्तियों के साथ सम्बन्ध रखती हैं, जैसा संकल्प होता है, वैसा ही सामान प्राप्त हो जाता है। पाज़िटिव (positive-स्थिर) इलेक्ट्रीसिटी के साथ नेगेटिव (negative-चंचल) इलेक्ट्रीसिटी स्वयं उत्पन्न हो जाती है। यह प्रकृति का नियम है। इधर लड़कियाँ उत्पन्न होती हैं, उधर प्रकृति लड़के भी उत्पन्न करती है। आप जानते हैं कि फूलों में भी नर-मादा (स्त्री-पुरुष) होते हैं। गोमती नदी के किनारे किसी स्थान पर मादा फूल है, किसी जगह पर नर फूल है। मधु-मक्खी के द्वारा नर-फूल का नर-भाग मादा-फूल तक पहुँचता है। निदान जब आवश्यकता या इच्छा होती है, तो सामान अपने आप प्राप्त हो जाते हैं। यही नियम आप के लिये है। जैसे आप के भीतरी संकल्प होंगे, वैसे ही बाहरी ख़याल उत्पन्न हो जायँगे। जब हिंदू-मुसलमानों ने मन्दिर और मस-

ज़िदों में यों प्रार्थना की कि "हम दास हैं", "हमको नौकर राखो जी", "मैं दास", "मैं दास", "मैं पापो", "मैं अपराधी" तो आकर्षण-नियम को पूरा करने के लिये प्रकाशस्वरूप ज्योतिषां ज्योति रूप परमेश्वर ने गोरे चिट्टे चमकते दमकते मुग़लों और अँगरेज़ों के तेजस्वी शरीर बनाकर हमारी कामनाएँ पूरी कीं, और दास बना लिया। इसलिये यदि आप ग़रीब हैं, तो अपने बनाये हुए। अपने ख़याल से आप ने अपने को क़ैद में डाल दिया, और अपने ही ख़याल से छुटकारा हो सकता है।

फिर देखिये, कहाँ तक स्वतंत्रता है और कहाँ तक परतंत्रता? कहाँ तक पुरुषार्थ है और कहाँ तक प्रारब्ध? रेलगाड़ी की पटरी की सी कैफ़ियत है। रेल स्वतंत्र भी है और परतंत्र भी। स्वतंत्र तो ऐसी कि फुर्र-फुर्र चलती है, और परतंत्र यों कि लकीर की फ़क़ीर है। इसी तरह आपके ख़यालों के साथ मस्तिष्क में पटरियां पड़ जाती हैं, और बाहर से साज़ और सामान प्राप्त हो जाते हैं, और वह संबंध वा संपर्क (affinity) बाहर के समान इकट्ठा कर लेती है, तो भविष्य के लिये उन पटरियों पर रेल चलाना सहज हो जाता है। और यह भी सिद्ध है कि पुरानी पटरियाँ उखड़ सकती हैं। रेशम के कीड़े का उदाहरण लो कि स्वतंत्र भी है और परतंत्र भी। यह रेशम के निकालने में स्वतंत्र है, और जब निकाल चुका, तो उस कोष (रेशम के कोश) में फँस कर बद्ध हो जाता है। ऐसा ही तुम्हारा उदाहरण है कि:—

"रोशनी-ए-तबा तो बर मन बला शुदी।"

अर्थात:—मेरी ही बुद्धि की योग्यता तो मुझ पर आफ़त हो गई।

तुम्हारी स्वतंत्रता तुम्हें परतंत्र बना रही है। एक मनुष्य ने तमस्सुक लिख दिया कि इतने दिनों में रुपया दे दिया जावेगा।

इस रुपये के लेने में स्वतंत्र था, तमस्सुक लिखने में स्वतंत्र था, पर केवल अपने लिखने से आप बद्ध हो गया। इसी तरह मनुष्य स्वतंत्र होता हुआ भी अपने कर्म से आप बद्ध हो जाता है। कर्म अर्थात् अमल इसके लिये बन्धन (bond) हैं।

फिर प्रारब्ध की अधीनता में भी तुम स्वतंत्र हो। लोग आपत्ति करते हैं कि यदि ईश्वर एक है, तो यह क्या कि किसी को अन्धा और किसी को लूला उत्पन्न किया, किसी को अमीर और किसी को ग़रीब बनाया ? राम कहता है कि यदि ईश्वर और हो और तुम्हारा स्वरूप और हो, तो यह धब्बा अवश्य आयेगा और उसकी कृपालुता में अंतर पड़ेगा, क्योंकि उसी पिता के समक्ष एक लड़का फूलों के निकट है, दूसरा लड़का काँटों में गिर रहा है, यह क्यों किया ? उसमें इतनी कृपालुता न थी ? उसमें बचाने की क्या शक्ति नहीं ? यदि ईश्वर और होता, तुम उसके बच्चे होते, तो ईश्वर के ऊपर बड़ा अंतर आ सकता है। किंतु तत्त्व यह है कि वह ईश्वर तुमसे अलग ही नहीं। यदि एक मनुष्य स्वयं ही नदी में गिरे, स्वयं ही श्मशान में जावे और स्वयं ही पागलख़ाने को, तो वह अत्याचार नहीं है। वही ईश्वर उधर अँगरेज़ है, वही ईश्वर इधर मुसलमान है, वही ईश्वर हिंदू है, वही धनी, वही निर्धन, वही जिसको तुम पिता कहते हो पुत्र बनकर प्रकट हो रहा है।

एक और बात सुनिये। सूर्य का प्रकाश सब जानते हैं कि श्वेत है, किंतु जब प्रकाश को तिकोन शीशे (prism) से देखते हैं, तो मालूम होता है कि यह धोखा था। यहां सात रंग दिखाई देते हैं, यह क्या बात है ? सात रंग, और फिर सफ़ेद। कारण ज्ञात हो या न हो, चाहे आप कुछ भी नहीं जानते, पर यह बात माननी पड़ेगी। तुम कहते हो कि यह फूल सफ़ेद है, यह फूल

गुलाबी है, यह पत्ता हरा है। साइंसवाले कहते हैं यह कुछ भी नहीं। वह सिद्ध करके दिखा देते हैं। एक फूल अँधेरे में ले जाओ, फिर देखो कि वह वैसा ही मुलायम है, उसमें सुगंध भी वही है, वह ठंडा भी वैसा ही है, उसमें पंखड़ियां भी उतनी ही हैं, लेकिन उसका रंग कहाँ गया ? रंग फूल में है ही नहीं, वह प्रकाश का रंग था, प्रकाश के साथ चला गया। पत्ती में कहते हो कि हरा रंग है, पत्ती पर एक प्रकार का मसाला या शक्ति है, जैसे फ़ोटोग्राफ़ के प्लेट पर हुआ करती है, जिसने छः रंगों को खा लिया या सोख लिया, लेकिन एक रंग, जिसको नहीं खाया, वही वह रंग है जो दिखाई देता है, और जिसे हरा रंग कहते हैं। अब देखिये, प्रकाश में सात रंग हैं। इन में काला नहीं गिना जाता। काला रंग वह है जिसने प्रकाश के सातों रंगों को खा लिया, सफ़ेद वह गिना जाता है कि जिसने एक रंग को भी न लिया, सब त्याग दिया। प्यारे! संसार में जितने रंग दृष्टि-गोचर होरहे हैं—यह शक्तियाँ, यह बुद्धि, यह समझ, यह विचार-शीलता—ये सब शक्तियाँ एक ही परमात्मा, एक ही राम की हैं। यों देखो तो सतरंगा, और वों देखो तो सारे रंग उसी के। उसी रंग का नाम माया है। इस संसार में कहते हैं कि यह मनुष्य शक्तिमान् है, यह भी कहते हैं कि दाहिना हाथ अधिक शक्ति-मान् होता है। इसलिये अधिक शक्तिमान् है कि वह उस हाथ की शक्ति को त्यागता रहता है, अर्थात् व्यय करता रहता है। फूल जिस रंग को त्यागता है, वही रंग उसका होता है। प्यारे! जिस वस्तु को तुम त्यागोगे, वही तुम्हारे पास आवेगी। जिस वस्तु से तुम बेपरवाही करोगे अर्थात् मुख मोड़ोगे, वही उप-स्थित होगी। सूर्य के प्रकाश में यदि तुम छाया का पीछा करोगे तो वह तुम्हारे आगे आगे भागेगी, और जिस समय

तुम उसे त्यागोगे, अर्थात् सूर्य की ओर मुख करके दौड़ोगे, तो वह तुमको पकड़ने दौड़ेगी।

"गुज़श्त अज़ मतलब तमाम शुद मतलब।"

जिस रंग को खाते हो, वह नष्ट हो जाता है; और जिसको त्यागते हो, वह तुम्हारा होजाता है। जिस समय यह इच्छा होती है कि तुम्हारा सम्मान हो, वह नहीं होता, और जब तुम दूसरों का सम्मान करते हो, तो तुम्हारा अपने आप सम्मान हो जाता है। जिस समय लोगों को प्यार देते हो, तो चारों ओर से प्रीति तुम्हारी ओर दौड़ी हुई आती है। काले वह हैं जिन्होंने सारे रंगों को अपने अहंता में सोख लिया और कहा "मैं और हूँ", "वह और है", जैसे वह स्वार्थी लड़का जिसका मैंने कल ज़िक्र किया था और जिसने जापान में किताब का वर्क़ चुराया था। और गोरे वह हैं जिनका अमल त्याग-त्याग-त्याग पर है। जिनका कथन यह है कि मेरे रंग सब के रंग, मेरी जान सब की जान, मेरा माल सब का माल, मेरा शरीर सब का शरीर, मेरी विद्या सब की विद्या, मेरा ज्ञान सब का ज्ञान। जो मनुष्य सारे रंगों को त्यागता है, उसकी आत्मा सब की आत्मा है। जिसे फिर न कुछ ढूँढ़ना है और न कुछ लालसा है। बरन् जिसकी—

जुस्तजू भी हिसावे-हसनी है, जुस्तजू है कि जुस्तजू न रहे।
आरज़ू भी विसाले-पर्दा है, आरज़ू है कि आरज़ू न रहे।
'तू' को इतना मिटा कि 'तू' न रहे, और तुझमें दुई की बू न रहे।

जिज्ञासा भी एक सुन्दर परदा है, इसलिये ऐसी जिज्ञासा हो कि जिज्ञासा ही न रहे। मिलने की इच्छा ही भेद है, इसलिये ऐसी इच्छा हो कि इच्छा ही न रहे। और 'तू' के भाव को इतना मिटा कि परिच्छिन्न 'तू' का भाव न रहे और तुझमें द्वैत की गंध तक न रहे।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

अपने मज़े की ख़ातर गुल[1] छोड़ ही दिये जब।
रूये-ज़मीं[2] के गुलशन मेरे ही बन गये सब ॥ १ ॥

जितने ज़ुबाँ[3] के रस थे कुल तर्क कर दिये जब।
बस ज़ायक़े जहाँ[4] के मेरे ही बन गये सब ॥ २ ॥

ख़ुद के लिये जो मुझ से दीदों[5] की दीद[6] छूटी।
ख़ुद हुस्न[7] के तमाशे मेरे ही बन गये सब ॥ ३ ॥

अपने लिये जो छोड़ी ख़्वाहिश[8] हवाख़ोरी की।
बादे-सबा[9] के झोंके मेरे ही बन गये सब ॥ ४ ॥

निज[10] की ग़रज़ से छोड़ा सुनने की आरज़ू[11] को।
अब राग और बाजे मेरे ही बन गये सब ॥ ५ ॥

जब बेहतरी के अपनी फ़िक्रो-ख़याल[12] छूटे।
फ़िक्रो-ख़याले-रंगी[13] मेरे ही बन गये सब ॥ ६ ॥

आहा! अजब तमाशा, मेरा नहीं है कुछ भी।
दावा नहीं ज़रा भी इस जिस्मो-इस्म[14] पर ही ॥ ७ ॥

यह दस्तो-पा[15] हैं सब के आँखें यह हैं तो सब की।
दुन्या के जिस्म[16] लेकिन, मेरे ही बन गये सब ॥ ८ ॥

---

१ पुष्प, २ पृथिवी भर के बाग़, ३ जिह्वा, ४ संसार भर के, ५ नेत्रों की, ६ दृष्टि, ७ सौंदर्य, ८ इच्छा, ९ पर्वा वायु, १० अपनी वा स्वार्थ दृष्टि से, ११ आशा, १२ शोक, चिन्ता, १३ आनन्द दायक या भाँति भाँति के विचार, १४ नाम रूप, १५ हाथ पैर, १६ शरीर।

ॐ

श्रीरामतीर्थ पब्लिकेशन लीग से प्रकाशित

श्रीस्वामी रामतीर्थ की पुस्तकें।

नाम भाषा	नाम पुस्तक	दाम साधारण संस्करण	विशेष संस्करण
हिन्दी	श्रीस्वामी रामतीर्थ के लेख व उपदेश दो ज़िल्दों में, जो पूर्व प्रकाशित ग्रंथावली के प्रथम ६ भागों की संशोधित तथा परिवर्द्धित पुनरावृत्ति है, मूल्य प्रति जिल्द ...	१)	१॥)
,,	श्रीराम-वर्षा (ग्रंथावली के भाग ७, ८ व ६)	१)	१॥)
,,	श्रीस्वामी राम के दश आदेश अर्थात् रामबादशाह के दस हुक्मनामे ..	१)	—
,,	श्रीरामतीर्थ ग्रंथावली के अन्तिम २० भाग, १०-१० भागों के खंड का मूल्य ..	४)	६)
	फुटकर भाग १-२८ प्रति कापी ...	॥)	॥)
,,	श्रीसंक्षिप्त रामजीवनी	।)	...
उर्दू	खुमख़ाना-ए-राम, प्रथम जिल्द ...	१)	१॥)
,,	राम-वर्षा (प्रथम व दूसरा भाग) ...	१)	१॥)
,,	राम-पत्र	॥)	॥)
अँग्रेज़ी	स्वामी रामजी के समग्र लेख व व्याख्यान तीन जिल्दों में*. मूल्य प्रति जिल्द	२)	—

* अँग्रेज़ी की इन ३ जिल्दों की पुनरावृत्ति भी लगभग ७ जिल्दों में होने वाली है, जिनका मूल्य संस्करण के क्रमानुसार लगभग १) व १॥) प्रति जिल्द होगा। पत्र द्वारा पूँछने की कृपा करें।

अन्य प्रकाशित पुस्तकें

नाम भाषा	नाम पुस्तक	दाम साधारण संस्करण	विशेष संस्करण
	राम-हृदय	।॥)	१)
,,	राम-कविता	॥)	१)
,,	संक्षिप्त राम-जीवनी सहित गणित पर एक लेख के ...	॥)	—
,,	राम-कथा सरदार पूर्णसिंह कृत ..	—	३)
फ़ोटो	स्वामी राम की बड़े साइज़ की फ़ोटो	सादी ४)	तिरङ्गी १०)
,,	,, कैबिनेट आकार फ़ोटो	—	१)
,,	,, छपे चित्र दस कापी	॥)	प्रत्येक ~)
,,	स्वामीनारायण की कैबिनेट आकार फ़ोटो	—	१)
हिंदी	श्रीपरमहंस स्वामी रामतीर्थ के पट्ट शिष्य श्रीस्वामीनारायण-कृत गीता पर सविस्तर व्याख्या जो दो भागों में विभक्त है, पृष्ठ लगभग २०००, मूल्य प्रति भाग	२)	केवल दूसरा भाग ३)
,,	पंजाब के प्रसिद्ध ज्ञानी बाबा नगीनासिंह कृत—वेदानुवचन ..	१॥)	२)
उर्दू	,,	१)	१॥)
हिंदी	मिफ्ताहुल्मुकाशफ़ह, अर्थात् आत्म साक्षात्कार की कसौटी ..	॥)	॥।)
उर्दू	,, ,,	॥)	१)
,,	रिसाला अजायबुलइल्म ..	।=)	॥।)
हिंदी	प्रकाशित होने को है, मूल्य लगभग ...	।=)	॥।)
उर्दू	जगजीत प्रश्न	।=)	॥।)

अधिक पुस्तक-परिचय के लिए लीग का सविस्तर सूचीपत्र मँगवाकर देखिये।

भवदीय—

मैनेजर,

श्रीरामतीर्थ पब्लिकेशन लीग, लखनऊ